श्री इक़बाल कैसर द्वारा लिखित 'उजड़े दरां दे दर्शन'
की संवर्धित एवं संशोधित प्रस्तुति

वीरान विरासतें

महेन्द्रकुमार मस्त

वीरान विरासतें

पाकिस्तान में जैन मंदिर,
स्थानक, समाधि व दादावाड़ियों
के विवरण व दर्शन

वीरान विरासतें : VEERAN VIRASATEIN

ISBN : 978-93-87015-50-5

प्रकाशन वर्ष : सन् 2018

प्रकाशक :

- **विशाल पब्लिशिंग कम्पनी**
  बुक्स मार्केट, ओल्ड रेलवे रोड
  जालंधर - 144008 (पंजाब)
  फोन : 0181-5005403, 94132-32295
  Email : vishalpubco@rediffmail.com
- **श्री आत्मवल्लभ जैन स्मारक शिक्षण निधि**
  (श्री विजय वल्लभ स्मारक जैन मंदिर तीर्थ)
  20 कि.मी., जी.टी. करनाल रोड
  पो. अलीपुर, दिल्ली - 110036
  Email : jainsmarak@yahoo.com

प्राप्ति स्थान :

1. श्री आत्मवल्लभ जैन स्मारक शिक्षण निधि
   (विजय वल्लभ स्मारक जैन मंदिर तीर्थ)
   20 कि.मी., जी.टी. करनाल रोड
   पो. अलीपुर, दिल्ली - 110036
   Email : jainsmarak@yahoo.com
2. श्री आत्मानन्द जैन महासभा उत्तरी भारत
   F-24, Oasis Complex, Guru Nanak Dev Bhawan
   Near Bharat nagar Chowk, Firozpur Road
   Ludhiana - 141007
   Email : info@shreevijayanand.com
3. श्री अमित जैन
   8898/5, नया बाँस, रेलवे रोड के पास
   अम्बाला सिटी - 134003 (हरियाणा)
   मो. : 098886-36767
4. श्री राघवप्रसाद पाण्डेय
   श्री महावीर शिक्षण संस्थान
   रानी स्टेशन - 306115
   जिला-पाली (राज.) मो. : 086190-52208

समर्पण

हम श्री अरिहंत देव, मुक्त आत्मा सिद्ध, धर्म-संघ
के प्रमुख आचार्य, धार्मिक ज्ञान देने वाले उपाध्याय
और संसार में विचर रहे सभी साधु महाराज को
नमस्कार करते हैं
और
तीर्थंकरों को ध्याते हुए
अपनी इस पुस्तक को
भगवान महावीर की परम्परा की
आचार्य पदवी पर विराजमान,
जैन धर्म के २४ तीर्थंकरों के आदर्शों के पालक,
मानवता के प्रति जैनशिक्षा के प्रचारक
और हमारी अनुशंसा को स्वीकार करने वाले
प्रमुख आचार्य श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरि जी
के नाम अर्पण करते हैं

इक़बाल क़ैसर

महेन्द्रकुमार मस्त

पाकिस्तान के सुविख्यात लेखक
श्री इक़बाल क़ैसर द्वारा लिखित
उजड़े दराँ दे दर्शन
की संवर्धित व संशोधित प्रस्तुति

वीरान विरासतें

पाकिस्तान में जैन मंदिर,
स्थानक, समाधि व दादावाड़ियों
के विवरण व दर्शन

महेन्द्रकुमार मस्त

पुस्तक :

वीरान विरासतें **ISBN :** 978-93-87015-50-5

(पाकिस्तान के विख्यात लेखक श्री इक़बाल क़ैसर द्वारा लिखित -
'उजड़े दराँ दे दर्शन' की संवर्धित व संशोधित प्रस्तुति)

प्रेरणा :

पंजाबकेसरी श्री गुरुवल्लभ समुदाय के
वर्तमान गच्छाधिपति शांतिदूत आचार्य श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरीश्वरजी म.सा.

आशीर्वाद :

समुदायवडील, वर्षीतपाराधक आचार्य श्रीमद् विजय वसंत सूरीश्वरजी म.सा.

मूल लेखक :

जनाब इक़बाल क़ैसर
पंजाबी खोजगढ़, मुस्तफ़ाबाद ललियानी, ज़िला कसूर (पं.) पाकिस्तान
मो. 92-3009432825 Email : iqbabaji@hotmail.com

परिष्करण, संवर्धन व संशोधनकर्ता :

महेन्द्रकुमार जैन 'मस्त'
263, सेक्टर 10, पंचकूला (हरियाणा) - 134113
मो. 93161 15670

प्रकाशन वर्ष : सन् 2018

प्रथम आवृत्ति : 1500

मूल्य : रु. 300/-

संकल्पना :

निधि कम्प्यूटर्स, जोधपुर (राज.)

मुद्रक :

प्रिण्ट प्लस, जोधपुर (राज.)

|| ॐ अर्हम् नमः ||

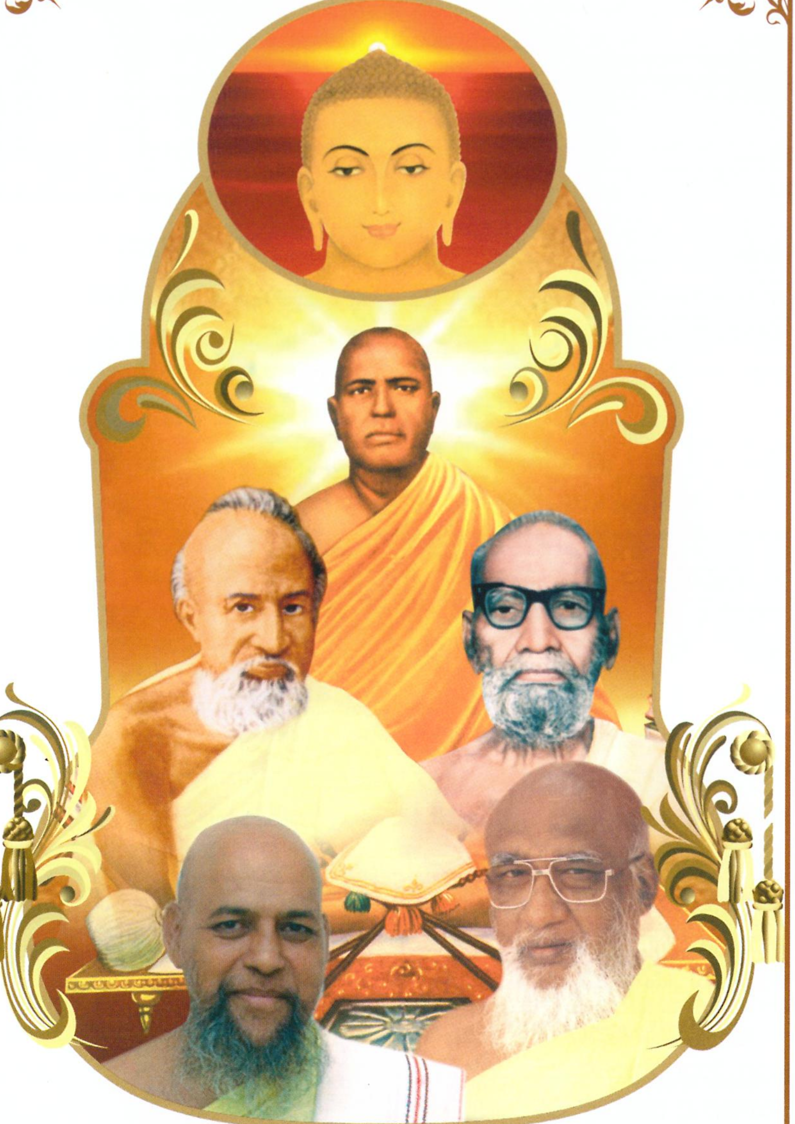

परमोज्ज्वल पाट परम्परा के पूज्यों को कोटि कोटि वन्दन

आशीर्वचन

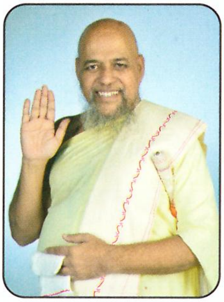

पंजाबकेसरी आ.भ. श्रीमद्
विजयवल्लभ सूरि समुदाय के
वर्तमान गच्छाधिपति
आ.भ. श्रीमद् विजय नित्यानन्द
सूरीश्वरजी म.सा.

मानव जीवन की सार्थकता स्व के वर्तुल को पार कर, पर के लिए जीने में है। जब भी व्यष्टि से समष्टि की ओर व्यक्ति की प्रवृत्ति होती है और उसके कार्य और विचारधारा 'सर्वजनहिताय व सर्वजनसुखाय' होते हैं तभी वह अन्तस के आकर्षण का केन्द्र बनता है। उसका व्यक्तित्व, मानसिक चिन्तन व बौद्धिक स्तर की अल्पनाएँ मानस को आन्दोलित करती हुई सुषुप्त भावनाओं को जागृत करती हैं, जागृत ही नहीं करतीं, अतीत की सहस्र स्मृतियों के उजास से आक्रान्त कर देती हैं।

'वीरान विरासतें' पुस्तक के प्रत्येक कथानक को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे हम पाकिस्तान जाकर प्रत्यक्ष जिनालयों के दर्शन कर रहे हों। मैंने अपने जीवन में इतना सजीव चित्रण कम ही पढ़ा है। सच, मन रोमांचित हो जाता है व कहीं-कहीं आँखें भीग जाती हैं।

अभ्युदय के अग्रदूत, पंजाबदेशोद्धारक, न्यायाम्भोनिधि गुरुवर आत्म, युगद्रष्टा, समयज्ञ, पंजाबकेसरी गुरुवर वल्लभ की सुदेव, सुगुरु व सुधर्म की सच्ची साधना, शासन सेवा का समग्र समर्पण एवं तूफानों में निर्भीक होकर चलने की अमिट चाहत की अमर कहानी ये वीरान विरासतें कह रही हैं।

साहित्यकार व लेखक तथा जैन इतिहासमर्मज्ञ श्री महेन्द्रकुमार जी मस्त द्वारा रचित पुस्तक 'वीरान विरासतें' अविभाजित भारत के जिनमंदिर, स्थानक व दादावाड़ी का प्रत्यक्ष वर्णन है। मैं जिनशासन व जैन साहित्य जगत् की अविस्मरणीय सेवा के लिए श्री मस्तजी तथा मूल पुस्तक 'उजड़े दरां दे दर्शन' के लेखक जनाब इक़बाल क़ैसर, पुस्तक के प्रकाशन सौजन्य के लिए श्री आत्मवल्लभ जैन स्मारक शिक्षण निधि, दिल्ली तथा श्रेष्ठ प्रकाशन हेतु बालसखा श्री राघवजी को अनेकशः शुभकामनाएँ देता हूँ।

- विजय नित्यानंद सूरि

चन्द अल्फ़ाज़ - दिल से

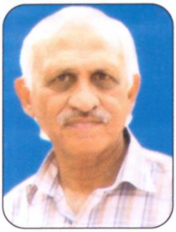

पाकिस्तान में अल्पसंख्यक समुदायों की धार्मिक धरोहरों की दुर्दशा और सुरक्षा सम्बन्धी एक प्रोग्राम के सिलसिले में पी.टी.वी. के प्रोड्यूसर जनाब अज़हर फ़रीद के साथ मुझे कराची तक जाना पड़ा। तभी कसूर का जैन मंदिर भी देखा तथा पी.टी.वी. की उस रिकॉर्डिंग के बाद कसूर वाले मेरे लेख से इस किताब की शुरूआत हुई।

इन बहुमूल्य ऐतिहासिक धरोहरों पर काम करते हुए कई ऐसी सच्चाइयाँ भी सामने आईं कि 1947 में बँटवारे के समय, एकाध जगह को छोड़ कर, पूरे पाकिस्तान में कोई भी धार्मिक स्थान कट्टरता का निशाना नहीं बना था। भारत से आये शरणार्थियों ने इनमें आश्रय लिया तथा कुछ में स्कूल बन गए। मगर उनके मूल स्वरूप को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया गया। 1965 और 1971 की लड़ाइयों में भी हिन्दू, जैनी, वाल्मिकी मंदिरों या सिख गुरुद्वारों को किसी ने कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। हाँ 'समय' के हाथों जरूर कुछ जीर्णता या पुरानापन आए। आम लोगों ने इन्हें अमानत और धरोहर ही समझा व इनकी संभाल करते रहे। देश और मानवता की इस ऐतिहासिक पूँजी को जो नुकसान हुआ वह 1992 में तब हुआ, जब बाबरी मस्जिद को ढहाया गया। वह महती क्षति कभी पूरी नहीं हो सकती।

बाबरी मस्जिद की घटना के जवाब में हुई बरबादी का मैं गवाह हूँ। मैं बदला लेना चाहता था, उनसे, जिन्होंने मेरे वतन की ऐतिहासिक संपत्तियों के साथ इतना बड़ा ज़ुल्म किया। एक लेखक होने के नाते, मैंने बाबरी मस्जिद और पाकिस्तान में ढहाए गए मंदिरों का बदला इस तरह लिया कि पाकिस्तान में अत्यंत ही थोड़ी गिनती के अल्पसंख्यक यानी जैनियों के पवित्र स्थानों को अपनी पुस्तक में संभालने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ। भारत और पाकिस्तान, दोनों तरफ खुदा के घरों को तोड़े जाने के अज़ीम गुनाहों का शायद इससे कुछ अज़ाला हो सके।

सबसे पहले दो महान हस्तियों - हारून खालिद और उनकी धर्मपत्नी अन्एम हारून का ताज़िंदगी आभारी हूँ। इन दोनों का सहयोग बयान करने के लिए शब्द नाकाफी हैं।

भारत में आदरणीय पुरुषोत्तम जैन व श्री रविन्द्र जैन (मालेरकोटला) का भी बहुत ऋणी हूँ। पंचकूला के श्री महेन्द्रकुमार जैन 'मस्त' इतिहास के गंभीर और गहरे जानकार हैं। अपने शारीरिक जीवनकाल में इन सभी के चरण छूने की मेरी हार्दिक भावना है।

शाहमुखी (उर्दू लिपि में पंजाबी) में लिखी मेरी इस किताब को 'पाकिस्तान पंजाबी अदबी बोर्ड' ने छपाया है। उनका भी मैं आभारी हूँ।

अपनी खोजकारी के दौरान बहुत से इलाकों में अनेक सज्जनों ने सहायता बख्शी। मैं शुक्रगुज़ार हूँ उन सभी का।

लाहौर व कसूर के दोस्तों, तथा नामवर फोटोग्राफर नदीम खादर, पी.टी.वी. के कैमरामेन, प्रोड्यूसर साहिब, जनाब फैज़ान नक़वी, चैनल एफ.एम. 95, सूबा सिंध में सिंधी भाषा के विद्वान श्री जरवार का भी अहसानमंद हूँ।

अंत में अपने बच्चे अली रज़ा, उसकी धर्मपत्नी सोबिया - दोनों ने यह काम सर-अंजाम देने में मेरा हर तरह ख्याल रखा। उनका भी बहुत शुक्रिया।

- इक़बाल क़ैसर

प्रस्तावना

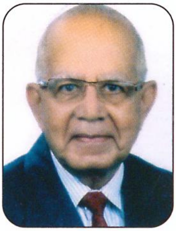

पाकिस्तान में जैन मन्दिरों के बारे में लिखते हुए एक अजीब से अहसास और आह्लादक सन्तुष्टि की अनुभूति अभी तक बनी हुई है। करीब 40-45 जगहों के 80-85 मंदिरों की कला, वैभव, शिल्प, बुलन्दी, बारीकी, विशालता, पेंटिंग्ज़ और लोकेशन की सुन्दर सेटिंग अपने में बेजोड़ है। मंदिरों को निहारते हुए, मैं स्वयं साक्षात् इनमें घूमता व खो जाता रहा हूँ।

एक ओर जहाँ टैक्सिला से जुड़े हैं - भगवान बाहुबलीजी, श्री मानदेव सूरि रचित 'लघु शांति स्तोत्र' तथा श्री जिनप्रभ सूरि रचित 'विविध तीर्थ कल्प', ...वहीं, भेरा (वीतभय पत्तन) में भगवान महावीर व राजा उदायन की गाथाएँ आज भी कीर्तिमान हैं। और..... भारत भर के 'गोड़ी पार्श्वनाथ' के मूल (पितृ स्थान) गोड़ी की कला व पेंटिंग्ज़ आज भी अजंता-एलोरा से माथा लेने में सक्षम हैं। देराउर तथा गुजरांवाला स्थित समाधियों की खामोशी में भी सुनी जा सकती हैं, गुरुदेवों के उपकारों की कहानियाँ।

पाकिस्तान के सुविख्यात लेखक श्री इक़बाल क़ैसर ने स्वयं हर स्थान पर जाकर इन मंदिरों के मण्डप, स्तम्भ, चित्र, मूर्तिस्थान और शिखरों के खण्डहरों से हुई मुलाकातों को लिखकर बहुत बड़ी कमी को पूरा किया है। यह उनका अहसान है पूरे जैन समाज पर। विशेष आभारी हूँ।

गच्छाधिपति आचार्य श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरि जी की प्रेरणा व आशीर्वाद से ग्रंथ 'वीरान विरासतें' का प्रकाशन उन्हीं को सादर समर्पित है।

श्री राघव प्रसाद पाण्डेय (रानी स्टेशन) तथा श्री रविन्द्र जैन (मालेरकोटला) से पग-पग पर मिले सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता। बहुत-बहुत धन्यवाद।

मेरे सुपुत्र गौतम जैन व पुत्रवधू सीमा जैन ने पुस्तक-लेखन कार्य में मेरी हर सुविधा का ख्याल रखा है। बहुत शुक्रिया।

सुरुचिपूर्ण कम्प्यूटर संकल्पना हेतु निधि कम्प्यूटर्स के डॉ. क्षेमंकर पाटनी और मोहक मुद्रण के लिये प्रिण्ट प्लस, जोधपुर को धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

असावधानी के कारण किसी तथ्य या आलेख में रही त्रुटि या भूल के लिये क्षमा चाहता हूँ।

– महेन्द्रकुमार मस्त

भूमिका

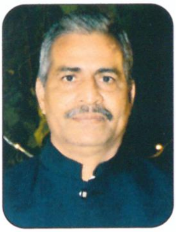

एक विचारक ने कहा है - ''पुस्तकें ज्ञानियों की समाधि हैं। किसी में ऋषभ अरिष्टनेमि एवं महावीर हैं तो किसी में राम, कृष्ण और युधिष्ठिर। किसी में वाल्मीकि, सूरदास, तुलसीदास एवं कबीर हैं तो किसी में ईसा, मूसा और हजरत मुहम्मद। उन पुस्तकों को खोलते ही वे महापुरुष उठ कर हमसे बोलने लग जाते हैं।''

प्रस्तुत ऐसी ही 'वीरान विरासतें' नामक अनमोल पुस्तक मैंने पढ़ी। जो पाकिस्तान के सुविख्यात लेखक जनाब इक़बाल क़ैसर द्वारा लिखित 'उजड़े दरां दे दर्शन' का हिन्दी अनुवाद है। अविभाजित भारत के महान् जैन साहित्यकार श्री महेन्द्रकुमार मस्त द्वारा संवर्धित-सम्पादित यह पुस्तक जैनधर्म तथा संस्कृति की ही नहीं, इतिहासविदों के लिए एक बहुमूल्य धरोहर है। भारत-पाक विभाजन के समय पाकिस्तान में रह गए जिनालय, स्थानक, दादावाड़ी व समाधि मंदिर पुस्तक खोलते ही बोल उठते हैं। पुस्तक की हर पंक्ति जिज्ञासा व रोमांच को बढ़ाती है और इन तमाम उजड़ी विरासतों का दर्द विभाजन की टीस के साथ छलक उठता है। यद्यपि पाकिस्तान के पुरातत्व विभाग, मूर्धन्य विद्वान श्री हीरालालजी दूगड़, विविध इतिहासकार व भारत से गए यात्रियों द्वारा लिखे गए अनेक लेख व रिपोर्ट्स उपलब्ध हैं परन्तु जिस गहनता व गम्भीरता से कैमरे व कलम का समायोजन कर ज़नाब क़ैसर लिखते हैं - ''जब जटिलताएँ अनेक हों तो सादगी खुद भी जटिल बन जाती है। संसार में या तो कोई पागल व्यक्ति नग्न रह सकता है या फिर महावीर। जिनके निकट शरीर का चोला भी फालतू था। आत्मा जब परमात्मा हो जाती है फिर शरीर भी फालतू हो जाता है।''

श्री महेन्द्रकुमार जी मस्त ने चण्डीगढ़ में जब उक्त पुस्तक के कथानक का पंजाबकेसरी आ.भ. श्रीमद् विजयवल्लभ सूरि समुदाय के वर्तमान गच्छाधिपति ज्ञानगंगाभगीरथ, साहित्यकार व लेखक प.पू. आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरीश्वरजी म.सा. के समक्ष वर्णन किया तथा कुछ भाग पढ़ कर सुनाया तब पूज्य गुरुदेव की आँखे भर आई। आपश्रीजी ने कहा ''मस्तजी ! आप परम गुरुभक्त ही नहीं इतिहासविद् भी हैं। उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी के विद्वान हैं इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद, सम्पादन व संवर्धन का कार्य शीघ्र पूर्ण कीजिए।''

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि जनाब क़ैसर द्वारा शाहमुखी में लिखित 'उजड़े दरां दे दर्शन' का श्री मस्तजी द्वारा हिन्दी में अनूदित 'वीरान विरासतें' नामक पुस्तक गुरुभगवन्तों, विद्वानों तथा इतिहासविदों के लिए हृदयस्पर्शी व संग्रहीय होगा।

श्री महावीर शिक्षण संस्थान
रानी स्टेशन, जिला-पाली (राज.)

– राघवप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशकीय

"एक-एक ईंट से बने भवन, एक-एक फूल से सजे चमन,
तोड़ने में जिसको लगता एक पल, माँगता कितना समय उसका सृजन"

नवनिर्माण अति कठिन है और विध्वंस अति सरल। शायद इसीलिए विरासतें विरल होती हैं। जब विरासतें विरल भी हों और वीरान भी, तो इतिहास का हिस्सा बन जाती हैं तथा पीढ़ी दर पीढ़ी सबक सिखाने का दम रखती हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि निर्माण के लिए, सृजन-सजावट-शृंगार के लिए, अमनोचैन एवं तरक्की के लिए तथा अपनी विरासतों का पूरा आनन्द लेने के लिए अहिंसा सबसे ज्यादा लाज़िम है। जैन धर्म का मूल अहिंसा ही है और यही हमारी मान्यताओं, विचारों, क्रिया-कलापों और प्रवृत्तियों का आधार भी है।

पाकिस्तान स्थित पुरातन जैन विरासतों की अस्मिता और विशिष्टता से संसार को रूबरू करवाने का मौलिक कार्य 'उजड़े दरां दे दर्शन' नामक शाहमुखी में लिखे ऐतिहासिक दस्तावेज़ की रचना का महान् कार्य सुप्रसिद्ध पाकिस्तानी लेखक जनाब इक़बाल क़ैसर जी ने किया है। प्रात:स्मरणीय श्रीमद् आत्म-वल्लभ-समुद्र-इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी म.सा. के वर्तमान पट्टधर गच्छाधिपति आचार्य श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरीश्वरजी म.सा. की पावन प्रेरणा एवं शुभाशिष से सुविख्यात लेखक एवं इतिहासज्ञ श्री महेन्द्रकुमारजी जैन 'मस्त' ने इसका संवर्धन और संशोधन करते हुए हिन्दी अनुवाद आत्मिक आह्लादपूर्वक किया है।

पाकिस्तान स्थित ये वीरान विरासतें हमारे परमपरोपकारी गुरुवर आत्म (जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वर जी) और गुरुवर वल्लभ (जैनाचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी) के जीवनकाल, विचारधारा एवं उपकारों तथा जैन इतिहास के अनेक विद्वज्जनों से जुड़ी हैं, अतएव हमारे लिए पूजनीय भी हैं और प्रिय भी। सन् 1962 में गुजरांवाला पाकिस्तान से लाए गए आत्म-वल्लभ ज्ञान भंडार एवं समय-समय पर विभिन्न स्थानों से आए असंख्य जैन ग्रन्थों को, बहुमूल्य ऐतिहासिक धरोहर के रूप में संभालने का गौरव 'श्री वल्लभ स्मारक जैन मंदिर तीर्थ' को हासिल है। प्रात:स्मरणीय गुरु वल्लभ की पावन स्मृति में इस स्मारक मंदिर का निर्माण एक विविध लक्ष्यी प्रकल्प के रूप में 1989 में हुआ था जिसका संचालन श्री आत्म-वल्लभ जैन स्मारक शिक्षण निधि द्वारा किया जाता है। अत: 'वीरान विरासतें' ग्रन्थ का प्रकाशन हमारा पुनीत कर्त्तव्य भी है और अधिकार भी। इन विरासतों से जुड़ी तमाम धार्मिकता, नेकी, अहिंसा, विश्व-शांति और विश्व-कल्याण की चाह इस अति महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ रूप नवप्रकाशन 'वीरान विरासतें' के माध्यम से जग ज़ाहिर हो, इसी मंगलकामना सहित।

- विनीत -

श्री आत्म-वल्लभ जैन स्मारक शिक्षण निधि

सायरचन्द नाहर — अध्यक्ष
राजकुमार जैन एनके — चेयरमेन (Emeritus)
नरेन्द्रकुमार जैन — सेक्रेटरी जनरल

अखिल भारतीय श्री आत्म-वल्लभ जैन महासंघ ट्रस्ट

राजकुमार जैन ओसवाल — अध्यक्ष
अशोक जैन — महामंत्री

अनुक्रमणिका

1.	लाहौर का सरकारी म्यूज़ियम	1
2.	अनारकली-लाहौर	3
3.	लाहौर के थड़ियाँ भावड़ियाँ में	9
4.	दादागुरु जिनचन्द्र सूरि-लाहौर में	15
5.	थड़ियाँ-भावड़ियाँ लाहौर का इतिहास जुड़ा है अकबर से	20
6.	सम्राट् अकबर का कश्मीर-भ्रमण	21
7.	भगवान महावीर की चरणरज से पवित्र हुआ **भेरा**	23
8.	पिण्डदादन खाँ	28
9.	सिंधु नदी का साम्राज्य	32
10.	जेहलम	34
11.	मुलतान/कोहाट	40
12.	डेरा गाज़ी खाँ	47
13.	बन्नू व लितम्बर	51
14.	लितम्बर	52
15.	काला बाग	53
16.	झँग (पश्चिमी पंजाब-पाक)	58
17.	मारीइण्डस (या) माड़ी पत्तन	60
18.	गुजराँवाला	61
19.	गुजराँवाला शहर, जैन यति और भावड़ा बाज़ार का मंदिर	64
20.	समाधि मंदिर, गुजराँवाला	68
21.	गुरुकुल गुजराँवाला	70

22.	क़िला सोभा सिंह	72
23.	किला दीदारसिंह	74
24.	राम नगर जो अब बन गया है रसूल नगर	77
25.	पपनाखा	82
26.	कसूर	86
27.	खानक़ाह डोगराँ	92
28.	खानका डोगरा के समीप फारुक़ाबाद का जैन श्वे. मंदिर	97
29.	सियालकोट	99
30.	नारोवाल	104
31.	सनखतरा	110
32.	पसरुर ......वस्सदा रह्वे पसरुर मेरा	115
33.	देराउर-या-किला द्राविड़	119
34.	देराउर नगर-इतिहास के पन्नों में	123
35.	देराउर समाधि की हक़ीक़त	124
36.	रहीमयार खाँ (बहावलपुर स्टेट)	126
37.	रहीमयार खाँ का मीनार	128
38.	इस क्षेत्र के कवि ने की 'महावीर से मुलाकात'	130
39.	मरोट (या मरुकोट)	131
40.	सरस्वती नदी के तट पर पनपी पुरातन सभ्यता	137
41.	गोड़ी पार्श्वनाथ जैन मंदिर	139
42.	गोड़ी तीर्थ के वंदन-पूजन के लिए आते थे यात्री संघ	141
43.	अंधेरा और सन्नाटा है गोड़ी के जैन मंदिर में	143
44.	ज़िला-थारपारकर (सिंध)	146
45.	नगरपारकर	147
46.	वीरवाह व पारीनगर	149
47.	भोदेसर	151
48.	उमरकोट (सिंध)	152
49.	करुँझर (सिंध), डबरेलपुर, बोहड (सिंध), किला फोलड़ा	154
50.	कराची	156
51.	हैदराबाद (सिंध)	160

52. हाला (न्यू हाला) 163
53. रावलपिण्डी 166
54. टैक्सला (तक्षशिला) 179
55. कटासराज, सिंहपुर, मूर्तिगाँव 181
56. खेड़ा मूर्ति गाँव (या गंधारा मूर्ति) 182
57. उच्चानगरी 183
58. Jain Temple at Godi 185
59. Jain Temple at Nagarparkar 187
60. Pari Nagar Jain Temple at Virwah 188
61. Jain Temple at Bhodesar 191
62. An Exploratory Survey of the Jaina Heritage in Pakistan 193

चित्रावली अनुक्रमणिका

1. Jaina Sites in Pakistan 1
2. सरस्वती कहलाई हाकड़ा नदी 2
3. भेरा (ज़िला-सरगोधा-पं.) 3
4. बोहड़ (ज़िला-थारपारकर-सिंध) 4
5. बन्नू (फ्रंटियर सूबा) 5
6. भोदेसर (ज़िला-थारपारकर-सिंध) 6-8
7. डेरा गाज़ी खाँ (फ्रंटियर सूबा) 9-11
8. देराउर (बहावलपुर स्टेट) 12-14
9. गोडी पार्श्वनाथ 15-20
10. गुजराँवाला जैन मन्दिर 21-25
11. श्री गुरु आत्म समाधि मन्दिर, गुजराँवाला 26-30
12. जेहलम (पं.) 31-32
13. झँग (पंजाब) 33
14. खानका डोगरा (पंजाब) 34-35

15. कसूर (पंजाब) 36-39
16. करूँझर (थारपारकर-सिंध) 40
17. काला बाग (फ्रंटियर) पाक. 41
18. किला सोभासिंह (जि. गुजराँवाला) 42-43
19. किला दीदारसिंह (जि. गुजराँवाला) 44-45
20. श्री पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर, कराची 46
21. लाहौर गवर्नमेन्ट म्यूज़ियम 47-50
22. लाहौर का मुहल्ला 'थड़ियाँ भावड़ियाँ' 51-53
23. लाहौर - अनारकली बाज़ार 54
24. लाहौर 55-56
25. मुलतान (पं.) 57-63
26. मरोट (बहावलपुर स्टेट) 64-65
27. नारोवाल 66
28. नगर पारकर (सिंध) 67-72
29. पपनाखा (जि. गुजराँवाला) 73
30. पिण्ड दादन खाँ (जि. जेहलम) 74
31. पसरुर (पं.) 75-76
32. रामनगर (रसूल नगर) जि. गुजराँवाला 77-80
33. रहीम-यार खाँ (बहावलपुर) 81
34. रावलपिण्डी (पं.) 82-84
35. सनखतरा (जि. सियालकोट) 85-90
36. टैक्सिला (पुराना तक्षशिला) 91-92
37. उच्चनगरी (जि. हसन अब्दाल) 93
38. वीरवाह व पारी नगर (सिंध) 94-95
39. पूज्य साधु-साध्वी वृन्द 96-101
40. श्री विजयवल्लभ स्मारक जैन मंदिर-तीर्थ, दिल्ली 102
40. श्री महेन्द्रकुमार मस्त 103
41. जनाब इक़बाल क़ैसर 104

लाहौर का सरकारी म्यूज़ियम

म्यूज़ियम में पड़ी है धरोहर

अंग्रेज़ों के समय में जब भी इस म्यूज़ियम में आना होता था, तो यहाँ गंधार आर्ट की विशालकाय मूर्ति देखने को मिलती थी, जिसके दोनों बाज़ू और दोनों पैर, समय की उथल-पुथल में शायद कहीं खो गए थे। और उसके परिचय की तख्ती पर लिखा होता था-

भगवान महावीर की मूर्ति - दूसरी शताब्दी

और इसी शकल की एक और मूर्ति, ऐसे ही लेख सहित, बिल्कुल उसके पास ही पड़ी होती थी। उसकी स्लेट पर लिखा था-

भगवान ऋषभदेव - दूसरी शताब्दी

ये मूर्तियाँ कहाँ से कब प्राप्त हुईं, यह प्रश्न बाकी है।

गुरु आत्म समाधि की पादुका

आज इस म्यूज़ियम में आगे बढ़ा तो दाईं तरफ की कश्मीर गैलरी के सामने संगमरमर का एक चबूतरा है जिस पर मार्बल की एक गुंबद सी बनी हुई है। इस गुंबदनुमा वेदिका की चार गोल आर्चों (तोरणों) के माथे पर 24 जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बहुत बढ़िया रंगों में उकेरी हुई हैं। सुंदर व बड़े साईज के इस गुंबद के बिल्कुल नीचे चरण पादुका में चारों दिशाओं में चरणों के चिह्न बहुत ही कारीगरी से गढ़े गए हैं। सामने की लोहे की तख्ती पर लिखा था-

'गुजराँवाला से प्राप्त श्री आत्मारामजी की चरण पादुका'

श्री आत्मारामजी महाराज, जैन धर्म के आचार्य, और गुजराँवाला

के जैनियों की निष्ठा की आत्मा। देखते ही देखते मैं उनके चरणों में कहीं **खो गया। क्या यह आत्मा जब परमात्मा में लीन हो जाती है, तो फिर पूजनीय बनती है? तब चरण भी पूजा स्थान बन जाते हैं।** मुझे उन चरणों की उंगलियाँ हिलती हुई नज़र आईं। मैं एकटक उन चरणों को देखता रहा। देखता रहा। फिर मैं खुद भी उन पावन चरणों का हिस्सा बन गया।

'राँझा-राँझा करदी नी मैं आपे राँझा होई' (बुल्हेशाह)

कैमरे की आवाज़ से मेरी समाधि भंग हुई। बाएँ हाथ वाली गैलरी में एक अलग ही नज़ारा था। लकड़ी के एक फट्टे पर जैन धर्म के तीर्थंकरों के स्वर्ण-मंदिर, साधु-साध्वियों का जीवन उकेरा (खुदा) हुआ था। शायद किसी तीर्थ का नक्शा था।

एक कलात्मक स्टैण्ड पर भगवान महावीर के शिष्य गौतम स्वामी की बहुत सुंदर खंडित प्रतिमा, तो ऐसा लगता था कि अभी बोल पड़ेगी और अपनी लब्धियों का अमृत बरसा देगी।

इससे आगे गोला-बारूद की गैलरी पार करते ही प्राचीन काल की हिन्दू, बौद्ध व जैनधर्म से संबंधित मूर्तियाँ। फिर शीशे की एक अलमारी में 'तरखानां' गाँव से मिली भगवान महावीर की मूर्तियाँ। संगमरमर की चरण पादुकाएँ। और भी बहुत कुछ। इनमें एक है बहुत जीर्ण हुई दादा-गुरु श्री जिनचन्द्र सूरि की चरण पादुका, जो कि बहावलनगर ज़िले के मुरोट-कोट से प्राप्त हुई। जो यहाँ से स्टेट म्यूज़ियम, बहावलपुर में शिफ्ट कर दी गई।

मैं एक बार फिर श्री आत्मारामजी के चरणों में आकर लीन हो गया।

लाहौर-अनारकली

'ऐती मार पई कुरलाने, तैं की दर्द न आया'

हम हर रविवार की शाम को 'पंजाबी अदबी संगत' की गोष्ठी में कई सालों से निरंतर जा रहे हैं। कवि, लेखक, बुद्धिजीवी तथा साहित्य में रुचि वाले होते हैं सब लोग। धर्म, दर्शन, साहित्य, राजनीति, सामाजिक सरोकार तथा अन्य भी, अनेक विषयों पर विमर्श के साथ शायरी सुनी जाती, इतिहास के पन्ने उलटाए जाते। **आमतौर पर उजले इन पन्नों में से किसी-किसी पर खून के छींटे भी नज़र आ जाते थे।**

पुरानी अनारकली-बाज़ार में शीशम का एक बड़ा वृक्ष है। इसी वृक्ष के नीचे 1857 के सैनिकों को देश-द्रोह का इलज़ाम लगा कर तोपों से उड़ांया गया था। तब लाहौर के अलावा सियालकोट, रावलपिंडी, लायलपुर आदि कई शहरों में इसी तरह ही तोपें गर्म हुई थीं।

जैन मंदिर

हम पैदल चलते हुए कपूरथला हाऊस के सामने पहुँचे गए। अब हमारे सामने, तिकोने मोड़ के अन्दर है जैन मंदिर। ये लाहौर का सबसे मशहूर जैन मंदिर है। इस चौक को भी जैन मंदिर चौक ही कहा जाता है। बातें करते-करते हम जैन मंदिर के बिल्कुल सामने पहुँच गए।

मेरे साथ चल रहे कँवल मुश्ताक ने इतिहास को कुरेदा और कहने लगा कि सिकंदर से लेकर अंग्रेज़ों तक-सभी भूखे। मुग़ल, खिलजी, लोधी सभी भूखे, इंसानी खून के प्यासे। आज हम इनको धर्म के रक्षक बनाए हुए हैं। महमूद गज़नवी ने सोमनाथ का मंदिर, हीरे जवाहरात की अपनी

भूख मिटाने के लिए तोड़ा। अगर वो सचमुच 'बुतशिकन' होता तो सबसे पहले अपने ही देश के बामियान के बुद्ध के बुत न तोड़ता? पर वहाँ से हीरे-मोती-सोना नहीं था मिलना। सोमनाथ के मंदिर-मूर्तियों में से ये सब मिलना था, इसलिए उस पर सत्रह हमले किए। गुरु नानक ने कितनी सच्चाई से कहा-

'जे सकता सकते को मारे, ताँ मन रोस न होई'।

जैन मंदिर हमारे एक तरफ, साइड में है। हम लिटन रोड पर पहुँच गए। ये रोड सीधा जैन मंदिर चौक पर पहुँचता है।

'आपको पता है कि इस जैन मंदिर का क्या नाम है', मैंने पूछा।

'नहीं, मैं नहीं जानता। पर एक दिन इण्टरनेट पर देखा था, वहाँ लिखा हुआ था- जैन दिगम्बर मंदिर विद शिखर (Jain Digamber Mandir With Shikhar)'

एक लम्बे समय से यह मंदिर अपने स्थान पर खड़ा है। अहिंसा, शाँति और भाईचारे का संदेश देता हुआ अड़िग खड़ा हुआ है। मंदिर ने तब तक खड़े रहना है, जब तक किसी को इसे तोड़ने की भूख न लगे।

6 दिसम्बर 1992

6 दिसम्बर, 1992 के दिन रविवार को हमारी साप्ताहिक गोष्ठी चल रही थी। मैंने यह खबर वहाँ ही सुनी कि अयोध्या में ऐतिहासिक बाबरी मस्जिद को हिन्दुओं ने गिरा दिया है। मस्जिद को क्यों गिरा दिया? बाबर के समय में सन् 1527 में बनी इस मस्जिद को सन् 1992 में क्यों ढहा दिया? मुग़लों के बाद अंग्रेज़ आए, तब कुछ नहीं हुआ। सन् 1947 में लाखों लोग मारे गए। पर मस्जिद को कुछ नहीं हुआ। अब ऐसी कौनसी क़यामत आ गई थी कि चोटी के नेता लोग ही इसे गिराने चल पड़े।

एक तरफ राम जन्मभूमि, दूसरी तरफ 465 साल से खड़ी ये मस्जिद, और इनके बीच में हैं दो हज़ार मासूम लोगों की लाशें।

लाहौर में मंदिरों का आखिरी दिन

सुबह-सुबह ही फोन की घंटी बजी। 'हाँ, क्या सो रहे हो'?

'नहीं, जागा हुआ हूँ, अखबार देख रहा हूँ।'

'अखबार को छोड़ो, कैमरा उठा कर बाहर निकलो। आज लाहौर के मंदिरों का आखिरी दिन है। सारे मंदिर आज मलबा हो जाने हैं। 'जैन मंदिरों का प्रॉजेक्ट' जो तुहारा चल रहा है, वो बीच में ही रह जाना है। जिस-जिस मंदिर की फोटो उतारनी हो, वो फौरन आज ही ले लो।'

मुझे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। लग रहा था कि मेरे अन्दर दिमाग़ तो खत्म ही हो गया है।

अखबार पर नज़र डाली। उसकी सुर्खियाँ थीं- 'बाबरी मस्जिद पर हिन्दू हमला। मस्जिद शहीद। सैकड़ों मुसलमान शहीद।'

लगा कि पूरे पाकिस्तान में आग लग गई। हर शहर में हज़ारों के जुलूस, हिन्दू, बुद्ध, जैन मंदिरों पर हमले। नारा तकबीर, अल्ला अकबर। हर तरफ आग, सड़कों पर टायर जल रहे थे। हर गली-मुहल्ले में नफ़रत। पाकिस्तान की ऐतिहासिक धरोहर नफ़रत की आग में जल रही थी। लाहौर के हिन्दू अपने घरों को ताले लगाकर मुस्लिम दोस्तों के घर में शरण लिये हुए थे। एक दिन में लाहौर के सैकड़ों मंदिर, उस दिन, मिट्टी का ढेर होगए, या ज़ख्मी कर दिये गए।

मैंने अपने एक दोस्त को साथ लिया और मोटर साईकल पर चल पड़ा। सबसे पहले मॉडल टाऊन डी. ब्लॉक का मंदिर लोगों के घेरे में था। गेंतियाँ और दूसरे औज़ार। कहीं-कहीं बुल-डोज़र भी। मंदिर की नीवें तक काँप रही थीं। मैं और अब्बास मंदिर को अंतिम बार देखना चाहते थे।

7 दिसम्बर, 1992 मेरे लिए शायद क़यामत का दिन था। आज मेरी आँखों के सामने इतिहास के निशान मिट रहे थे। उनके फोटो खींचने के अलावा मैं और कुछ नहीं कर सकता था।

'लाहौर में कितने मंदिर होंगे, अब्बास ने मुझे पूछा।'

'होंगे कोई एक सौ से ऊपर' ।

'ये आज सभी खत्म हो जायेंगे।'

'पता नहीं।'

'दोनों तरफ की यह गंदी राजनीति क्या कुछ कर देती है'

'बस देखते जाओ'।

'लो उसका परिणाम देखो। एक मस्जिद के पीछे सैकड़ों मंदिर मिट्टी का ढेर हो गए।' मोटर साईकल चलाता हुआ अब्बास बोले जा रहा था। मस्जिद या मंदिर तोड़ने वालों के खिलाफ उसके मन में गुस्सा था, क्षोभ था, रंज था।

नारे लगने की बहुत ज़ोरदार आवाज़ आई। जलता हुआ एक टायर हमारे बिल्कुल सामने आकर गिरा। एक शोर, ऊँची आवाज़ें।

'मस्जिद तोड़ने वाले हिन्दू कुत्ते, हाय हाय, हाय हाय'। नफ़रत और गुस्से की लपटें ऊँची होती जा रही थीं।

हम शम्माँ-स्टॉप के पास थे। लोगों ने एक व्यक्ति को अपने कंधों पर उठाया हुआ था। उसके हाथ में मंदिर के कलश की सुनहरी गागर (कुंभ) थी, जिसे वो हवा में उछाल-उछाल कर नारे लगा रहा था। उसके पीछे हज़ारों लोग। सड़कों पर जल रहे टायर मानों इतिहास के पृष्ठों को जला रहे थे। इस कत्लेआम को शुरू कराने वाले, उधर सीमा पार बैठे हुए दिल्ली के तख्त के सपने देख रहे थे, और इधर एक अदृश्य और व्यवस्थित भू-माफिया आम जनता को भड़का रहा था, मंदिरों की करोड़ों रुपये की जायदाद पर कब्ज़ा करने के लिए।

हम सीधे 'जैन मंदिर चौक' में पहुँचे। बचते-बचाते जैन मंदिर के उत्तर में मज़ार के गेट में खड़े हो गए।

'ये पागलपन है,' पास खड़े एक व्यक्ति ने कहा।

'जी अब लोगों को कौन समझाए? इस वक़्त तो बात करना भी मौत को दावत देना है।'

'ये अब जैन मंदिर तो था ही नहीं। इसमें तो बच्चों का प्राइमरी स्कूल है। मंदिर के दूसरे भाग में कॉर्पोरेशन का स्टाफ बैठता है। मुझे समझ नहीं आती कि मंदिर की इमारत को ढहा देने से क्या बाबरी मस्जिद बन जाएगी? आपने देख लेना कि कुछ ही दिनों में किसी शक्तिशाली व पैसे वाली पार्टी ने इस जगह पर कब्जा करके, यहाँ कोई मॉल-प्लाज़ा बना देना है। लोग ठण्डे होकर बैठ जायेंगे। भूल जायेगी बाबरी मस्जिद, राम जन्मभूमि और ये जैन मंदिर।

मंदिर को गिराने के लिए आए हुए बुलडोजर पर लोगों ने एक व्यक्ति को चढ़ा दिया। ऊपर चढ़कर उन्होंने ज़ोरदार नारा लगाया। हर तरफ एक शोर मच गया। ज़िंदाबाद, मुर्दाबाद, हाय हाय.....।

अलामा साहिब ने बुलडोज़र के मंच से ही बहुत जोशीली भड़काऊ और तेज़-तरार तकरीर की। फिर नीचे उतरे।

लोग मंदिर को ढहा देने में लग गए। कुछ ही देर बाद एक ज़ोरदार धमाका हुआ। इस धमाके से पहले शोर। लोग इधर-उधर भागे दूर भागे अपनी जाने बचाने के लिए।

अब तक इस चौक में सीना तानकर खड़ा रहने वाला मंदिर, अब एक मृत-देह की तरह ज़मीन पर गिरा पड़ा था। जो लोग ज़ख्मी हुए उन्हें एम्बुलेंस गाड़ियाँ ले गईं।

जैन मंदिर का चौक, जो कुछ पल पहले लोगों से भरा हुआ था, वो अब नारे, शोर और आग के धुएँ से भरा हुआ था। इन सबके बीच में था जैन मंदिर का मलबा, एक मृत शरीर की तरह। मुझे 'बाबर वाणी' में गुरु नानक का एक वाक्य याद आ गया-

'कित्थे हण ओह मकान दरवाज़े महल माड़ियाँ ते मंदिर'

दोनों तरफ की ऐतिहासिक धरोहरें, विरासतें धार्मिक नफ़रत के एटमबम पर पड़ी हुई हैं। हम हिन्दू-मस्लिम कब तक ईटों से लड़ते रहेंगे। कब तक इंसानी-खून की होली खेलते रहेंगे।

'रुत्त उदासी वाली, आके ठहर गई ए'

From Times of India, (with Temple Photos) 15.3.2008

Most of the temple area has already been encroached upon. The temple mangement has been urging the Govt. to re-construct the structure.

Manwar chand, Lahore - based Hindu teacher said they had issued an appeal to the Jain Community including diaspora to take up the issue of re-construction of the Temple with the Govt. of Pakistan.

Swaran Singh of Nankana sikh yatri jatha added that they donot mind doing the kar-sewa. "It is our united cause that everyone should contribute for the reconstruction of Jain Temple."

लाहौर के थड़ियाँ भावड़ियाँ में

हर वक़्त इतिहास या फिलॉस्फी की किताबें पढ़ते रहने वाले मेरे दोस्त नसीर ने मुझे पूछा कि आजकल क्या पढ़ रहे हो?

'कुछ नहीं, यह प्रोफेसर मोहनसिंह की किताब है, जो उन्होंने 1947 से पहले लिखी थी, इसमें आदमी को जिज्ञासु बने रहने व तलाश में, खोज में लगे रहने की चार लाइनें बहुत बढ़िया लगी हैं-'

रब्ब इक गुंझलदार बुझारत, रब्ब इक गोरखधंधा
खोलण लग्गयाँ पेच एसदे, काफर हो जाए बन्दा
काफ़र होणों डर के बीबा, खोजों मूल न खुँझीं
लाई लग मोमन दे कोलों, खोजी काफ़र चंगा॥

रब्ब, बन्दा और भटकना। इस भटकन का कोई अन्त नहीं। मानने या ना मानने का सवाल है। **जिसने मान लिया उसे तो 'तलाश' है। और जिसने ना माना, वो शांत होकर बैठ गया।**

'वोह आपका प्रॉजेक्ट चल रहा था जैन मंदिरों को ढूँढ़ने का, कहाँ तक पहुँच गए हो?

'लाहौर की थड़ियाँ भावड़ियाँ खोजने निकले थे।'

'अच्छा तो फिर आपको मिल गई थड़ियाँ भावड़ियाँ?'

'हाँ मिल गई। भाटी गेट के अंदर 'फकीरखाना म्यूज़ियम' के साथ पूर्व दिशा में एक छोटी गली से सीधे जाकर, एक बड़ा बाज़ार आ जाता है। यहाँ एक गोल गली है जिसके मध्य में और दोनों ओर भी घर हैं। यही जगह है 'थड़ियाँ भावड़ियाँ'। एक पूरा चक्कर है। घरों के साथ घर जुड़े हुए हैं।'

'आपने बताया था कि कोई भावड़ों का या जैनियों का मंदिर था, वह अब है या नहीं।'

'मंदिर तो कोई नहीं मिला। अब घर ही घर हैं।'

'अच्छा, ये भावड़े कौन होते हैं?'

'जैन धर्म की पटावलियों में एक कथा-'कालिकाचार्य की कथा' है। ये ईसा से करीब दो सौ साल पहले हुए। क्षत्रिय कुल में जन्मे इन कालिकाचार्य ने अपनी बहिन सरस्वती के साथ ही साधु दीक्षा ली। उस समय उज्जयिनी में गर्दभिल्ल राजा का राज्य था। इस राजा ने साध्वी सरस्वती का अपहरण कर लिया।'

'आचार्य जी और जैन संघ ने बहुत यत्न किए कि राजा इस साध्वी को छोड़ देवे, पर राजा नहीं माना। मजबूर होकर कालिकाचार्य ने अपने भक्तों के साथ सिन्धु नदी पार की और ईरान में पहुँच गए। उनके बहुत सारे अनुयायी सिंधु नदी के इस ओर ही, पंजाब में बस गए। आचार्य जी के गच्छ का नाम 'भावड़ गच्छ' था। अत: ये लोग भी उस गच्छ के नाम से भावड़े कहलाए। करीब सारे पंजाब में इनको भावड़े ही कहा जाता है।'

'हाँ तो आप कालिकाचार्य की कथा सुना रहे थे'

'आचार्य जी ने वेश बदला और ईरान में पहुँच गए। और वहाँ से 52 'शक' प्रमुखों की फौज के साथ, उज्जयिनी पहुँचे। घमासान युद्ध में राजा गर्दभिल्ल परास्त हुआ। साध्वी सरस्वती भी आज़ाद हुई। आचार्य जी ने भी अपने फौजी वस्त्र उतारे, और फिर से साधु बाना धारण कर लिया। उज्जैन की राजगद्दी पर अपने भाणजे विक्रमादित्य को बिठाया। तभी से विक्रमी संवत् आरम्भ हुआ।'

इतिहास की किताबों में से दो आर्टिकल पढ़ने के लिए मुझे देते हुए नसीर ने कहा 'इन्हें ज़रूर पढ़ लेना। एक तो है डॉ. मुबारक अली का लिखा-'मंदिर, सियासत और मज़हब', और दूसरा है पुष्पाप्रसाद का-'अकबर और जैन'।

नसीर खुद ही इन्हें पढ़ने लगा, लिखा था:-

'इतिहास ने कई बार कहा कि जीतने वालों ने हारने वालों के पूजा-स्थलों को तोड़ा है या वहाँ अपने धर्म के पूजास्थल बना दिये। ये काम मुस्लिम विजेताओं ने भी किया और हिन्दू विजेताओं ने भी किया। इतिहास साक्षी है कि हिन्दुओं ने जैन धर्म के अनेक मंदिरों को नष्ट किया या उनका रंग रूप बदल कर 'अपना' बना लिया गया। विख्यात लेखक रोमिला थापर और रिचर्ड एम. अटिन ने ऐसी बहुत सी उदाहरण दी हैं कि भारत में मुसलमानों के आगमन से पहले हिन्दुओं ने अपने ही हिन्दुओं के और जैनियों के मंदिरों को तोड़ा।'

'चलो छोड़ो इस बात को। तो फिर आपको थड़ियाँ भावड़ियाँ में कोई जैन मंदिर नहीं मिला क्या?'

'बड़ी अजीब बात है कि किताबों में उस मंदिर का ज़िक्र है, पर मौक़े पर मौजूद नहीं। मुझे याद आ रहा है कि शायद हम उस मंदिर के दरवाज़े के आगे खड़े रहे थे। हमें अजनबी देखकर, यूसुफ नाम का एक व्यक्ति हमारे पास आया था। जो-जो उसने कहा था, वह मुझे पूरा-पूरा याद है। उसने बताया था-

'यह पूरा मुहल्ला ही हिन्दू मुहल्ला था, करीब 30-35 घरों का, इन सबमें भावड़े रहते थे। इनके घरों के सामने चबूतरे (थड़े) बने हुए थे, वे लोग इन थड़ों पर बैठते थे, इसलिए इस मुहल्ले का नाम थड़ियाँ भावड़ियाँ पड़ गया। हम लोग 1947 में यहाँ आकर बसे हैं। तब यहाँ कोई मंदिर नहीं था। यहाँ घर ही हैं, मंदिर नहीं। ये हमारा घर है। इसका एक बहुत बड़ा गेट है, लकड़ी का गेट व इतनी मज़बूत देहरी और आगे पैरों में लगी पत्थर की पूरी लम्बाई की अत्यंत घिस चुकी शिला। इतना बड़ा गेट यहाँ अन्य किसी घर का नहीं था। यह गेट हमारे से बन्द नहीं होता था। हमने उसकी जगह दूसरी तरफ एक छोटा गेट लगवा लिया है।'

मेरा यह पक्का मानना है, और ये ठीक भी है कि यूसुफ जी का वो घर ही मंदिर है।

हम सबको पता है कि लाहौर के घरों, मुहल्लों और बाज़ारों में, बँटवारे के समय 1947 में, जितने अग्नि कांड हुए हैं, उतने शायद अन्य शहरों में न हुए हों। यहाँ तो एक ही दिन में आधा शहर जला दिया गया था। थड़ियाँ भावड़ियाँ का मुहल्ला भी इस आगज़नी से नहीं बचा था। मुहल्ले में सबसे पहले इन्हीं मंदिरों को आग के हवाले किया गया। खूबसूरत, मार्बल के ऊँचे शिखर व कलश वाले इस जैन मंदिर का काफी भाग देखते ही देखते मलबे के ढेर में बदल गया था। ऐसा भी सुनने में आया कि मंदिर में बिराजमान दो या तीन जैन साधुओं को आस-पास के घरों की छतों को लाँघते हुए बहुत कठिनाई से, अपने कुछ भक्तों के साथ यहाँ से निकलना पड़ा था।

लाहौर में जैन यति

इतिहास के मध्ययुग, यानि सम्राट अकबर के समय से लाहौर में जैन यतियों के आने व ठहरने के प्रमाण मिलते हैं। वि.सं. 1628 से 1745 (ई.सन् 1571 से 1688) के बीच विभिन्न यतियों ने यहाँ नूतन साहित्य की रचना की। सूत्रों शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ लिखीं।

दिगम्बर मंदिर

यहाँ एक नहीं, दो मंदिर थे। एक श्वेताम्बर मंदिर और दूसरा दिगम्बर जैन मंदिर। ये दोनों मंदिर एक-दूसरे के साथ-साथ ही थे। दिगम्बर मंदिर में जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव की पूजा होती थी। तीन मंज़िल में बना हुआ, बहुत ही आलीशान था यह मंदिर। इस मुहल्ले में तो दिगम्बरों के एक दो घर ही थे, पर पूरे शहर में रहने वाले परिवार यहाँ भक्ति करने आते थे। इस मंदिर का अब कोई नामो निशान तक भी बाकी नहीं। शिखर व दीवारों के खंडहर-बस यही बाकी हैं।

लूटपाट, मार-काट, मज़हबी जुनून, द्वेष और बदले की भावना-इन सबकी बलिवेदी पर ये दोनों मंदिर स्वाहा हो गए।

जिन मंदिरों के ऊँचे शिखर व कलशों से शांति, प्रेम और सौहार्द की गूँज निकला करती थी, वो आवाजें हमेशा के लिए चुप हो गईं।

श्वेताम्बर मंदिर का इतिहास

सम्राट अकबर के निमंत्रण पर श्री हीर विजय सूरि के पट्टधर श्री विजयसेन सूरि लाहौर पधारे थे। उपाध्याय भानुचन्द्र, शांतिचन्द्र व सिद्धि चंद्र पहले से ही वहाँ विराजमान थे।

अकबर ने ई.सं. 1575 में एक 'इबादत खाना' (धर्म चर्चा स्थान) की स्थापना की, और उसमें हिन्दू, जैन, पारसी, ईसाई धर्म के विद्वानों को शामिल करना शुरू कर दिया। वहाँ शांति और गंभीरता से धर्मचर्चाएँ होती थीं। सम्राट को भी इन धर्मचर्चाओं में बहुत रस आने लगा।

डॉ. विंसेण्ट ए. स्मिथ (Dr. Vincent A. Smith) ने 'अकबर' नाम की पुस्तक में लिखा है-

"But the Jain holymen undoutedly gave Akbar prolonged instructions for years, which largely influenced his actions, and they secured his assent to their doctrines so far that he was reputed to have been converted to jainism".

उस समय लाहौर से ही एक पुर्तगाली पादरी Pinheirs ने 3 सितम्बर 1595 को एक पत्र सम्राट अकबर के बारे में लिखा था-

"He follows the sect of the Jains (Verties)'

अर्थात् - वह (अकबर) जैन सिद्धान्तों का अनुयायी हो गया है। (व्रती = जैन)

अकबर के मंत्री कर्मचंद बछावत को जैन मंदिर व उपाश्रय के लिए भूमि प्रदान की गई। जहाँ पर आचार्य जिनहर्ष सूरि तथा हेम विमल सूरि ने वि.सं 1652 (ई.सन् 1595) में श्री सुविधिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई।

यह मंदिर बहुत ही जीर्ण हो चुका था। मूर्ति भी खंडित हो चुकी थी। तब इसी स्थान पर नए मंदिर का निर्माण कराया गया। आचार्य विजय वल्लभ सूरि जी ने मगसिर शुदि-5, संवत् 1981 (ई.स. 1924) में नए मंदिर में भगवान सुविधिनाथ की प्रतिष्ठा कराई। ऊपरी मंज़िल में श्री शांतिनाथ

व ऋषभदेव को विराजमान किया गया। 1924 से 1947 तक, मुहल्ला-थड़ियाँ भावड़ियाँ का यह जैन मंदिर भक्तों की श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा का केन्द्र बना रहा।

इस मंदिर के पास ही बने 'उपाश्रय' को पंचायती मकान कहा जाता था।

अकबर के दरबारी 'अबुल्फ़जल' ने, तथा जैनों की पट्टावलियों में इस मंदिर का भरपूर ज़िक्र है, जो पूरे सबूतों सहित है। वे सारे सबूत थड़ियाँ भावड़ियाँ के मंदिर से, पूरे-पूरे मेल खाते हैं, मिलते हैं।

अंतिम बात यह है कि 1947 तक यहाँ जैनी परिवार अच्छी संख्या में मौजूद थे, और वे लोग इस मंदिर में पूजा-पाठ करते रहे हैं। फिर, इस मंदिर का नामोनिशान कहाँ खो गया?

पंजाबी कवि शौकत का एक गीत है-

नहियों लब्भने लाल गवाचे
ते मिट्टी न फरोल जोगिया
ओए चन मेरिया
तू मिट्टी न फरोल जोगिया।

आचार्य विजय वल्लभ सूरि जी द्वारा रचित **लाहौर के श्वेताम्बर मंदिर के दो स्तवन (संक्षेप)**

पहला - श्री सुविधि जिनंदा आप विराजो लवपुर शहर में ।

दूसरा - प्रभु श्री शांति जिन स्वामी, गुज़ारिश तेरे दरबारा ।
तेरे बिन कोई नहीं मेरा, मेरी तू आली सरकारा ।
आतम लक्ष्मी प्रभु थापन, सुदि मृग पंचमी सोभे,
उन्नीसौ क्यासी लवपुर में, हर्ष वल्लभ का वरतारा ॥

दादागुरु जिनचन्द्र सूरि-लाहौर में

इंसान क्या नहीं सोच सकता। अतीत में हुई घटनाओं का, जब, हमारे पास कोई सिरा-संकेत न हो, तब उसके बारे में सोचा ही जा सकेगा। 'सोच' की दिशा और दशा ठीक हो तो कोई-न-कोई रास्ता मिल ही जाता है।

मैं अनुभव कर रहा था कि आज से 400-425 साल पहले जैन गुरु-श्री जिनचन्द्र सूरि जब इस एकान्त स्थान पर आए होंगे, उस वक़्त यहाँ क्या, कैसा होगा। लाहौर शहर तो यहाँ से 10-12 कि.मी. दूर है। उस समय यहाँ जंगल होगा, घना जंगल। या फिर कांटेदार झाड़ियाँ। और यहाँ, इन झाड़ियों में ही चौथे दादा गुरु जिनचन्द्र सूरि जी, अपने संघ समेत बिराजमान हुए होंगे।

श्री जिनचन्द्र सूरि (चौथे दादा गुरु), अपने समय के बहुत विद्वान, प्रभावक व विख्यात जैन साधु थे, जिन्हें सम्राट अकबर ने धार्मिक व दार्शनिक मंत्रणाओं के लिए फतेहपुर सीकरी में बुलाया था। इससे कुछ वर्ष पहले श्री हीर विजय सूरि से भी सम्राट ऐसी ही मंत्रणाएँ कर चुका था। फतेहपुर सीकरी में ही उसने हीर विजय जी को 'जगद्गुरु' की पदवी दी थी।

अकबर ने संवत् 1648 (ईस्वी सन् 1591-92) में, एक 'शाही निमंत्रण' भेजकर श्री जिनचंद्र सूरि जी को अपने पास लाहौर में बुलाया। वे 14 फरवरी, सन् 1592 को लाहौर पधारे। मंत्री कर्मचंद बछावत उन्हें दरबार में लेकर आया। अकबर ने उन्हें पूरा सम्मान दिया और धार्मिक चर्चाओं के लिए प्रार्थना की। अकबर वास्तव में संसार, प्रकृति, कर्मवाद, अनेकांत और जन्म-मरण के गूढ़ रहस्यों को जानने का इच्छुक था। श्री

जिनचन्द्र सूरि जी से वह बहुत प्रभावित हुआ और इनको 'युगप्रधान' की पदवी से विभूषित किया। लाहौर तक आने और वापस जाने के विहार-मार्ग (जैसे थानेसर, सामाना, ज़ीरा, पट्टी आदि) में तथा अन्य भी अनेक जगहों पर इन्होंने धर्म-प्रचार किया।

मेरा अनुमान है कि श्री जिनचन्द्र सूरि ने लाहौर के पास जिस स्थान पर तप किया, वहाँ पर जैनों के भावड़ा ओसवाल समुदाय ने पूजास्थान स्थापित कर लिया और यहाँ श्री जिनकुशल सूरि जी (तीसरे दादागुरु) की चरण पादुका स्थापित करके पूजा आरम्भ कर दी एक छोटा सा मंदिर बनाकर।

आज मैं उस मंदिर की तलाश में निकला हूँ। मैं जिनकुशल सूरि जी के उन चरण-कमलों (चरण पादुका) को देखना चाहता था, जो पूजा-स्थान बने। इन चरण-कमलों से मैं इस धरती के इतिहास की गवाही लेना चाहता था।

लाहौर से दक्षिण में 10-12 कि.मी. पर दो गाँव हैं- पहला- **भावड़ा** और दूसरे का नाम है 'गुरु माँगट'। ये दोनों एक दूसरे के निकट ही हैं। गुरु माँगट का नाम भी अब गुलबर्ग-थड़ी हो गया है।

भावड़ा ग्राम में अकबर के मंत्री-कर्मचंद बछावत (ओसवाल जैन) ने तीसरे दादागुरु आचार्य जिनकुशल सूरि जी के चरणबिंब स्थापित किये थे। इसके साथ एक बावड़ी (तालाब) और बहुत सी ज़मीन भी थी। इस स्थान की मान्यता बढ़ी और यहाँ साधु-साध्वियों का आना-जाना भी शुरू हो गया। एक छोटा सा मंदिर (जिसे मटी या गुमटी कहते हैं) निर्माण हुआ। कुछ साधुओं की समाधियाँ भी आस-पास थीं।

समय के साथ-साथ मनुष्य की इच्छाएँ भी बढ़ती हैं, जो लालच और लोभ बन कर हर चीज़ को प्राप्त करने में लग जाती हैं। भावड़ा ग्राम के पूजास्थान की बावड़ी और इसकी ज़मीन को करीब 150-175 साल पहले पास के ज़मींदारों ने दबा लिया। तब वहाँ से उस चरण-पादुका को हटा कर निकट के गाँव **गुरुमाँगट** में स्थापित कर दिया। वह चरणपादुका बहुत पुरानी हो जाने पर लाहौर शहर के मंदिर में विराजमान कर दी गई।

जहाँ पहले चरण पादुका थी, वहाँ हर महीने जैनों का मेला लगता था, जिसमें श्वेताम्बर जैन व स्थानकवासी सभी शामिल होते थे।

गुमटियों वाले घर

मुझे पहली बार पता लगा कि गुरु माँगट में कोई जैन धर्म का स्थान भी है। पुराने मकानों के मलबे और छोटी-छोटी गलियों में मैं रास्ता भूले यात्री की तरह फिर रहा था। उस मंदिर या स्थान की तलाश में जहाँ श्रीजिन कुशल सूरि जी के चरणबिम्बों की पूजा होती थी।

एक जगह कुछ बुज़ुर्ग व जवान बैठे ताश आदि खेल रहे थे। उनमें से एक को मैंने पूछा-

'आप यहाँ के रहने वाले हो?'

'हाँ'।

'क्या आप जद्दी-पुश्ती यहाँ के हो?'

'हाँ'।

'क्या आपमें से किसी को याद है कि यहाँ गुरु माँगट में कभी कोई ज़ैन मंदिर होता था।'

'आपने उसका क्या करना है?'

'कुछ नहीं। मैं उसे देखना चाहता हूँ। मुझे उसकी तलाश है।' बाबा जी ने बताया-'जैन मंदिर गुरु माँगट में नहीं था। वो तो गुरु माँगट के साथ वाली, इसी गाँव की आबादी 'भावड़ा' में था। उसे भावड़ा इसलिए कहते हैं कि वहाँ भावड़े जैनियों का मंदिर होता था।'

बाबाजी की बात सुनकर मुझे याद आ गया। लाहौर शहर ..... अब चारों तरफ बहुत फैल चुका है, वहाँ फिरोज़पुर रोड पर माडल टाउन के पास एक छोटी सी बस्ती है, जिसका नाम भावड़ा है।

धार्मिक सरोकारों की दृष्टि से पंजाब के सभी भावड़े जैनधर्म से ही जुड़े हुए हैं। आम लोग जैनियों को भले ही न जानते हों, पर भावड़ों को ज़रूर जानते हैं। पंजाब के प्राय: शहरों में गली, मुहल्ले, बाज़ार या

कस्बों के नाम 'भावड़ा' शब्द पर रखे हुए हैं। आज हम लाहौर की ही छोटी बस्ती में हैं, जिस बस्ती का नाम है- 'भावड़ा'।

भावड़ा गाँव में एक मकान का द्वार खटखटाया। ये खुर्शीद अहमद जट्ट संधु का घर है। उसने बताया कि जट्ट वड़ायच संधु, राजपूत और जट्टगिल्ल-इन चार परिवारों ने इस गाँव को बसाया था। हमारे पुरखा पहले सिख होते थे, फिर हम मुसलमान हो गए।

अपने साथ लेकर वह मुझे भावड़ा गाँव दिखाने लगा। उसने बताया कि यहाँ सदियों पुराने वट वृक्ष होते थे जो सारी आबादी को घेरे हुए थे। पर मैं उस वातावरण का अनुमान लगा रहा था कि दूर-दूर तक वृक्षों के झुण्ड में कैसा होगा छोटा सा जैन मंदिर और उसके साथ का सरोवर।

'यहाँ होता था एक छोटा सा जैन मंदिर,' मंदिर की जगह दिखाते हुए खुर्शीद अहमद ने कहा।

'अब मंदिर वाली जगह पर चार घर बस गए हैं। इनको लोग गुमटियों वाले घर कहते हैं।'

'गुमटियों वाले घर क्यों?'

'वो इसलिए कि यहाँ कोई ऊँचा या बहुत बड़ा मंदिर नहीं था। एक गुमटी थी बहुत ही सुन्दर। उसके अन्दर-व-बाहर बहुत ही महीन व खूबसूरत चित्रकारी की हुई थी। इसमें एक गोल पत्थर था, जिस पर पैरों के निशान बने हुए थे। इनको आकर वो लोग माथा टेकते थे। इस गुमटी के साथ ही अन्य भी छोटी-छोटी गुमटियाँ बनी हुई थीं, जिन्हें समाधियाँ कहते थे। खुर्शीद ने अपनी स्मरणशक्ति को पूरे ज़ोर से खुरचा।

'यहाँ एक बड़ा तालाब होता था जो 11 कनाल रक़बे का था। इसमें सीढ़ियाँ उतरती थीं। कुछ दूरी पर पुराने वक़्तों के दो कुँए थे। हमारे बुज़ुर्ग बताते थे कि कुँओं का पानी बहुत मीठा था।'

लाहौर से सटे इस गाँव भावड़ा में जिन पवित्र चरणों की पूजा होती थी, वे अब अलोप हो गए। गुमटी कहलाने वाले इस मंदिर के आस-पास किन-किन साधु-साध्वियों की समाधियाँ थीं, इनका कुछ पता नहीं।

खुर्शीद कह रहा था- 'यहाँ से आज भी पुराने समय की ईंटें निकलती हैं- जिनकी लम्बाई डेढ़ फुट, चौड़ाई एक फुट और मोटाई तीन इँच होती है। अब ये नए घरों के नीचे दब चुकी हैं। सरोवर की ज़मीन पर कब्जे हो चुके हैं। गुमटियाँ, मंदिर, सरोवर- अब तो ये एक सुपना ही है। उनकी यादगार है, बस, ये चार घर, जिनको 'गुमटियों वाले घर' कहा जाता है। इन चार घरों की नींवों में गुमटियाँ दफ़न हो चुकी हैं। अब कोई नहीं जानता कि यहाँ कभी कोई जैन मंदिर भी था।

बाहर निकले तो फिर वही मोटर साइकलों, कारों, बसों और लोगों का शोर-आवाज़ें। शायद ऐसे ही किसी तूफान ने इस तप-स्थान के एकान्त को भंग कर दिया है। उस वक़्त यहाँ वृक्षों का जंगल था, आज जंगल है इंसानों का। तब शांति थी, आज अशांति है।

बसने और उजड़ने की यही कहानी है।

थड़ियाँ-भावड़ियाँ का इतिहास जुड़ा है सम्राट् अकबर से

सम्राट् अकबर के आग्रह से श्री हीर विजय सूरि ने सन् 1583 का चौमासा फतेहपुर सीकरी में ही किया तथा विहार करते समय बादशाह के कहने पर अपने विद्वान शिष्य शांतिचन्द्र जी को वहीं छोड़ गए। शांतिचन्द्र एक साथ 108 अवधान की शक्ति धारण करने वाले और चमत्कार आदि में सिद्धहस्त थे।

बादशाह जब लाहौर में थे तो शांतिचन्द्र भी वहीं थे। उधर श्री हीर विजय सूरि की आज्ञा से उपाध्याय भानुचन्द्र भी लाहौर आए।

लाहौर में जैन साधुओं के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं था। एक दिन भानुचन्द्र को दरबार में पहुँचने में देर हो गई। कारण पूछने पर भानुचन्द्र ने उत्तर दिया कि मेरे पास रहने के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं है। जो है वह अत्यंत संकीर्ण है। इसलिए राजदरबार में आने में कठिनाई होती है। अकबर ने पहले स्थान के पास ही भूमि का एक टुकड़ा देने का आदेश दिया। वहाँ स्थानीय श्रावकों ने एक उपाश्रय तथा सुविधिनाथ व शांतिनाथ स्वामी का एक मंदिर भी बनवा दिया। इसकी प्रतिष्ठा श्री हेमविमल सूरि जी ने कराई।

कालान्तर में यही स्थान 'थड़ियाँ-भावड़ियाँ' नाम से जाना गया।

सम्राट् अकबर का कश्मीर-भ्रमण

उपाध्याय भानुचन्द्र जी भी अकबर के साथ थे।

अपने लाहौर प्रवास में सम्राट ने कश्मीर की प्राकृतिक सुन्दरता, मासूमियत, झरने, पहाड़ तथा वादियों को देखने और वहाँ की झीलों में स्वयं नौकाविहार का आनंद लेने की प्रबल इच्छा से, अपने मंत्री कर्मचन्द बछावत को पूरी व्यवस्था का ज़िम्मा दिया। सफर के सुप्रबंध, टेंट, घोड़े, खच्चर, मज़दूर, रास्ते के जानकार लोग, सुरक्षा और शाकाहारी भोजन आदि के साथ ही, किसी संभावित दुर्घटना या अनहोनी से बचाव के लिए एक तांत्रिक और अकबर के कहने पर जैन मुनि (वाचक) उपाध्याय भानुचन्द्र को भी साथ लिया गया।

श्री अमर जैन होस्टल, लाहौर

समय की ज़रूरतों को समझते हुए तथा समाज के होनहार व इच्छुक युवाओं को उच्च शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो सके, इसके लिए पंजाब की जैन स्थानकवासी समाज ने आचार्य श्री अमरसिंह जी (पूजजी महा.) के नाम पर लाहौर के सन्तनगर में एक आदर्श संस्था 'श्री अमर जैन होस्टल' का निर्माण कराया।

इस विशाल बिल्डिंग में होस्टल की तरह ही कमरे थे। लाहौर में पढ़ाई के लिए आने वाले जैन विद्यार्थी यहाँ के सात्विक और शुद्ध वातावरण में रहकर, अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। तत्कालीन समाज में शैक्षणिक उत्थान के लिए अमर जैन होस्टल की भागीदारी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

पाकिस्तान बनने पर यह संस्था चंडीगढ़ में स्थापित की गई।

श्री स्थानकवासी जैन हॉल

थड़ियाँ भावड़ियाँ मुहल्ले के पास ही कचहरी बाज़ार में यह चार मंज़िला हाल मौजूद है। यह स्थान साधु-साध्वियों के ठहरने और सामाजिक सरोकारों में उपयोग होता था।

यहाँ लगे शिलालेख के अनुसार इसकी नींव श्रीमती सुखदेवी जैन ध.प. लाला रलाराम जैन, बी.ए.; पी.सी.एस. सीनियर सब जज (रिटा.) के द्वारा 2 अक्तूबर 1940 को रखी गई तथा उद्घाटन फरवरी 1942 में सम्पन्न हुआ।

श्री दिगम्बर जैन मंदिर, लाहौर कैंट

लाहौर कैंट का दिगम्बर जैन मंदिर बहुत खोज करने पर भी नहीं मिला। 1947 में ही यह मंदिर भी दंगों की आग का भागी बना होगा।

---

1. तत्कालीन लाहौर के श्वे. जैन समाज में - सेठ मोतीलाल जौहरी, ला. सुन्दरलाल, शांतिलाल, ला. माणेकचंद, उस्ताद विशनदास, ला. खज़ाँचीलाल, सरदारीलाल, चिमनलाल, अनन्तराम तथा बाबू जसवंतराय जैन के नाम उल्लेखनीय है।

2. According to Dr.Peter Flugel and Muzaffar Ahmed - "Apart from one Jain manuscript housed in Lahore Museum Library, there is a big collection of Jain manuscripts in Punjab University's Woolner collection of Sanskrit manuscripts. This is now a newly developed database as a joint project of Punjab and Vienna University.'

भगवान महावीर की चरणरज से पवित्र हुआ भेरा

दिलपज़ीर खबरे केहड़े रोज़ मुड़ के........

भेरा का ज़िक्र कहाँ से शुरू करूँ, यह समझ नहीं पा रहा था। मेरे मेज़ पर जनरल कनिंघम के विवरण और उसमें शाहपुर के डिप्टी कमिश्नर जेम्ज़ विल्सन का लिखा 'पंजाब गज़ेटियर'; अन्यों में इस्पीरियल गज़ेटियर ऑफ इण्डिया; तारीख भेरा; फाह्यान और ह्यूनसाँग के सफरनामे; यूनानी सिकंदर के हमले, फिर भेरा का पुराना नाम और इसके बाद भगवान महावीर के संदर्भ में आया हुआ भेरा का नाम, इन सब के परिप्रेक्ष्य में मैं बात कहाँ से शुरू करूँ?

किताबों के उड़ते हुए पृष्ठ मुझे भी अपने साथ उड़ा रहे थे। कई बार भेरा के ऐतिहासिक पक्ष को देखने का यत्न किया, पर हर बार कहीं खो जाता रहा।

भावड़ा कस्बा

लाहौर से इस्लामाबाद जाते हुए, भेरा से पहले, एक तरफ को 'भावड़ा' नाम का कस्बा दिखाई दिया। मुझे लगा यही वह स्थान है जहाँ कभी भेरे वाला जैन मंदिर था। फिर प्रश्न पैदा हुआ कि भेरा से इतनी दूर, वहाँ का जैन मंदिर यहाँ कैसे हो सकता है? नहीं, ये भेरे वाला मंदिर नहीं। यहाँ भावड़ों की बस्ती थी। शायद उनका मंदिर भी ज़रूर हो।

भावड़ा कस्बे में हर प्रकार की दुकानें, बड़ा बाज़ार और थोड़ा आगे जाकर बाज़ार की गोलाई। कस्बे के सुन्दर पक्के मकान इसके अतीत की खुशहाली बता रहे थे। ये सारा कस्बा जैन भावड़ों का था फिर ये सभी कूच करके भारत चले गए। पीछे रह गई बेजान दीवारें, जो गूंगी और बहरी भी हैं। यहाँ के मंदिर के बारे में दो घंटे तक, बहुतों से पता करते रहे, पर कुछ भी सुराग नहीं मिला। भावड़ा की इस बस्ती को छोड़कर, अब मेरा ध्यान भेरा की तरफ था।

भेरा

भेरा हज़ारों साल पुराना शहर। यूनानी सिकंदर के आने से पहले का शहर। सदियों पुराने ग्रंथों में कहीं-न-कहीं भेरा का ज़िक्र आ जाता है। मैं जैन मंदिर को ढूँढ़ रहा था। यानि जैन श्वेताम्बर मंदिर, गली भावड़ियाँ जिसमें भगवान चन्द्र प्रभु की पूजा होती थी। इस शहर की नींव रखी गई, तभी ये मंदिर बना। समय ने पलटा खाया। किसी को ख्याल भी नहीं था कि मंदिर समेत गली भावड़ियाँ ने भी कहीं खो जाना है।

पूछने पर एक ने बताया कि आप रंगमहल चले जाओ। वहाँ बहुत से मंदिर हैं। हम रंगमहल को हो लिये।

अब हमारे सामने दो मंज़िला एक ड्योढ़ी। दरवाज़े पर फूलदार लोहे का पतरा। कहीं-कहीं सुनहरा। अन्दर दूर तक खाली। इसके पिछवाड़े कीकर का एक वृक्ष और वृक्ष के पास मंदिर की जीर्ण व उजड़ी हुई इमारत। हर तरफ गोबर, उपले और दुर्गंध। हुक्का पी रहे एक बुज़ुर्ग ने बताया कि यह विष्णु जी का मंदिर है। हम इण्डिया से यहाँ आए तभी से हम यहाँ हर जुमेरात (गुरुवार) को दीपक जला देते हैं।

भेरा की गलियों में घूमते रहे। और कितने ही मंदिर मिले। सभी को देखा। पर नहीं मिला जैन मंदिर। न ही मिली भावड़ा गली।

वीत भय पत्तन

शहर के सबसे बड़े स्कूल (मदरसा) के आगे मुहल्ला पराचियाँ

में पहुँचे। मेरे दाईं ओर शहर से बाहर जेहलम नदी बह रही है- विहीत नदी। इस नदी से बाहर कभी एक बड़ा शहर था, जिसके एक तरफ नदी और दूसरी तरफ पहाड़। शान्त शहर। न ही नदी की तरफ से शत्रु का डर, और न ही पहाड़ की तरफ से। इसीलिए इसको भय-रहित कहा जाता है। यानि डर से आज़ाद।

एक दिन इसकी आज़ादी को नज़र लग गई। यूनान से सिकंदर की सेना इस शहर तक पहुँची, तो यहाँ के शासकों ने उसके आगे धन-दौलत के ढेर लगा दिये और शहर की शाँति व अमन को बचा लिया। सिकंदर जेहलम को पार करके पोरस की तरफ बढ़ा। भेरा उस समय एक स्वतंत्र रियासत (राज्य) था।

पुराना भेरा

कनिंघम ने लिखा है कि चीन से आये फाह्यान ने जेहलम को भेरा से पार किया। उस समय ये शहर नदी के किनारे पर आबाद था। कई सदियों के बाद चीन से आए ह्यूनसाँग ने लिखा कि 'मैंने अपने सफर में भेरा की महान नगरी देखी, जो शिक्षा और कला का केन्द्र थी। उस समय यहाँ राजा परसंगाला का राज्य था।'

फिर एक दिन जेहलम नदी ने इस शहर को अपने अन्दर समा लिया। पूरा शहर रेत और पानी के नीचे चला गया।

मध्य काल में उत्तर-पश्चिम से आने वाले आक्रमणकारियों ने भी भेरा को नहीं बख्शा। मुगल बादशाह बाबर ने 'तुज़के बाबरी' में लिखा है- 'मेरे राज्य की सीमाएँ भेरा-पहाड़ तक है'। और फिर सन् 1519 में अफगानी कबाइलियों ने इसे लूट लिया।

एक पंजाबी कवि दिलपज़ीर के दिल से दर्द भरी हूक निकली-

ग़मां दी रात ज़ुल्मात अंदर, आहा कहीं एह चन चिराग़ भेरा
गए बुझ चिराग़, सुराग़ गले, अचनचेत होया दाग़ दाग़ भेरा
जगह बुलबुलाँ दी आही बाग अंदर, ज़ागां मल्ल लिया सारा बाग़ भेरा
'दिलपज़ीर' खबरे केहड़े रोज़ मुड़के, होसी फेर एह आली दिमाग़ भेरा।।

उजड़े शहर भेरा को शेरशाह सूरी ने दोबारा बसाया। चार साल की बादशाहत में ही वो अपने पीछे बेशुमार अमिट निशान छोड़ गया। उनमें से उसकी एक यादगार ये भेरा भी है, जो उसने दोबारा आबाद किया।

श्वेताम्बर मंदिर भेरा

मुहल्ला पराचियाँ में ही हमें गली भावड़ियाँ का पता लगा। हम उधर चले गए। मैंने पढ़ा था एक ग्रंथ में कि एक बार भगवान महावीर राजा उदायन की विनती पर जेहलम के उस पार के नगर वीतभय पत्तन पधारे जिसे अब भेरा कहते हैं। ये रास्ता दो सौ मील से लम्बा था। भगवान कुरु देश, जाँगल और मरु होते हुए यहाँ पहुँचे थे।

लम्बी गली दो हिस्सों में बँट गई। छोटी सी इस गली में करीब चार घर ही थे। आगे चल कर गली जहाँ बंद होती थी, वहाँ एक छोटा सा दरवाज़ा, और उसके आगे मंदिर का गुम्बद।

कुछ साल पहले जब मैं पहली बार भेरा में आया था, उस समय मैं इस मंदिर के अन्दर गया था। यहाँ कुछ लोग रहते थे। आँगन में चारपाइयों पर औरतें बैठी थीं। उनमें से सबसे बड़ी उमर वाली स्त्री ने कहा था- 'मुड़, एह पंच सौ साल पुराना मंदिर है जी। ते एह जैनियों दा मंदिर अखवाउंदा ए', इसके अंदर फर्श पर बड़े आकार की ईंटें लगी हुई थीं। डेढ़ बाई दो फुट, मोटाई दो इंची यह प्रमाण था इसके प्राचीन होने का। पाँच सौ साल पुराना मंदिर। भेरा शहर जब दोबारा आबाद हुआ। तभी यह मंदिर भी वजूद में आया।

पहले विश्वयुद्ध (1914-18) तक सभी भावड़े यहाँ से चले गए थे। पीछे रह गई थी गली भावड़ियाँ और मंदिर। हाँ, मंदिर की मूर्तियाँ, सुना है कि सन् 1940 के करीब यहाँ से गुजराँवाला ले जाई गईं।

इस बार भी मैं मंदिर को अंदर जाकर देखना चाहता था। मंदिर की पवित्रता, भगवान की मूर्तियों की जगहें और ऊँचा गुँबद-जहाँ समय ने छिपने का स्थान बना लिया है।

भगवान महावीर ने यहाँ अपना उपदेश दिया था- जो कि मानव मन की शांति के लिए था। प्रश्न पैदा हुआ कि **क्या मनुष्य भटकन में, माया में है। जब ये भटकन खत्म हो जाती है, तब वह शाँति, सुकून की दशा में चला जाता है। जब उसे शांति-सुकून नहीं मिलता तब वह नरक भोगता है। नरक जिसे दूसरे धर्मों में जहन्नुम कहा जाता है। क्या यह शाँति-सुकून जन्नत या स्वर्ग का दूसरा नाम है।** भगवान के उपदेश ने पता नहीं कितने ही अन्य प्रश्नों को जन्म दे दिया है।

पता लगा कि इस गली वाला (मंदिर का दरवाज़ा) हमेशा के लिए बंद हो चुका है। पड़ोसियों ने इसके आगे अपनी दीवारें बना ली हैं। मंदिर का दूसरा दरवाज़ा पिछली गली में है। हम उस तरफ गए। वहाँ एक भारी सा ताला लगा था। मंदिर के सामने, चबूतरे से कुछ फोटो लिये। ताला हम तोड़ नहीं सकते थे।

हमने जैन श्वेताम्बर मंदिर की तलाश में शहर के सारे मंदिर देख लिये। जैन मंदिर शहर की ऊँची इमारतों में खो गया। जैसे चाँद बादलों में छुप जाता है। चाँद से याद आया कि भेरा में भगवान चन्द्रप्रभु की पूजा होती थी। मंदिर का काफी भाग बाहर से दिखाई दे रहा था। कमल की पत्तियों में से उठता हुआ गोल गुंबद अभी तक शानदार लग रहा था। गुंबद के ऊपर बहुत छोटा सा कलश भी बना हुआ है।

---

1. जेहलम नदी की मस्तानी चाल में निरंतर बहते हुए पानी की धारा को इस इलाके में 'विहीत' (बहाव-गति) पुकारा जाता है। जीवन दायिनी कहलाने वाली विहीत नदी (जेहलम) ने युगों से मानव की रूह को शांति, चित्त को तस्कीन और जीवन को प्राण दिए हैं। इसके निरंतर बहाव से ही इसका नाम 'विहीत' हुआ। जैन ग्रंथों में भेरा को 'वीत भय पत्तन' कहा है। दो तीन अक्षरों के थोड़े से बदलाव से इसे 'विहीत बहे पत्तन' कहा जाने से इन नाम में स्थानीय खुशबू को भी सूँघा जा सकेगा।

2. भेरा के मूल भावड़ा वहाँ से गुजराँवाला आदि में जा कर बस गए। समय के साथ उनकी संतानों को 'भेरा' भी भूल गया। सन् 1957-58 में लुधियाना में श्री चननलाल-दर्शन कुमार (उषा हौज़री) की माता मुझे प्राय: बताती थी कि वे मूल भेरा के हैं।

3. उपा. सोहनविजयजी 1923 में पधारे तो मंदिर व प्रतिमाएँ थीं, पर यहाँ कोई जैन घर नहीं था।

पिण्डदादन खाँ

असीं जम पल धरती ओस दे......

कल शाम कालाबाग से वापस आते हुए हमें बन्नू से लाहौर जाने वाली बस मिली। पूरी बस में एक भी शकल दाढ़ी व टोपी के बिना नहीं दिखी। सिर्फ हम दो तथा दो और - कुल चार ही थे, बिना दाढ़ी के बिना टोपी के।

बन्नू के चारों तरफ का इलाका, आजकल जंग का मैदान है। कोई पता नहीं कि आपके पास आने वाला व्यक्ति असल में मानव-बम तो नहीं। हर आदमी, दूसरे को सन्देह से देखता है। हमारे पास तो कैमरे भी थे। हमें कहीं अमरीकी जासूस न समझ लें।

हम खुशाब के रास्ते से पिंडदादनखाँ पहुँच गए। लाहौर से यह स्थान करीब 180 कि.मी. दूर है। यह नगर नमक की पहाड़ियों के बीच है। लाल रंग का नमक। ख्योड़ा की नमक की खानें विख्यात हैं। इन पहाड़ियों के पैरों में है पिंडदादानखाँ। तीन तरफ दूर-दूर तक मैदान व सदियों पुराना किला। पास ही है हिन्दू तीर्थ कटासराज।

ऐसा भी माना जाता है कि जेहलम नदी के किनारे कौरुओं का युद्ध लड़ा गया जिस पर महाभारत का महाकाव्य लिखा गया। इसी युद्ध का अगला पड़ाव है कटासराज, जहाँ पांडुओं ने बनवास काटा। माता पार्वती जी के वियोग में शिव जी महाराज की आँखों से गिरने वाला एक आँसू। यह आँसू तो नीचे पाताल में समा गया, पर दर्द की इस चोट से धरती फट गई और नीचे से एक चश्मा फूट गया।

कटासराज का आँतरिक दर्द भी श्रीजिन कुशलसूरि जी की समाधि

से अलग नहीं था। उदासी और दर्द की जैसी चादर उस समाधि ने ओढ़ी है, वैसी ही कटासराज तीर्थ ने भी ओढ़ रखी है।

पिंडदादनखाँ पहुँच कर हमारी सबसे बड़ी चिंता यहाँ के श्वेताम्बर जैन मंदिर को ढूँढ़ने की थी। प्राय: सभी लोग जैनी व हिन्दुओं को अलग नहीं समझते। वो हर मंदिर को हिन्दू मंदिर ही समझते हैं। जैनों बारे में तो बिल्कुल नहीं समझते। हाँ, कहीं-कहीं पुराने लोगों को भावड़ा या भावड़े ज़रूर पता है। इनको भी वो अक्सर हिन्दू भावड़े कह देते हैं।

मेरे सामने था रिक्शाओं का अड्डा। वहाँ सबसे बड़ी उमर वाले एक रिक्शा ड्राईवर से जैन मंदिर के बारे में पूछा। वो सोच ही रहा था कि बाकी रिक्शा वाले भी वहाँ जमा हो गए। सभी इस जैन मंदिर के बारे में एक-दूसरे से पूछने लगे।

'अरे यार, मुहल्ला खैरशाह में नई इमाम बारगाह के पिछवाड़े।' 'भीड़ में से एक आवाज़ आई। सभी ने उसकी हाँ में हाँ मिला दी।

हम दोनों रिक्शा में बैठ गए, मुहल्ला खैर शाह के लिए। मैं भी पिंडदादनखाँ के इतिहास के पृष्ठ खोलने लगा।

पिंडदादनखाँ को खोखर राजपूतों ने बसाया। ये पहले हिन्दू थे, फिर मुसलमान हो गए। दादनखाँ मुगल बादशाह जहाँगीर का शाही नौकर था। पहले से आबाद जंजुहों से लड़कर, दादन ने यह ग्राम बसाया और उसके नाम से ही विख्यात हो गया।

यहाँ का भगवान सुमतिनाथ का मंदिर बहुत प्राचीन है। श्री सुमतिनाथ जैनों के पाँचवें तीर्थंकर हैं। विक्रम संवत् 1926 (ईस्वी सन् 1869) में मुनि बुद्धि विजय जी ने इस मंदिर की मरम्मत का इंतजाम कराया और वैशाख सु. 6 के दिन प्रतिष्ठा कराई।

जैन मंदिर :

रिक्शा वाला हमें मुहल्ला खैरशाह से होकर, एक छोटी सी गली में इमाम बारगाह के पिछवाड़े में पहाड़ी कीकर वृक्षों की झुंगी में ले गया और रिक्शा रोककर बोला- 'ये है जी जैन मंदिर'। पुराने गुम्बद की तरफ इशारा करते हुए उसने कहा।

इमारत के चारों तरफ जंगली कीकरों के बेशुमार वृक्ष थे। इनमें से निकल कर, मैंने ज़मीन से ऊपर तक गुबंद को अच्छी तरह देखा। ज़मीन से चोटी तक कोई 30 फुट ऊँचा बड़े आकार का था यह गुंबद। समय के साथ शिखर का रंग काला हो चुका था। यह चौकोर शकल का बना हुआ था। इसकी चारों नुक्कड़ों (कोनों) से ऊपर तक, पूरी ऊँचाई तक, गोल-गोल छोटे-छोटे घड़ियों के समान लाटुओं की लड़ियाँ थीं। देखने में ऐसे लगता था जैसे कि यह इमारत इन लाटुओं पर खड़ी है। मैं इस का दरवाज़ा ढूँढ़ रहा था। अली उमरान इसकी फोटो ले रहा था।

सिंध सूबा और पंजाब के मंदिरों से यह मंदिर कुछ अलग तरह का है। इसका कलश या शिखर बहुत छोटे आकार में इसी गुंबद पर बना हुआ है।

कहा जाता है कि इस मंदिर में भगवान सुमतिनाथ, भगवान ऋषभ-देव और भगवान शांतिनाथ की पूजा होती थी।

मंदिर की गुंबद वाली इमारत का दरवाज़ा बरामदे में खुलता था और बरामदे का पूर्व दिशा की तरफ। छोटी ईंटों से बना ये छोटा सा बरामदा, बड़े बरामदे का ही काम देता था। कोई भी रोशनदान न होने से, अन्दर अंधेरा पसरा हुआ था। अंदर पहुँच कर, काफी देर बाद ही, कुछ नज़र आया।

बरामदे के अन्दर एक कोने में गोबर की पाथियों (उपलों) का ढेर था। इतनी अच्छी व बड़ी इमारत के दरवाज़े के बढ़िया तख्तों को उतार कर, किसी ने घटिया से तख्ते (भगवान के घर को) लगा दिये थे।

मंदिर के केन्द्रीय कक्ष में जाना चाहता था। मगर ताला लगा था। निराश होकर बाहर आ गया।

सामने के किसी घर से चाबी का पता किया। एक बुज़ुर्ग बाहर निकले। उन्होंने अपनी बैठक में हमें बिठाया। बैठक के बाहर था जैन मंदिर, जहाँ भगवान ऋषभदेव, शांतिनाथ, सुमतिनाथ की पूजा होती थी। मंदिर के अंदर का अंधेरा मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा था।

मैंने उनसे इस मंदिर का नाम पूछा। तो कहने लगे जी, नाम तो

पता नहीं पर लोग इसको बानियों का मंदिर कहते थे, इसके पुजारी भी साधु थे।

'हाँ, ये बताओ कि ये मंदिर कितना पुराना है?'

'जी, ये मंदिर तो बहुत पुराना है, पिंडदादनखाँ बसने से पहले का है। पर इसकी अंतिम मरम्मत सन् 1918 में हुई। आप खुद देखें, ये चबूतरा जिस पर मंदिर खड़ा है ये लाल पत्थर का है। इसमें लगी ईंटें एक फुट चौड़ी, डेढ़ फुट लम्बी और दो इंच मोटी हैं। पता नहीं किस सदी की हैं ये ईंटें।'

मैंने बड़े प्यार से मंदिर को लगे ताले के बारे में उनको पूछा, और इसे खुलवाने को कहा। उन्होंने बताया कि चाबी तो हमारे घर ही होती है। पर आज परिवार वाले कहीं गए हुए हैं। कहने लगे कि इसके अंदर यह गुंबद ही है, बाकी तो अंधेरा है। कोई बल्ब भी नहीं। खोलने पर भी आपको कुछ नज़र नहीं आएगा।

मंदिर की बड़े आकार की ईंटें जो उन सज्जन के दरवाजे के आगे भी लगी हुई थीं, वो अपना पूरा इतिहास, अपनी पवित्रता और अपनी लम्बी उमर को समेटे, वहाँ धूप में ही पड़ी हुई थीं। मंदिर के बरामदे का अंधेरा वहीं स़ोया पड़ा था। और मंदिर के अन्दरूनी कक्ष को लगा हुआ ताला चाबी की इंतज़ार में था। ये सब कब तक चलेगा?

सत्तर साल, सत्तर सदियों से भारी हो गए। आज मंदिर मौजूद हैं पर उनका इतिहास अब यादों में से विस्मृत हो गया है। आज, काली हो चुकी दीवारें, धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खो रही हैं। पाकिस्तान में जैन धर्म और उसकी यादगारें अपने आखिरी साँसों पर हैं। अहिंसा की पालना करने वाला धर्म आज खुद ज़िंदगी की भीख माँग रहा है। बस ये ही है पाकिस्तान में जैनधर्म का इतिहास।

---

1. पिंडदादनखाँ के मंदिर की प्रतिमाएँ या अन्य कोई भी सामान, देश के बँटवारे के समय, भारत नहीं लाया जा सक सब कुछ वहीं रह गया।

2. श्री मूलेशाह आदि पुराने श्रावकों के नाम कहीं-कहीं मिलते हैं।

3. ईस्वी 1923 के शुरू में उपा. सोहनविजय जी अपने शिष्यों के साथ करीब एक माह यहाँ रहे थे।

सिंधु नदी का साम्राज्य

(जहाँ बॉन, बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म इकट्ठे पनपे)

फ्राँस की महिला-शोधकर्त्ता मैडम एलिस एल्बीनिया (ALICE ALBINIA) की 366 पेजी किताब - ''एम्पायर्स ऑफ दि इण्डस, स्टोरी ऑफ अ रिवर' - महज़ एक नदी की कहानी या कोई कारनामा मात्र ही नहीं है, जहाँ नदी की धारा के उलट, ऊपर की ओर जाकर, विभिन्न तरह के लोग, उनके रीति रिवाज देखे हों। यह किताब इससे कुछ ज्यादा है, जहाँ चेतना के वे द्वार खुलते हैं, जो समय की मोटी परत में दबे पड़े हैं।

दूसरी ओर, वैदिक युग की यह महान नदी, जब आकार में छोटी होकर, खत्म होने को होती है, तो हड़प्पा और मोहिन जोडारो की सभ्यताओं के विकास और ह्रास की कहानी याद कराती हैं।

संस्कृत भाषा की 'अजय सिंधु' नदी को मैडम एलिस ने खोजने की कोशिश की है। लेकिन हिन्दू धर्म की जन्म भूमि यह नदी 'नदियों की सिरमौर', अब ना तो अजय है, न ही हिन्दुओं के निकट है।

इसी सिंधु नदी को जानने के लिए मैडम एलिस ने, नदी के उद्गम तक बहुत ही कठिन और खतरनाक सफर किया है। इस यात्रा में उसे विभिन्न सभ्यताओं, संस्कृतियों और आध्यात्मिक अनुभवों का भी परिचय हुआ। सिंधु की सहिष्णुता और सरलता को जानकर यह भी खेद हुआ कि मानव ने कितना कुछ गँवाया है। सिंधु और उसकी सहायक नदियों में ही सिकंदर महान का विश्व विजय का सपना चूर हुआ था।

सिंधु का ह्रास तब शुरू हुआ जब पश्चिम के लोगों ने इसे लूटना शुरू किया।

मैडम एलिस एल्बीनिया अपने साथियों सहित नदी के उद्गम के नज़दीक वहाँ पहुँची, जहाँ बॉन, बौद्ध, जैन व हिन्दू धर्म इकट्ठे ही फले-फूले और मानव मात्र की सोच को प्रभावित करते रहे। मैडम एलिस कैलाश पर्वत और उसके पीछे तक गई।

हिन्दू धर्म की मान्यता का कैलाश पर्वत, भगवान शिव का स्थान है। जैनों में इसे अष्टापद और भ. ऋषभदेव की निर्वाण स्थली माना गया है। जबकि तिब्बती लोगों ने इसे काँगरिक पौच कहा है और वे इसे भगवान बुद्ध का निर्वाण स्थान मानते हैं। कुछ भी हो, इसकी मान्यता व पवित्रता अजेय है।

परन्तु अन्त में उसे यही चिंता थी कि मानवीय प्रहारों से जब ये नदियाँ सूख जाएँगी, तो इनकी प्रशंसा में गाए जाने वाले गीतों में खेद और कड़वाहट ही भरे होंगे।

(The Tribune, Sunday, 30.11.2008)

सिंधु नदी के क्षेत्र व मार्ग का चित्रण (चित्रावली पृष्ठ-1)

जेहलम

उदास दीवार दरवाज़े
पंख कटी परवाज़ें
धरती का सीना चीरती
सन्नाटे की आवाज़ें

नदियाँ हमेशा पहाड़ों से ही सीढ़ी दर सीढ़ी उतरती हैं। हर नदी का बहाव व पड़ाव अपना-अपना होता है। इन नदियों के पानी के साथ-साथ कथा-कहानियाँ भी चलती हैं। नदी नाम है प्रेम का, जीवन का।

वेदों का विहीत और आज का जेहलम, लल्ला-आरफा के पहाड़ों से उतरता-चलता हुआ आकर टकराता है राजा पोरस की बेटी मंगला के कोट से। मंगला पोरस की बेटी। सुबह का तारा। रोशनी का बुलावा, उम्मीद का सुनेहा। जेहलम का पानी आराम करता है इस क़िले के पैरों में। जैसे इतिहास में वर्णित राजा पोरस की बेटी मंगला के चरण धो रहा हो।

"भाई साहिब, मशीन मुहल्ला आ गया। आगे बताओ किधर जाओगे?" रिक्शे वाले की आवाज़ ने मेरे इतिहास के पृष्ठ बंद कर दिये।

"जी बस, यहाँ ही"; मैंने सिर को झटका और वहाँ ही उतर गया।

"यहाँ दरया (नदी) किस तरफ है?" मैंने रिक्शे वाले से पूछा।

उसने मुझे कोई जवाब न दिया। मैं सड़क पर चल रहा था। कहाँ, कुछ पता नहीं। मैं अपनी सोच के नशे से ही अभी बाहर नहीं आया था।

दोनों तरफ इमारतें। बहुत पुरानी इमारतें। 1947 से पहले की। कहीं-कहीं कोई बिल्डिंग भी नज़र आ जाती थी।

जेहलम पंजाब की पाँच नदियों में से एक का नाम है और नदी के किनारे बसे शहर का नाम भी जेहलम है। यहाँ पूर्ण भगत भी आया और सिकंदर भी। ये ज़िला-राजधानी है। इसी ज़िले में सूरी का बनवाया क़िला रोहतास; मुहल्ला जोगियाँ जहाँ गुरु नानक ने चरण टिकाये। पूर्ण भगत हुआ और राँझे ने कान छिदवाए। इस ही ज़िले में शिवजी महाराज की आँखों से दो आँसू गिरे। एक पुष्कर में गिरा, और दूसरा जिस जगह गिरा वो कटास राज तीर्थ बन गया।

पिछली सदी के विवरणों की कुछ किताबों में जो कुछ जेहलम शहर के बारे में पढ़ा था, वह दिमाग में घूम रहा था। एक व्यापारिक केन्द्र, मण्डी और व्यवस्थित नगर के तौर पर आज का ये शहर बहुत पुराना नहीं। पहाड़ों के जंगलों से काट कर इमारती लकड़ी, मीलों तक, जेहलम नदी में बहा कर मैदानों में लाई जाती और यहाँ उसकी बड़ी मंडी बन गई। सन् 1839 में महाराजा रणजीतसिंह के स्वर्गवास के बाद, अगले 25-30 सालों में पूरा पंजाब ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन गया। जेहलम नगर पर भी जोबन आने लगा। आस-पास के क्षेत्रों से, छोटे बड़े नगरों से लोग यहाँ आकर बस गए और यहाँ के ही हो गए।

जैन मंदिर

यहाँ की जैन आबादी के अधिकतर लोग रामनगर (ज़िला गुजरांवाला) से आए। बागवाली गली को तो भावड़ों का मुहल्ला ही कहा जाता था। जैनों के दोनों संप्रदाय, मूर्तिपूजक व स्थानकवासी यहाँ रहते थे नगर का नया इलाका, मशीन मुहल्ला में भी कालांतर में कुछ जैनों ने घर बनाए। उसी काल में किसी पूज (यति) जी की निश्रा में, गली भावड़ियाँ में एक छोटा, सुन्दर सा भगवान चंद्रप्रभु का घर मंदिर बना। एक सदी पहले जेहलम के इस घर मंदिर की अपनी ही सुंदरता और पहचान थी। बहुत बड़े प्रवेशद्वार की लकड़ी पर हुए काम की कला व बारीकी में उस समय के जैनों का लगाव निष्ठा और परिश्रम साफ नज़र आते हैं। ऊपर की मंज़िल तक मंदिर का पूरा फ्रंट मार्बल से मंडित था। पास ही छोटा सा उपाश्रय भी था।

जेहलम, लाहौर से करीब 175 कि.मी. दूर शेरशाह सूरी की बनवाई जी.टी. रोड पर है। सड़क पर चलते मेरी नज़र एक इमारत पर पड़ी जो अंग्रेज़ी तर्ज़ की थी। पूछने पर पता लगा कि 1947 के बाद ये पुलिस थाना बना और उससे भी पहले सिखों का गुरुद्वारा था। दीवारों पर पवित्र ग्रंथ के वाक्य लिखे थे। हर तरफ अजीब उदासी थी। एक दरवाज़े पर नीले रंग में लिखा था-

"वर घर महल्ला हस्ती घोड़े सब वलैत देस गए"

मैंने अपने साथ चल रहे राजा वलैत अली की तरफ देखा। हाल कमरे के पीछे का दरवाजा नदी की तरफ खुलता था, और आगे थीं नदी में उतरने के लिए सीढ़ियाँ।

मुझे जेहलम नदी मिल गई। यह अलग बात है कि इसमें पानी नहीं। दूर तक रेत ही रेत। नदी कहीं दूर चली गई। शायद हम से रूठकर, या परदेसी होकर। अब विरह का राज था। विरह हमेशा मोह के सिंहासन पर ही राज करता है।

'राजाजी, यहाँ किसी जगह कोई जैनी मंदिर है?' मैंने पूछा।

'जी हाँ, हाँ है। ये सारा मुहल्ला हिन्दुओं का है। यहाँ हिन्दू रहते थे। मंदिर भी थे। दो मंदिर तो पास-पास ही, सड़क पर ही हैं। एक तो वो सामने नज़र आ रहा है।'

हम दोनों साथ-साथ चल रहे थे।

'जी, आज मैं केवल जैन मंदिर ही देखना चाहता हूँ। आपको जैन मंदिर का पता है?'

'जी, नहीं। हिन्दू मंदिर ही हैं। जैनी मंदिर कोई नहीं है।'

'जैनी मंदिर नहीं? जी, उन्हें भावड़े भी कहते थे, 'मैंने विस्तार से कहा-

'हाँ, हाँ, है। सामने वाली गली भावड़ों की है। इसे भावड़ा गली कहा जाता है। ये भी तो हिन्दू ही होते हैं, जैसे ब्राह्मण, कराड़; खत्री।'

'एक मंदिर हमारे सामने था। ऊपरी शिखर नहीं था। कोई चिह्न बाकी नहीं था, जो बता सके कि यह कोई हिन्दू मंदिर था या जैन मंदिर।

राजा वलैत अली ने एक और मंदिर की तरफ इशारा किया। मैं भी उस मंदिर को देखने लगा।

जैन मंदिर के अंदर

मेरे सामने एक छोटे से मंदिर की बहुत उदास इमारत थी, जैसे किसी माँ का पहली संतान का (प्लेठी का) बेटा मर गया हो। मंदिर के चारों तरफ एक नई बनी छोटी दीवार में लोहे का एक गेट। दीवार पर हरा रंग। चार दीवारी के साथ ही कुछ लोग कुर्सियों पर बैठे थे। शायद वो राजाजी को जानते थे।

'हम ये मंदिर देखना चाहते हैं। ये सज्जन लाहौर से आए हैं, और कोई जैनियों का मंदिर ढूँढ़ रहे हैं', राजा ने पूरी बात कह दी।

'जी, आओ, आओ, बैठो। ये ही जैन मंदिर है जी।' उनमें से एक ने कहा।

'राजाजी आपके पास बैठते हैं, मैं मंदिर को देख लूँ,' मैंने विनम्रता से कहा, मंदिर वहाँ से करीब बीस कदम पर था।

मैंने पहला चित्र लिया। गद्दी के नीचे मुझे महावीर का निशान शेर और अन्य निशान दिखाई दिये। अब पक्का था कि ये जैन मंदिर ही है। मैं मंदिर की तरफ बढ़ा। पहले इसके इर्द गिर्द दीवार नहीं थी। खुले में था मंदिर, जिसके एक तरफ सड़क, दो तरफ खुली जगह नदी के किनारे की, तीसरी तरफ विहित, जो इसके पैरों के नीचे थी।

पैर जो धरती पर थे। अब शायद पैरों के होते हुए भी, पैर नहीं होने का अहसास था। पता नहीं किस वक्त ये धरती पैरों के नीचे से खिसक जाए। जोगी, साँप और फकीरों का कौन सा कोई देश होता है। मेरी सोच में मैं धरती से आकाश तक के चक्कर लगा रहा था, कि बीच में कवि नसीर आकर खड़ा हो गया-

रुत्त उदासी वाली
आके ठहर गई ए
लौं लौं दे विच्च।

जेहलम के मंदिर में

मैं आगे बढ़ा। अब मैं मंदिर के दरवाज़े में था। दरवाज़े के आगे गन्दगी का ढ़ेर। ये मंदिर अब किसी कबाड़िये के कब्ज़े में है। जिसने इसे अपना डिपो बनाया हुआ है। सारे शहर से कागज़, लोहा, पुराने कपड़े, प्लास्टिक की बोतलें, कूड़ा और कितना कुछ, लोग इकट्ठा करके लाते हैं, और यहाँ कबाड़िये को बेचते, मंदिर के अंदर गिराते और पैसे लेकर चले जाते हैं।

इन पैसों के साथ वो अपने बच्चों के पेट का नरक भरते हैं। ये वो नरक है जो कभी भी भरा नहीं जा सकता।

मैंने दरवाज़े के अंदर पैर रखा, तो मेरे पैर के नीचे चर्ड-चर्ड की आवाज आई। मुझे लगा कि किसी खोपड़ी पर पैर आगया है। इस आवाज में एक दर्द था, एक रुलाई। अगले पैर के नीचे से भी कई तरह की आवाज़ें आईं। अब मुझे लगा कि मैं एक जंग के मैदान में लाशों के ऊपर चल रहा हूँ। कभी कोई खोपड़ी, कभी माँस का लोथड़ा मेरे पैरों के नीचे आ रहा हो। दिल में उतर जाने वाली एक बेआवाज़ चुप्प।

मैंने पहली सीढ़ी पर पैर रखा। बदबू, कागज़, प्लाटिक व कपड़े की दुर्गन्ध। मुझे उलटी आने लगी।

बहुत पहले मैंने किसी किताब में पढ़ा था कि यह मंदिर बहुत पुराना है, जिसे कलम का गज़ नाप नहीं सकता।

फिर 1940 ई. में विद्या-प्रसारक मुनि श्री (आचार्य) विजय वल्लभ जी ने इसकी मरम्मत कराई। ये ही वो मुनि वल्लभ विजय हैं, जिन्होंने कसूर, मालेर कोटला, लाहौर आदि पंजाब के अनेक शहरों में जैन मंदिर बनवाये या उनकी मरम्मत कराई। उन्होंने अपना सारा जीवन विद्या के प्रसार के लिए लगा लिया, खासकर लड़कियों की शिक्षा के लिए।

दुर्गंध (बदबू) हर कदम के साथ बढ़ रही थी। **यह दुर्गंध शायद मेरे अपने अन्दर की हो। शायद धार्मिक उन्माद और कट्टरता की बदबू या हमारी घटिया सोच की बदबू।** मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था।

मैं मंदिर के बिल्कुल अन्दर पहुँच चुका था। पूजास्थान तक। एक गोल गुंबद, उसके अन्दर एक ओर भगवान महावीर का सिंह। दूसरे तीर्थंकरों के चिन्ह। दीवारों पर फूल, पौधे, रंगीन लताएँ। कहीं से मिटी हुई, कहीं टूटी हुई।

मंदिर के अन्दर और कुछ नहीं था, सिवाय कबाड़िये द्वारा एकत्र किया हुआ वह गन्द, जो हमारे लिए गंदगी और उसके लिए रोटी का साधन। मंदिर के एक ओर हँसता-बसता शहर, मध्य में सड़क, दूसरी तरफ विहीत, एक नदी। नदी के किनारे एक कवि जो यहाँ का ही रहने वाला है-

साडे सिर ते टीला जोगियाँ, पैरां विच विहीत वगे।
मुख चमके दीपक सूर्य, मन चन्दर जोत जगे।
पत्थर चों चश्मा फुट्टिया बन तीर्थराज कटास,
एह अमृत जल स्वर्ग दा, इत्थे बुझदी रुह दी प्यास।
धरती दा सीना चीर दे, ला ढिग्गियाँ वाँगर ज़ोर,
साडी वाज च' शूकर नाग दी, साडी चुप्प बला दा शोर।

(नसीर कवि - 1994)

---

1. जेहलम शहर के जैन भावड़ा परिवार वर्तमान में अधिकतर दिल्ली, गुड़गाँव, अम्बाला व कई अन्य जगहों पर बसे हैं। धार्मिक संस्कारों वाले ये सभी परिवार धार्मिक, सामाजिक व शैक्षणिक उपक्रमों तथा सेवा-भक्ति में सदा पूरा योग देते हैं। जेहलम के लाला नरपतराय व परमानंद के वंशजों ने अपने उद्योग-व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर प्राप्त किए हैं।

2. भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री इंद्रकुमार गुजराल, विख्यात आर्टिस्ट सतीश गुजराल तथा एक्टर सुनील दत्त - ये सभी जेहलम नगर की देन हैं।

मुलतान

मुलतान की चूड़ी सराय.......मुहब्बत सराय

हम कैंट एरिया की तरफ से मुलतान शहर में पहुँच रहे थे। यह शहर 'होली' पर्व का जन्मदाता है। होलिका ने भक्त प्रहलाद को यहाँ अपनी गोद में बिठाया था, पर वो खुद ही भस्म हो गई। हमारे बाएँ था भक्त प्रहलाद का मंदिर। पर अब यह मंदिर नहीं। अब यह एक उजड़ा हुआ चिह्न मात्र है। इण्डिया में एक मस्जिद के कत्ल के बाद, इस मंदिर का भी कत्ल हुआ।

मंदिर-जो एक भक्त की यादगार था, सभी के लिए पवित्र था। वह राजनीति की भेंट चढ़ गया।

भक्त प्रहलाद का मंदिर अब केवल एक इमारत का ही खण्डहर नहीं, बल्कि इतिहास का भी खण्डहर बन गया है। लहू के छींटों में हैं, शायद, होली के लाल-पीले रंग।

मुलतान के घंटाघर चौक के सामने है पुराना किला। हज़ारों साल पुराना। इतिहास बताता है कि सोमनाथ को जाते हुए महमूद गज़नवी मुलतान के रास्ते से ही गया था। मुलतान के राजा मूलराज ने सन् 1849 में इसी किले से अंग्रेज़ों के विरुद्ध झंडा बुलंद किया था।

मुलतान का श्वेताम्बर जैन मंदिर

हमें चूड़ी बाज़ार में जैन मंदिर देखने जाना था। चूड़ी बाज़ार में दोनों तरफ दुकानें। मुलतानी कढ़ाई के ज़नाना सूट पूरे मुल्क में प्रसिद्ध हैं। चूड़ी बाज़ार का रास्ता पूछकर हम एक छोटी सी गली में आ गए।

'जी, मुहल्ला भावड़ा तो यही है- पर मंदिर का तो पता नहीं।'

अचानक मेरी नज़र दाईं तरफ की बहुत सुन्दर व विशाल इमारत पर पड़ी। दीवारों पर सीमेंट से देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनी हुई थीं। हो सकता है ये ही जैन मंदिर हो, जिसे हम ढूँढ़ रहे थे।

एक बहुत बड़ा लकड़ी का दरवाज़ा, सड़क से दो-तीन सीढ़ी ऊँचा। फिर एक छोटा सा बरामदा, जो शायद जूते आदि उतारने की जगह होगी। आगे था मंदिर के हाल में प्रवेश करने का द्वार। लकड़ी के इस द्वार के तख्ते पर मंदिर का नाम खुदा हुआ था, जो पढ़ा नहीं जा सका। एक अध-मिटा अक्षर जो दिखाई दे रहा था, वह था- 'जैन'।

मेरे साथ आए डॉ. अख्तर तो इस इमारत की भव्यता में ही खो गए थे।...... हम अन्दर हॉल में आ गए।

यहाँ हाल में बच्चों का मदरसा था। सभी के आगे पवित्र ग्रंथ कुरान रखे थे। उस्ताद कुर्सी पर थे। सभी बच्चे एक रिदम में बोल-बोलकर याद कर रहे थे।

'ज़ी हम लाहौर से आए हैं। यह मंदिर देखने की इजाज़त है?'

'जी, ज़रूर देखो। ये मंदिर आपके सामने है।'

मैं फोटोग्राफ लेने लग गया। मूर्ति का स्थान, दीवारें, छत, फर्श- हर चीज़ बहुत सुन्दरता से सजाई हुई थी। पूरे मंदिर की छत लकड़ी की थी, जिस पर ब्रश, लकड़ी के रंगों और शीशे की मीनाकारी की हुई थी। लाल, पीले, नीले व हरे रंग से फुलकारी की हुई थी। जहाँ कुछ गोलाई आती, वहाँ लकड़ी के फ्रेम में बढ़िया शीशा जड़ा हुआ था।

फोटो आदि लेते करीब 10 मिनट लगे होंगे। हमारा कैमरा व इसकी चमक देखकर उस्ताद जी व बच्चे चुप-चाप वहाँ से खिसक गए।

हाल की पश्चिमी दिशा में, बहुत ही सुन्दर कमरा था जिसका गेट ज़मीन से 4 फुट ऊँचा होगा। इस गेट के चारों तरफ बहुत तरतीब से रंग-बिरंगी मीनाकारी। दीवारों पर बने हुए फ्रेस्कोज़ (जो ब्रश व रंगों के प्रयोग से कारीगर लोग बनाते हैं) में दूसरे रंगों के साथ-साथ शुद्ध सोने का पानी भी प्रयोग किया गया था, और जिसकी चमक आज भी दिल को मोह

रही थी। द्वार के चहुँ ओर दोहरा सुन्दर हाशिया और इस हाशिये में 24 जैन तीर्थंकरों के चित्र, जिनके मस्तकों पर सोने के मुकुट बने हुए थे। हर चित्र पर अतिसुन्दर फ्रेम जड़ा हुआ था। पूरी इमारत ही सुन्दरता और कला की मुँह बोलती तस्वीर थी।

मूर्तियों वाले कमरे की देहरी के माथे पर बनी हुई थी एक बहुत ही सुन्दर तीर्थंकर मूर्ति। इस खामोश वातावरण में वह मूर्ति मुझे इस स्वर्ण मंदिर की कथा सुनाती लग रही थी, कि यहाँ पर तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जी मूलनायक थे। पास में पुरुषों व महिलाओं के दो उपाश्रय थे। लोग खुशहाल थे।

मुलतान के मंदिर की मूर्तियाँ जयपुर में पधारी गई थीं।

मुलतान में रचा गया विपुल जैन साहित्य

मध्यकाल में जैन साधुओं, यतियों और श्रावकों ने मुलतान में बड़ी गिनती में, नूतन जैन साहित्य की रचना की, अथवा शास्त्रों-सूत्रों की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ तैयार की। खरतरगच्छ, तपागच्छ, बड़गच्छ के यति (श्री पूज्य) प्राय: यहाँ आते व रहते थे। यहाँ वे धर्मप्रचार के साथ अपने भक्त श्रावकों के आचार-विचार तथा विधि विधान में सहयोग देते थे। बाल, युवा, महिलाएँ व पुरुष सभी उनसे सीखते थे।

यति लोग साधुवेश पहनते थे। पर मठ (डेरे), धनसंग्रह, दवाई, मंत्र भी करते थे। ये प्राय: ब्रह्मचारी रहते थे। दरअसल यह यति संस्था, जैन साधु और गृहस्थ के बीच त्यागियों का मार्ग था।

दादा गुरु :

गणधर सार्द्ध शतक (वि.सं. 1295 ई.सं. 1238) की वृहद्वृत्ति में उल्लेख है कि आचार्य श्री जिनवल्लभ सूरि तथा इनके शिष्य प्रथम दादागुरु जिनदत्त सूरि का अपने साधुओं के साथ सिंध में आगमन हुआ और मरोट, उच्चनगर व मुलतान में चातुर्मास किये। सिंध प्रदेश में ही पाँच पीरों को साधा। सन् 1907-08 में तपागच्छीय आचार्य विजयलब्धि सूरि ने यहाँ आठ माह स्थिरता की थी।

मुलतान में जैन साधुओं व यतियों द्वारा रचे गए करीब 25-30 ग्रंथों की सूची (ग्रंथ, रचयिता, समय सहित) पं. हीरालालजी दूगड़ ने अपने ग्रंथ 'मध्य एशिया और पंजाब में जैन धर्म' में दी है। पिछली सदी में उर्दू भाषा में भी मुलतान से कई किताबें छपी थीं। संस्कृत, प्राकृत व हिन्दी के जैन ग्रंथों की रचना वि.सं. 1649 से वि.सं. 1786 के बीच हुई।

मैं एक बार फिर उन मूर्तियों को देखने लग गया जो इस मूर्ति स्थान के मुख्यद्वार पर बनी हुई थीं। इस सुन्दर मुख्यद्वार वाली चौखट पर लोहे का भद्दा सा गेट, इसकी सुन्दरता को खराब कर रहा था। शायद यह बाद में लगाया गया है। मैं इस मंदिर के बारे और में भी जानना चाहता था। पर बताएगा कौन? हर तरफ खामोशी का राज था।

अब इस हाल में डॉ. अख्तर, मैं और एक बच्चा था, जो हमारे साथ-साथ घूम रहा था- हम तीन थे।

'सीढ़ियाँ किधर हैं?'

'जी, इस तरफ है', - वह बच्चा बोला।

हम इस बच्चे के साथ, सीढ़ियाँ चढ़कर मंदिर की छत पर आ गए। यहाँ मंदिर का शिखर और कलश थे। मंदिर की छत से मैंने चारों तरफ नज़र दौड़ाई। शिखर की चित्रकारी देखकर तो मैं हैरान ही रह गया। कारीगरों की कला अपना रंग-रूप बखेर रही थी।

वह बच्चा जो हमें मंदिर की छत पर लेकर आया था, उससे मैंने पूछा कि क्या वो यहाँ ही रहता है?

'हाँ, पर आपने क्या ये साथ वाले मंदिर देखे हैं?

'साथ वाले, कौन से',

'इस मंदिर के साथ ही तो हैं।'

पुराना छोटा मंदिर

छत से नीचे उतरे। वो लड़का हमें चार फुट चौड़ी गली में ले गया।

'इस मंदिर का द्वार भी इसी गली में खुलता है। इसे पुराना मंदिर कहते हैं।'

‘अब यहाँ क्या है?’

‘अब यहाँ लोग रहते हैं। यह घर है।’

दिगम्बर जैन मंदिर

करीब 20 फुट की दूरी पर कुछ खुला सा स्थान था। मेरे बाएँ हाथ एक अति सुन्दर, साफ सुथरी इमारत थी। लाल रंग की इमारत सुहाग के जोड़े के रंग जैसी। उस पर लिखा था-

‘‘जैन दिगम्बर मंदिर’’

तीन मंज़िला बहुत सुन्दर बिल्डिंग। मुझे अन्दर से देखने की लालसा उत्पन्न हुई। अब यहाँ क्या है?

‘इस में घर है। लोग रहते हैं’

‘इस घर को अन्दर से देख सकते हैं?’

‘नहीं।’

‘क्यों?’

‘ये पर्दे वाला घर है। इन्होंने अन्दर जाने नहीं देना।’

मैंने अपने तौर पर कोशिश की, पर असफल रहा। अन्दर से कोई उत्तर नहीं था आ रहा।

‘जैन दिगम्बर मंदिर’ .... ‘जैन दिगम्बर मंदिर’- मैं बार-बार पढ़ रहा था, और इसे अन्दर से देखने की तीव्र इच्छा को अपने अन्दर ही समा रहा था।

बाहर बाज़ार में दुकान पर बैठा कोई 70 साल का व्यक्ति हमें बड़े गौर से देख रहा था। सलाम कह कर मैंने पूछा-

‘जी, इस बाज़ार का नाम क्या है?’

‘जी, इसका नाम चूड़ी सराय बाज़ार है।’

‘और इस मुहल्ले को क्या कहते हैं?’

‘इस मुहल्ले को जैन मुहल्ला कहा जाता है। यहाँ सारे जैनी लोग रहते थे। ये मंदिर, वो सामने की गली के दो मंदिर, और ये बड़े-बड़े मकान, ये सभी इन्हीं के थे। अब इस मंदिर में मदरसा है, और पिछले मंदिर में घर हैं।’

'ये मंदिर बहुत सुन्दर था। इसमें मूर्तियाँ बनी हुई थीं। फिर एक दिन लोगों ने दूसरे मंदिरों की तरह ही इस पर भी हमला कर दिया। उस वक़्त इसे नुकसान पहुँचा।

अब पीछे रह गया चूड़ी सराय बाज़ार......जैन मंदिर, ...मुहल्ला भावड़ियाँ......और नहीं देखा जा सकने वाला दिगम्बर मंदिर।

मुलतान कैंट का दिगम्बर मंदिर

अब हम मुलतान कैंट के जैन मंदिर की तलाश में निकले। गलियाँ, बाज़ार, गाड़ियों का शोर, इन सबको चीर कर मुलतान कैंट पहुँचे। सदर बाज़ार में बिल्कुल सड़क के ऊपर ही, एक तीन मंज़िला इमारत। पास में एक दूध वाले की दुकान। दरवाज़े पर बनी थी गोल बाल्कोनी। इस बाल्कोनी पर अंग्रेज़ी में लिखा था- "जैन मंदिर"।

ये मुलतान का दूसरा बड़ा मंदिर था, जैनियों का। अब इसमें घर है। लोग बसते हैं।

दिन ढल रहा था। मंदिर को अन्दर से देख पाने की हमें कोई उम्मीद नहीं थी।

मैं चाहता था कि कल को होने वाली **'होली'** मैं मुलतान में ही देखूँ। यहाँ बस रहे हिन्दू होली के इस त्योहार को कैसे मनाते हैं। पर मेरी ये हसरत केवल हसरत ही रही।

मुलतान की जैन दादावाड़ी

मुलतान शहर से थोड़ा बाहर एक बगीचे में दादावाड़ी की छोटी सी, पर बहुत सुन्दर, इमारत थी। ऊपर छोटा सा गुंबद भी था। दादावाड़ी में दादा गुरुदेव श्री जिनदत्त सूरि जी की पावन चरण पादुका थी। पाकिस्तान बनने पर मुलतान के मंदिर की मूर्तियों के साथ, यह चरण पादुका भी जयपुर में आ गई थी।

मुलतान का जैन स्थानक

मुलतान में स्थानकवासी परिवार भी बड़ी संख्या में रहते थे। ये कारोबारी लोग हर तरह से खुशहाल थे। धार्मिक कृतयों में भी पक्के थे।

साधु महाराज तो कभी-कभी ही आते थे, पर यति जी प्राय: आते-जाते रहते थे।

कोहाट (सीमा प्रांत)

कोहाट शहर, पाकिस्तान की पश्चिमी सीमा के अंतिम छोर के दुर्गम पहाड़ी रास्ते (दर्रे) पर बसा हुआ है। मिलिट्री छावनी है। यहाँ से अफगानिस्तान, ईरान, तुर्की तक के क्षेत्रों से व्यापार होता है।

मुलतान, बन्नू, लितंबर आदि के करीब 14-15 भावड़ा परिवार यहाँ आकर बसे व फले-फूले। यहाँ उन्होंने एक छोटा सा घर मंदिर, दादागुरु की चरण-पादुका और पास ही छोटा सा स्थानक बनाया। सभी परिवार धर्म-क्रियाओं में पक्के थे। यतिजी (श्री पूज्य) प्राय: आते रहते थे और विधि-विधान, आचार-व्यवहार व पूजाएँ आदि भी कराते रहते थे।

तत्कालीन स्थानकवासी श्री अमर मुनि जी तथा खरतरगच्छ की उपकारी साध्वी महेन्द्रप्रभाश्री जी इन का जन्म कोहाट में ही हुआ था।

---

1. मुलतान के श्रावक वहाँ के पार्श्वनाथ जैन मंदिर की प्राय: सभी प्रतिमाएँ, 1947 में भारत ले आए थे, जोकि आदर्शनगर जयपुर में बने अतिभव्य 'मुलतान जैन श्वे. मंदिर' में पधारी गई हैं। देश विभाजन से पहले वहाँ के श्रावक बहुत जागरूक और धर्मकर्म में पक्के थे। पुराने संदर्भों में वहाँ के बाबू लक्ष्मीपति जैन व श्री हेमराज जैन आदि नाम मिलते हैं।

2. मुलतान, डेरागाज़ी खाँ, बन्नू, काला बाग आदि नगरों के श्रावक, आचार्य विजय वल्लभ सूरि जी के प्रति पूर्णत: समर्पित व निष्ठावान थे। सन् 1935 में क्वेटा में आए भयानक भूकम्प के बाद इन गुरु महाराज ने उपरोक्त शहरों में सहायता भिजवाने की व्यवस्था कराई थी।

डेरा गाज़ी खाँ

डेरा गाज़ी खाँ की भौगोलिक स्थिति देखकर हैरानी तो होती है और इसके साथ ही आदमी सोचने पर भी मजबूर हो जाता है कि पंजाब की पाँच नदियों, और फिर, छठी महान् नदी 'सिंधु' के पार, कैसे वहाँ रहते होंगे, जैन नियमों व आचार को पालन करने वाले भावड़ा-जैन श्रावक।

डेरागाज़ी खाँ, पाकिस्तानी पंजाब की पश्चिमी सीमा का अंतिम ज़िला है। इसके आगे है बलूचिस्तान और फिर है अफगानिस्तान। पूरी-की-पूरी कट्टर मुस्लिम आबादी, प्रत्येक व्यक्ति बंदूकधारी, कबीले लड़ने मरने को तैयार तथा गलियों-बाज़ारों में मीट-माँस की दुकानों का खुला-प्रदर्शन। फिर भी इन दूर-दराज़, दुर्गम और विपरीत हालात में जैन श्वेताम्बर व दिगम्बर लोग अपना धर्म-कर्म; आचार, नियम, मंदिर-मूर्ति, भजन-आरती आदि को क़ायम रख सके- यह उनके मनोबल, मज़बूत इरादे, हिम्मत व हौसले के कारण ही संभव हो सका। या फिर यह प्रभु का कोई वरदान ही समझना चाहिए।

आज हम डेरागाज़ी खाँ के जैन मंदिरों को देखने के लिए चले हैं। मेरे साथ मेरे मित्र हैं- सजाद बुखारी।

पहली नदी पार की, जो जेहलम और चनाब नदियों का एकीकरण होकर अब चनाब ही कहलाती है, और मुज़फ्फरगढ़ में जनाब खलील फरीदी के घर पर ठहरे, जो बहुत पढ़े-लिखे और सूफी विचारधारा वाले सज्जन हैं। वो मौलवी के डंडे में विश्वास नहीं करते, बल्कि धर्म को प्यार के शीशे में उतारते हैं। कार में बैठते ही बातचीत शुरू हो गई।

'डेरा गाज़ी में कितने मंदिर हैं जैनियों के?'

'दो हैं। एक श्वेताम्बर और दूसरा दिगम्बर/श्वेताम्बर साधु कपड़ा पहनते हैं, जबकि दिगम्बर नग्न रहते हैं।'

'यह कैसे हो सकता है?'

'बात इतनी सादा नहीं, जितनी लगती है। जब जटिलताएँ अनेक हों, तो सादगी स्वयं भी जटिल बन जाती है। संसार में या तो कोई पागल व्यक्ति नग्न रह सकता, या फिर महावीर रह सकता है, जिनके निकट शरीर का चोला भी फालतू था। आत्मा जब परमात्मा हो जाती है, फिर शरीर भी फालतू हो जाता है।

अब हम मुज़फ्फ़रगढ़ शहर से बाहर आकर डेरा गाज़ी खाँ वाली सड़क पर थे। रेत के ऊँचे, नीचे टीले, कहीं-कहीं कोई झाड़ी। एक जगह ऊँटों की एक कतार, जो एक-दूसरे के पीछे चल रहे थे। हमारी गांड़ी भी भागी जा रही थी। रेत के टीलों में सड़क भी एक सोई पड़ी नागिन जैसी लग रही थी।

आगे सिंधु नदी का पत्तन, अर्थात् पुल नज़र आने लगा। यह सिंधु नदी अपनी चाल से चल रही थी। साफ और शीतल जल। सिन्धु, हिन्द, हिन्दू, इण्डस, इण्डिया- ये सब इसी नदी की देन हैं। यूनानियों ने इसे इण्डस कहा। इण्डस से इण्डिया हुआ। इसी नदी के चोले के नीचे हैं- **हड़प्पा, मोहिनजोदड़ो, कोट डीजी, तख़्त भाई और टैक्सिला। और इन्हीं सभ्यताओं में से जन्मे - राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर और नानक।**

पुल, पहाड़ व पानी अब पीछे रह गए। अब हम डेरा गाज़ी खाँ में पहुँच गए हैं यहाँ के जैन मंदिरों को देखने के लिए।

हम एक लम्बी गली पार करके, अपने बाएँ हाथ चौड़ी सी गली में मुड़े। इस गली में था जैन मंदिर।

श्वेताम्बर जैन मंदिर

आदिनाथ भगवान का मंदिर हमारे सामने था। इस चौक को पहले भावड़ा चौक कहते थे। इस चौक से ही मैंने मंदिर के शिखर के फोटो लिये। यह एक मज़बूत और ऊँचा शिखर था।

गली में ही इसका मेन गेट, बहुत बड़ा गेट है। झूलता हुआ आर्च वाला गेट और दयार की लकड़ी के दो तख्ते, जिन पर क्रीमकलर का पेंट। देवनागरी अक्षरों में शायद मंदिर का नाम लिखा हो, पर यह पेंट की तहों में लुप्त हो गया था। मैंने गेट की फोटो ली।

द्वार खटखटाने पर एक सियाना सा व्यक्ति बाहर आया। हमने अपनी पहचान बताई और यह मंदिर (जो अब घर है) देखने की आज्ञा माँगी। उन्होंने भी हाँ कर दी और कहा कि यह अब हमारा घर है।

दरवाज़े से अन्दर आते ही एक चौकोर बारहदरी। हर तरफ तीन-तीन तोर्णों की आर्च। गोल आर्चे जो पिलरों पर खड़ी थीं। इन आर्चों के पीछे के बरामदे की दीवारों में भी आर्चे बनी हुई थीं। साथ में था मेन हॉल। ज़मीन से छत की ऊँचाई करीब 14 फुट होगी।

यहाँ की फोटोग्राफी के बाद हम ऊपर छत पर आ गए। छत पर मंदिर का शिखर था। शिखर बहुत सुन्दर बना हुआ था। इतने सालों के बाद भी उसकी शान कायम थी। शिखर की बनावट ऐसी है कि छत से पहली एक मंज़िल तक तो चौरस है। फिर 10-12 फुट के बाद गोलाई लेता हुआ चौरस शिखर शुरू होता है। शिखर में चार इन-बिल्ट शिखर चारों ओर से इसमें समाये हुए हैं। चार तरफ चार बहुत सुन्दर आले (मेहराब) हैं। ऊपरी हिस्से में लगा हुआ कलश अब नहीं है। हम लोग नीचे आ गए।

'यहाँ मूर्ति रखने की जगह कौन सी थी'।

'जी, जब हम इस घर में आए, उस वक्त ये मंदिर बन्द पड़ा था। यहाँ कोई मूर्ति नहीं थी। हमने सुना था कि यहाँ के भक्त (भावड़े) जब 1947 में यहाँ से गए तो मंदिर की मूर्तियों को भी साथ ले गए थे। यहाँ दीवारों पर पूजा-पाठ करते हुए साधुओं की तस्वीरें बनी होती थीं।

मैंने दूसरी साइड से शिखर की तस्वीरें लीं। मंदिर को पूरे शौक से देख लिया था। बार-बार इस शानदार शिखर को देखते हुए, कैमरे को बन्द किया। मुझे लगा कि शिखर उदास हो गया है।

जैन ग्रंथों से पता चलता है कि यहाँ प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ (ऋषभ देव) की 31 इंच की प्रतिमा थी। वह मूर्ति, माता चक्रेश्वरी देवी, गोमुख यक्ष और दादा जी महाराज की पादुका, वर्तमान में, ये सभी श्रीमालों के मंदिर, घी वालों का रास्ता, जयपुर में विराजमान हैं।

दिगम्बर जैन मंदिर, डेरा गाज़ी खाँ

श्वेताम्बर मंदिर के बिल्कुल पास ही, साथ वाली गली में इसी चौक भावड़ियाँ में ही- दिगम्बर जैन मंदिर था। चौक में गवर्नमेंट स्कूल सिटी प्राइमरी के दरवाज़े पर रुके। अब सामने था लड़कों का ये स्कूल। जोकि पहले दिगम्बर समाज द्वारा संचालित लड़कियों का स्कूल था।

अब हमारे बाईं तरफ था एक जनरल स्टोर। गली में पहुँचते ही दाएँ हाथ की पहली इमारत मंदिर की है। बड़े गेट की मोटी सरदल और सरदल पर लिखा था-

'दिगम्बर जैन मंदिर-डेरा गाज़ी खाँ'

मंदिर में एक घर आबाद है। उन्होंने बताया कि वे लोग इण्डिया के करनाल शहर से इधर आ कर बसे हैं। पहले मुलतान में कुछ अर्सा रहे। फिर सरकार ने यह स्थान हमें अलॉट कर दिया।

मंदिर को देखकर ही लग रहा था कि इसे अन्दर से भी देखा जाए। बाहर की खूबसूरती हमें अचम्भित कर रही थी। पर पर्दे के इस घर में हम नहीं जा सके। पर्दा अब मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रहा। **एक धर्म अब दूसरे से पर्दा करता है।**

वापस जनरल स्टोर पर आ गए।

सिन्धु नदी की इस धरती पर प्रेम-प्यार की लहरें अब भी मौजूद हैं। कहीं बौद्ध स्तूपों के अवशेष, कहीं महावीर के मंदिर और कहीं-कहीं राम रहीम इकट्ठे भी मिल जाते हैं।

पर अब पर्दा है।

डेरागाज़ी खाँ के पुराने नामों में सेठ रूपचंद शंभूराम जौहरी का उल्लेख मिलता है। संगीत सम्राट् घनश्याम दास जैन का परिवार भी वहीं से भारत आया।

बन्नू व लितम्बर

(सीमा प्रांत)

पाकिस्तान के सीमा प्रांत (फ्रण्टियर सूबा) की बोलचाल, रहन-सहन, खानपान और धन्धा-रोज़गार सब कुछ अपनी तरह का ही है। अफगानिस्तान और बलोचिस्तान से सटा हुआ है यह क्षेत्र। कन्धे पर बन्दूक का होना, यहाँ की आम बात है।

ताज्जुब होता है कि यहाँ की जैन आबादी इन विपरीत हालात में भी कैसे अपना आचार, विधि विधान, मंदिर, पूजा और नित्यक्रम को कायम रख सकी।

बन्नू और लितम्बर दोनों ही पास-पास के शहर हैं। बन्नू में जैनों के दूसरे तीर्थंकर भगवान अजितनाथ का बहुत सुन्दर मंदिर था। एक मंज़िल के बाद शिखर शुरू हो जाता था। शिखर की बनावट ऐसे थी कि अपने बेस से शुरू होकर इसकी गोलाई कुछ बढ़ती थी। फिर धीरे-धीरे गोलाई कम होती जाती और ऊँचाई बढ़ती जाती थी।

वर्तमान में शिखर बहुत पुराना व काला पड़ गया है। ऊपर का कलश अब नहीं है। मंदिर के साथ उपाश्रय था। और पूरे मुहल्ले को मुहल्ला भावड़ियाँ कहा जाता था।

खरतर गच्छीय यति यहाँ प्राय: आते-जाते रहते थे। वि.सं. 1720 (ईस्वी सन् 1663) में यति रामचन्द्र ने यहाँ ग्रंथ 'मेघ विनोद' की रचना की। तथा इसी साल मगसिर सुदि 13 को 'राम विनोद' ग्रंथ लिखा।

1947 में सभी जैन यहाँ से भारत में आ गए हैं। मंदिर व उपाश्रय में भी घर बन गए हैं। सभी जैन परिवार दादा गुरुदेवों के परम भक्त थे।

मुहल्ला भावडान के लाला पन्नालाल सुराणा ने आचार्य विजय वल्लभ सूरि की प्रेरणा से बन्नू के मंदिर का निर्माण कराया। जिसकी प्रतिष्ठा वि.सं. 1974 में हुई। बन्नू और सितम्बर में प्राय: सुराणा, लूनीया तथा वैद परिवार बसे हुए थे।

लितम्बर

लितम्बर नगर का भी वैसा ही वातावरण व हालचाल था जैसा बन्नू का लिखा गया है।

यहाँ के भावड़ा जैन लोग बिल्कुल निडर होकर रहते व व्यापार आदि करते थे। मुस्लिम आबादी भी इनको आदर देती थी। जैन (भावड़ा) लोगों का शुद्ध आचरण व रहन-सहन देखकर, मुसलमान इनको 'हिन्दुओं के पीर' कहा करते थे।

लितम्बर में भगवान पार्श्वनाथ का घर मंदिर था। दादागुरुजी के चरण भी मंदिर में स्थापित थे।

यति जी (पूज जी), हमेशा आते रहते थे। पर्यूषण आदि भी वे ही आकर सम्पन्न कराते थे।

हर सामाजिक या पारिवारिक कार्य शुरू करने से पहले दादागुरु जी का पाठ किया जाता था। यहाँ तक कि बारात के चलने से पहले भी यह पाठ करना जरूरी होता था।

आजकल लितम्बर का मंदिर वहाँ नहीं है।

इस मंदिर की प्रतिष्ठा वि.सं. 1962 (सन् 1905) में यति राम ऋषि जी ने कराई थी। लितंबर के कुछ परिवार कोहाट में भी जा कर बस गए थे, जहाँ सरकार ने फौजी छावनी क़ायम की थी। कोहाट के श्रावक हेमराज की सुपुत्री मनोरमा दीक्षा लेकर साध्वी महेन्द्र प्रभा जी हुई। बन्नू और लितंबर के बुज़ुर्ग लाला जेठाशाह सुराणा को एक मुस्लिम सूफी पीर का वरदान मिला था। इनके वंशज पाकिस्तान बनने पर भारत में गाज़ियाबाद, दिल्ली, कोटकपूरा आदि नगरों में बसे हैं।

लितम्बर कस्बे के बाहर एक यति जी की समाधि थी।

लितंबर, बन्नू व कालाबाग के जैनों को सामाजिक व पारिवारिक पर्याय से एक समझना भी उचित है।

काला बाग

गोर काल्लड़ा बाग़ बनाया ई......

प्राचीन भारत (हिमवत प्रदेश) में बुढ़ापे और मौत का डर नहीं था। धर्म या अधर्म नहीं सब एक ही थे।

वहाँ नाभि राजा की रानी मरु देवी ने ऋषभ को जन्म दिया। ऋषभ ने अपने बेटे भरत को राज्य दिया। इस भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ। ऋग्वेद, अग्निपुराण (10-11) ने तो मेरी सोच ही बदल दी।

लायब्रेरी की किताबें। मार्कण्डेय पुराण (50-42-39), पूर्ण खण्ड वायु-पुराण तथा अन्य भी। मेरे ज़हन में सिर्फ एक ही बात थी- 'भरत, बाहुबली, गंधार, टैक्सला'।

कालाबाग में जैन यति

जैन यतियों ने इस क्षेत्र के परिवारों को जैनधर्म के पालन में दृढ़ बनाए रखा। यति लोग धार्मिक क्रियाएँ तो कराते ही थे, साथ ही साहित्य की रचना भी करते थे। ई. सन् 1665 (वि. 1722) में यति रामचन्द्र ने ग्रंथ 'राम विनोद', वि.सं. 1911 (ई. 1854) में श्रावक जिवाया शाह ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' की प्रतिलिपि और ई. सन् 1906 (वि. 1963) में यति रतन ऋषि ने कल्पसूत्र की प्रतिलिपि इसी नगर में लिखी।

बात कालाबाग की करते हैं। कालाबाग (या बागा) जाने का मुझे बहुत चाव था। कई बार सोचा भी, पर नहीं जा सका। पर अब तो जाना ज़रूरी था। वहाँ का जैन मंदिर मुझे बुला रहा था। वहाँ जाने से पहले मैं वहाँ का, उस मंदिर का पूरा हाल-चाल विवरण पढ़ना चाहता था।

कालाबाग, लतंबर, बन्नू, मुलतान, डेरागाजी खाँ आदि में रहने वाले ओसवाल जैनों के पुरखे मुगल सम्राट शाहजहाँ के समय राजस्थान के नागौर आदि क्षेत्रों में जैसलमेर, बहावलपुर होते हुए बन्नू के पास गंडलिया नगर में आकर आबाद हुए। वहाँ से लतंबर, बन्नू, कालाबाग गए। कालाबाग सिंधु नदी के किनारे आबाद है और नमक की पहाड़ियों से घिरा हुआ है।

कालाबाग और लतंबर के जैन मंदिरों की प्रतिष्ठाएँ वि.सं. 1962 (ई.सन् 1905) में श्रीपूज (यतिजी) रामारिख के शिष्य यति राजर्षि ने करवायी। कालाबाग में अभिनंदन स्वामी और लतंबर में पार्श्वनाथ प्रभु मूलनायक बिराजे गए।

हम इस्लामाबाद से फारुक़ कुरैशी के गाँव पहुँचे। अगली सुबह हमारा ग्रूप काफरकोट और बलोट के मंदिर देखने के लिए चला। चश्मा बैराज को साथ चलते-चलते सिंधु नदी को पार किया। फिर पहाड़ों की ओट में काफरकोट जा पहुँचे। पहाड़ी के ऊपर आर्ट का एक बहतरीन नमूना, सदियों पुराने ऐतिहासिक मंदिर। पता नहीं कितने साधु महात्मा और कितने लोग इन छोटे-छोटे पथरीले रास्तों से गुज़रे होंगे।

पहाड़ पर एक मंदिर साबुत-पूरा पूरा, और एक आधा ढहा हुआ। कुछ समाधियाँ। एक पूरा किला जो दूसरी-तीसरी सदी का बताया जाता है। अंग्रेज़ों ने इसे हिन्दू मंदिर लिखा है। सिंधु नदी के साथ-साथ इसी तरह के और भी कई जैन मंदिर हैं। यहाँ अनेक सदियों की गाथाएँ इन पहाड़ियों पर बिखरी पड़ी हैं।

जैन मंदिरों की खोज करते मुझे एक बहुत प्राचीन मंदिर का पता लगा। जो सिंधु नदी के किनारे पर ही है। इस मंदिर का नाम 'मरोट' का मंदिर है। पर मेरे एक मित्र यूसुफ पंजाबी ने मुझे बताया यह 'मरोट' नहीं, बल्कि 'बलोट' है। यह एक पुराना मंदिर, सिंधु नदी के किनारे, डेरा इस्माईल खाँ के इलाके में है, तथा पंजाब की तरफ से ज़िला मियाँवाली लगता है। बलोट का मंदिर, फिर आगे कालाबाग। अब यह भी साफ हुआ कि बलोट इधर मियाँवाली में है, और **मरोट** है बहावलनगर में।

बलोट की पहाड़ी पर दो मंदिर, चारों ओर एक किला, जिसकी नीवें ही अब बाकी रह गई थीं। दोनों मंदिरों को अंदर बाहर अच्छी तरह देखा। बहुत कुछ है लिखने के लिए। उन आचार्यों, मुनियों के नाम जिन्होंने इस क्षेत्र में जैनधर्म का प्रचार किया। पेशावर, बन्नू व डेरा इस्माईल खाँ के जैनों की कहानियाँ, बलोट के मंदिर हिन्दू मंदिर थे, जैन नहीं।

काफरकोट, बलोट, धनकोट, कालाबाग के पास माड़ीपत्तन-इन मंदिरों की एक पूरी लड़ी है। एक सी बनावट और एक समय में बने हुए। कुछ तो पहाड़ियों पर अभी खड़े हैं और कई सिंधु नदी में समा गए।

कालाबाग नगर के बारे जो कुछ पढ़ा था, याद आ रहा था। कहते हैं यहाँ मल्लाहों (नाविकों) की एक बस्ती थी। इसी बस्ती में चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म हुआ। पिता यूनानियों से लड़ते-लड़ते मारे गए तो उसकी माँ उसे पाटलिपुत्र ले गई। कौटिल्य ने उसे टैक्सला में पढ़ाया और यूनानियों के विरुद्ध उसे तैयार किया। चन्द्रगुप्त इसी धरती का बेटा था और उसने धरती माँ के पल्लू पर लगे सभी दागों को धो डाला।

हम मियाँवाली के बस अड्डे पर थे। बन्नू भी यहाँ से पास ही था। एक श्वेताम्बर मंदिर बन्नू में, और दूसरा पास ही के कस्बे लतम्बर में था। पर हम तो कालाबाग जा रहे थे। हमारी वैगन कालाबाग की तरफ भागी जा रही थी। कुछ ठण्डी हवा लगी। खुरशीद बेगम की आवाज कहीं से याद आ गई-

...........**नी लै दे माँयें कालियाँ बागां दी मेहंदी**.........

हमारे एक तरफ पहाड़ और दूसरी तरफ सिंधु का पानी। नदी के पार कालाबाग शहर भी नज़र आया। ऐसे लगा जैसे पूरा शहर ही पानी में तैर रहा हो। पानी से ऊपर पहाड़ तक सुन्दर घर, दरवाज़े, खिड़कियाँ। सब बंद।

इतिहासकारों का कहना है कि महमूद गजनवी ने यहाँ से सिंधु को पार किया। यहाँ पाण्डवों के बनाए हुए मंदिरों के पास से ही। जिनको महमूद ने कुछ नहीं कहा। यहाँ के मंदिरों में ना तो हीरे, मोती, सोना था,

न ही धन-दौलत। उसे तो सोमनाथ का धन लूटना था। ये मंदिर आज भी हैं बामियान की बुद्ध-मूर्तियों की तरह। तालिबान ने फिज़ूल ही में बारूद बरबाद किया। वो किसी इमाम बारगाह, चर्च, मस्जिद या पेशावर के स्कूल में काम आ सकता था।

कालाबाग

हम कालाबाग में थे। एक लम्बे बाज़ार से होते हुए हम चौक पीरछुट्टा पहुँचे। वैगन में हमारे साथ आ रहे एक सज्जन भी हमारे साथ हो लिये। उसने पहले हमें इसी चौक वाली धर्मशाला दिखाई। यह हिन्दू धर्मशाला थी। यहाँ पर ही शहर की सबसे बड़ी मान्यता (दरबार) थी, जिसके नाम पर चौंक का नाम 'चौक पीरछुट्टा' था। धर्मशाला का दरवाजा इसी दरबार व चौक की तरफ खुलता है। परन्तु अब ये धर्मशाला नहीं, घर है।

बाज़ार में नए-पुराने घर। कला के नमूने। हमारे लिए अब 'जैन श्वेताम्बर मंदिर' को ढूँढ़ पाना काफी कठिन था। बाईं तरफ एक सुन्दर से दरवाज़े - खिड़कियों वाला घर दिखाई दिया, जहाँ एक सज्जन को मैंने पूछा -'भाई साहिब ! हमें ये बताओ कि इस शहर में एक जैन मंदिर है, वो कहाँ है?

'हिन्दुओं के तो यहाँ बहुत मंदिर थे, पर अब कोई नहीं। ऊपर 'माड़ी' पर जो दो मंदिर थे, वे भी ढ़ह चुके हैं, उनका क्या देखना है, आपने।'

हमारी बातें सुनते-सुनते एक और सज्जन, जो इसी मुहल्ले का रहने वाला था, वहाँ आ गया। 'यहाँ कोई जैन मंदिर है, उसके बारे में पूछ रहे हैं', पहले व्यक्ति ने दूसरे को कहा।

'हाँ, ये ही तो है जैनी, भावड़ों का मंदिर, जो अब तुम्हारा घर है- ये ही जैन मंदिर है जी। ये ऊँचा नहीं है घर जैसा ही है।'

इस घर में रहने वाला पहला व्यक्ति चकित सा होकर बोला- 'जी, यह मंदिर नहीं, बल्कि घर है। इस पर कोई मीनारा या गुंबद (शिखर) नहीं है। नीचे दुकानें हैं।'

'ऊपर एक बड़ा कमरा है। कमरे के सामने बरामदा है। फिर आगे छोटे-छोटे दो कमरे हैं। बस और कुछ नहीं। ये बाहर, ये दरवाजे, ये खिड़कियाँ हैं। गली वाले दरवाज़े के साथ सीढ़ियाँ चढ़ती हैं।' उसने अपने घर (जो 1947 से पहले श्वेताम्बर मंदिर था), का पूरा नक़्शा हमारे सामने रख दिया।

बाद में आने वाला सज्जन इसी बात पर अड़ा हुआ था कि यही मंदिर है। ये तो इंडिया से विस्थापित होकर आए थे, और इस घर में बैठ गए। हम यहाँ के जद्दी-पुश्ती हैं। यह मंदिर था। एक छोटा सा मंदिर। ये था कालाबाग का श्वेताम्बर जैन मंदिर जो जैनियों के चौथे तीर्थंकर अभिनन्दन स्वामी का मंदिर था। देश-विभाजन के समय जैनी लोग यहाँ की मूर्तियाँ भी अपने साथ ही ले गए। सुना है कि अब वो दिल्ली नौघरा के जैन मंदिर में हैं।

शाम हो रही थी वो सज्जन चले गए। हम दोनों रह गए बाज़ार में। पहाड़ी की चोटी तक गलियाँ, मकान, दरवाज़े नज़र आ रहे थे। लगता था हम एक बहुत ऊँचे शहर के पैरों में खड़े हैं।

सोचते रहे कि ये मंदिर है या घर। आदमी का घर या भगवान का घर। दोनों में से कौन मुक्ति प्राप्त कर सका। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन था या बुद्ध। महमूद गज़नवी ने ये मंदिर क्यों नहीं तोड़े। आज इस शहर के मंदिर क्यों खो गए? ये सब सवाल, जिनके जवाब नहीं। मुझे वारिस शाह की पंक्ति याद आ गई-

दुनिया जाण ऐवें जीवें भंग पीके,
गोर कालड़ा बाग बनाया ई।

कालाबाग के भावड़ा परिवार वर्तमान में दिल्ली, गाज़ियाबाद, हाथरस आदि में बसे हुए हैं। दिल्ली में लाला रामलाल - मनोहरलाल परिवार, सुपुत्र श्री हर भगवान शाह, कालाबाग से भारत आए।

झँग (पश्चिमी पंजाब-पाक)

लाहौर से 270 कि.मी. पश्चिम में, ज़िला स्तर का शहर **झँग** एक बहुत अच्छा व्यापारिक केन्द्र है। बाज़ार, भरीपूरी दुकानें, लोग, गाड़ियों, स्कूल, कॉलेज और सरकारी दफ्तर सभी कुछ है इस नगर में। नगर के पश्चिम में, थोड़ी ही पुरी पर चनाब नदी है। मध्य कालीन पंजाब की अनेक प्रेम-कथाएँ व किस्से इसी चनाब नदी से जुड़े हैं।

झँग का भावड़ा मुहल्ला - जैन यतियों की प्रेरणा से राजस्थान व पंजाब से जैन भावड़ा आबादी के कुछ परिवार यहाँ आकर बसे और खूब फले-फूले। इन यति जी की प्रेरणा और देख-रेख में भावड़ा मुहल्ले में ही एक अति सुन्दर जैन मंदिर भी इन परिवारों ने बनवाया।

ये सभी परिवार एक ही मुहल्ले में होने से इसका नाम मुहल्ला भावड़ाँ हो गया तथा अब तक नाम यही है। मुहल्ले की हवेलियाँ से इन परिवारों की खुशहाली का भी पता चलता है।

झँग शहर में ये भावड़ा परिवार किन यति जी की प्रेरणा से, किस सदी में, कहाँ से आकर बसे। और फिर परिस्थियाँ प्रतिकूल होने से, या अन्य कारणों से यहाँ से आगे अन्य किसी जगह चले गए, यह समझ में नहीं आ सका। जैनों की बस्ती वाला अन्य बड़ा शहर (जैसे लाहौर या मुलतान आदि) झँग से बहुत दूर होने से, शायद, रिश्ते नातों जैसे सामाजिक व्यवधान होते हों; या मुस्लिम आबादी का आधिक्य और उनका खान-पान ऐसे कारणों से मजबूर होकर जैन लोग यहाँ से पलायन कर गए।

ये भावड़ा आबादी करीब 200-250 साल तो यहाँ रही होगी और ईस्वी सन् 1880-1900 के लगभग-शहर छोड़ा, ऐसा अनुमान है।

भावड़ा मुहल्ले का जैन मंदिर

जैनों के सामूहिक पलायन के बाद भावड़ा मुहल्ले का जैन मंदिर भी, लगता है कि, हिन्दु मंदिर में तब्दील हो गया हो।

इतिहास की परतों में दबे हुए इस अध्याय को कभी तो उजागर होना होगा। झँग के मुहल्ला भावड़ाँ को कभी तो अपना मुँह खोलना होगा। पर, अभी खामोशी है।

पाकिस्तान के सरकारी नोटिफिकेशन :

सरकारी रिकार्ड में झँग में जैन मंदिर का उल्लेख मौजूद है। पाकिस्तान के सरकारी नोटिफिकेशन के S.No. 108 पर " JHANG – JAIN TEMPLE" का जिक्र है। (चित्रावली - पृ. 33)

मारी इण्डस (या) माड़ी पत्तन

यह नगर सिंधु नदी के पूर्वी किनारे पर बसा हुआ है, अर्थात् मियाँवाली नगर के उत्तर में और रावलपिंडी से दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। अंग्रेजी उच्चारण मारी इण्डस को इधर 'माड़ी पत्तन' से जानते हैं।

कालाबाग और माड़ी पत्तन इन दोनों के बीच में सिंधु नदी बह रही है।

इस्लामाबाद से काला बाग को जाते हुए, काफरकोट, बलोट, धनकोट और माड़ी पत्तन- इन सभी स्थानों पर मंदिरों की एक पूरी लड़ी है। एकसी बनावट और एक ही समय में बने हुए। कुछ तो पहाड़ियों पर अभी खड़े हैं और कई सिंधु नदी में समा गए।

मारी इण्डस (माड़ी पत्तन) के पहाड़ की चोटी को नागरगाजन (नागार्जुन) कहते हैं। इस पहाड़ की टेकरी पर गुफा की धरती में से अति प्राचीन महा चमत्कारी एक प्रतिमा प्राप्त हुई थी, वहाँ पर जैन श्वेताम्बर मंदिर का निर्माण हुआ था। अब ये पूरा इलाका ही अनार्य-म्लेच्छ हो गया है। वह प्रतिमा भी खंभात (गुजरात) में विराजी गई।

गुजराँवाला

नी माएँ मैनूं खेडन दे......

गुजराँवाला शहर

कहते हैं कि सियालकोट के बाद गुजराँवाला ही एक ऐसा शहर है, जिसके निकट, प्राचीन राजधानी होने के खण्डहर मिलते हैं। शहर और यहाँ प्राचीन राजधानी होने का चीनी यात्री ह्यूनसाँग ने भी उल्लेख किया है।

मेरे एक मित्र हैं करीमुल्ला गोंदल जो एक अखबार के ब्यूरो चीफ हैं। उनको पता लगा कि मैं जैन मंदिरों के बारे में काम कर रहा हूँ, तो अपने ही अंदाज़ से पूछ लिया कि गुजराँवाले में कितने जैन मंदिर हैं?'

'गुजराँवाला शहर में तीन ही जैन मंदिर हैं। एक पुराने शहर के बाज़ार भावड़ाँ में, दूसरा ये जी.टी. रोड पर और तीसरा गाँव के पास जैनी स्कूल में।'

'जी.टी. रोड पर कौन सा?'

'यह जिसमें अब यहाँ का थाना है'

'यह तो आर्य समाजियों का नहीं क्या?'

'नहीं, नहीं। ये जैनियों का है। यहाँ आत्माराम जी महाराज की समाधि भी है।'

'ये श्री आत्माराम जी महाराज कौन है?' करीम ने पूछा।

'श्री आत्माराम जी महाराज.....' मैंने बात शुरू की और करीमुल्ला भी पूरी ग़ौर से सुनने लगा।

श्री आत्मारामजी महाराज

'इन महापुरुष का जन्म सन् 1837 में पंजाब के फिरोज़पुर जिले की ज़ीरा तहसील के गाँव लहरा में, पिता गणेशचंद और माता रूपादेवी के घर हुआ। पिता महाराजा रणजीतसिंह की फौज में मुलाज़िम थे। छोटी उमर में ही पिता का साया सर से उठ गया। तत्पश्चात वो अपने पिता के मित्र, ज़ीरा निवासी जोधा मल के पास रहने लगे। वहाँ उनका पालन पोषण जैन संस्कारों में हुआ।'

'वो ज़ीरा से गुजराँवाला कब आए?' करीमुल्ला ने पूछा।

'उन्होंने 16 साल की उमर में मालेरकोटले में श्वेताम्बर स्थानकवासी मुनि जीवनलाल जी से दीक्षा ली, और अगले 5-7 वर्षों में आगरा जाकर श्री रत्नमुनि जी से चूर्णि, निर्युक्ति, टीका और भाष्य पढ़े। सन् 1875 में वो अपने 15 साथी साधुओं के साथ अहमदाबाद गए और स्थानकवासी मत को त्याग कर श्वेताम्बर मूर्तिपूजक तपागच्छ की दीक्षा मुनि बुद्धिविजय जी से ग्रहण की। यूरोप अमरीका के स्कॉलरों तक उनकी पहचान पहुँची। सन् 1893 में वर्ल्ड पार्लियामेंट ऑफ रिलीजंस (शिकागो) में वो जैन धर्म के प्रतिनिधि नियुक्त हुए जहाँ उन्होंने अपने स्थान पर बंबई के बैरिस्टर वीरचंद गाँधी को ट्रेनिंग देकर भेजा। अमरीका के अखबारों में उनके फोटो व परिचय छपे। ....हमारी बातें इसी तरह आगे बढ़ती रहीं।

कहते हैं कि बातें चलती हैं, उनके पैर नहीं होते। पैरों की आहट नहीं होती। वो बिना आवाज़ ही चलती रहती हैं। मुनि आत्माराम जी की कई बातें हम दोनों में हुई।

करीम ने अपने एक लोकल पत्रकार की ड्यूटी लगा दी कि अगले दिन वो मेरे साथ जाकर शहर के जैन मंदिरों की एक रिपोर्ट, अखबार के लिए तैयार करे।

'हाँ, हम बात कर रहे थे कि आत्मारामजी गुजराँवाला में कब आए?'

'श्री आत्माराम जी महाराज सन् 1875 के बाद सारे भारत में जैन मूर्तिपूजा के प्रचार में लग गए। पंजाब में नए मंदिर बनवाए। अपने

भक्तों-अनुयायियों के समाजी रस्मोरिवाजों में सुधार किये। शिक्षा के प्रचार के लिए स्कूल, विशेषकर लड़कियों के स्कूल खोलने का उपदेश दिया। अपने चेले साधुओं को भी हर जगह स्कूल, कॉलेज और मंदिर बनाने की प्रेरणा दी।

परन्तु उनकी गतिविधियों का मुख्य केन्द्र यह गुजरांवाला शहर ही रहा। और सन् 1896 में उन्होंने यहाँ ही अपना शरीर छोड़ा। उनके अंतिम संस्कार वाली जगह पर ही ये उनकी समाधि बनाई गई।'

'यहाँ गुजराँवाला में वो कहाँ रहे?'

'वो भावड़ा बाजार वाले मंदिर के साथ लगते साधुओं के स्थान' में बिराजे और यहाँ से ही उन्होंने धर्म प्रचार किया।'

रात हो रही थी। करीमुल्ला के घर पर ही रुके। बार-बार मुनि जी के महान् कामों की लिस्ट दिमाग़ में घूम रही थी। तभी नींद आ गई। अरशद मीर की एक कथा की 'वार' है:-

नींदर अन्दर समियाँ ने
कद मेहँदी लाई
सब जागदियाँ दा खेड़
ख्वाब हक़ीक़त केहड़ी।।

गुजराँवाला शहर, जैन यति और भावड़ा बाज़ार का मंदिर

गुजरांवाला आज लोहे का शहर है। लेकिन जैन यतियों ने वि.सं. 1730 से 1927 (ई.सन् 1653 से 1870) के बीच यहाँ जैन साहित्य को समृद्ध कि या था। वर्तमान में अलग-अलग धर्मों के लोग और उनके पूजास्थान हैं। इनमें से एक है भावड़ा बाज़ार का जैन मंदिर, जिसका कलश आज भी आसमानों से बातें कर रहा है। लम्बी गली। दोनों ओर मकान। इन मकानों में घिरा हुआ जैन मंदिर। वो मंदिर जिसके दरवाज़े व खिड़कियाँ अब लाहौर के म्यूज़ियम में पड़े हैं। कला के अनमोल नमूने। लकड़ी का देखने योग्य काम।

घर में सिर्फ औरतें ही थीं, इसलिए अन्दर नहीं जा सकते थे। पर हमारी खुशकिस्मती थी कि मर्द लोग भी आ ही गए और हम मंदिर के अन्दर आ गए।

इस मंदिर में पहुँचते ही, हमें एक शांति, एक सुकून अपने अतीत के प्रति एक हूक और थोड़ी देर की कँपकपी सी महसूस हुई। मंदिर क्या था। यह इस इलाके के ताजमहल से कम न था। दिल्ली के मुग़ल सम्राट शाहजहाँ ने सोने का एक तख्ते ताऊस बनवाया था। पर, इस जैन मंदिर में भगवान की मूर्तियाँ बैठाने का स्थान तो बस देखते ही बनता था। शायद यह तीन मूर्तियाँ बैठाने की पालकी (वेदी) है। इस पर हुआ शुद्ध सोने का सुनहरी काम और डिज़ाइन सब कमाल के थे। बार-बार हम उसी को देख रहे थे-

'है देखने की चीज़ इसे बार-बार देख'

दूसरी ऐसी ही - बढ़िया सोने के जड़ाऊ काम वाली इससे छोटी पालकी (वेदी) भी अपनी सुन्दरता की ताज़गी लिये हुए थी। घर वालों ने भी इन्हें अच्छी तरह साफ सुथरा, संभाल कर रखा हुआ था।

दीवारों को देखिये। उस ज़माने की हरी, पीली, लाल, नीली टाईलों की सजावट। फूल, बेल, पौधे-पंक्तिबद्ध और अलग भी। दरवाज़ों की मेहराबों में भी टाईल-वर्क बहुत कारीगरी का है। अभी तक ज्यों का त्यों है।

दीवारों पर इन टाईलों और दरवाज़ों से ऊपर, और ऊपरी मंज़िल के बरामदे के नीचे, दीवारों ही मैं जैन कथाओं और इतिहास के पक्के तथा दीवारों में ही समाये हुए, बड़े साईज़ के चित्र बने हुए हैं। इनमें कुछ तो हमारी समझ में भी आते हैं। जैसे -

1. भगवान पार्श्वनाथ का ध्यान और धरणेन्द्र-पद्मावती
2. भगवान महावीर और चन्दनबाला (आहार)
3. ऋषभ देव के सुपुत्र बाहुबली और दो साध्वियों का चित्र
4. भगवान की दीक्षा
5. ब्राह्मण द्वारा भगवान महावीर से देवदूष्य वस्त्र माँगना
6. गजसुकुमाल के सिर पर अग्नि के अंगारे
7. भगवान का समोसरण
8. महावीर के कानों में कील गाड़ने का चित्र
9. मेरु पर्वत पर इन्द्र द्वारा भगवान का अभिषेक तथा अन्य कई चित्र

और सबसे ज़्यादा आकर्षण का केन्द्र है- वहाँ लगा हुआ मार्बल का बना, जैनतीर्थ पालीताना (शत्रुंजय) का मिनीयेचर या नक्शा। इसमें बने, मंदिर मूर्तियाँ, रास्ते, वृक्ष पहाड़ के ऊपर जाते साधु व यात्री-कितनी खूबसूरती व कारीगरी से बने हैं। दिमाग चकराता है इस सबका अंदाज़ा करते हुए।

अब हम मंदिर की ऊपरी छत पर थे। यहाँ से इसका शिखर व कलश देखने के लिए, अपनी गर्दन को पूरा-पूरा पीछे ले जाना पड़ता है। इसकी कारीगरी, आर्टवर्क। चारों साइड़ों की सिमिट्री। कमल के फूलों से

शुरू होते शिखर में सुन्दर ढंग से बने हुए आठ आले। और सबसे ऊपर कपड़े का झंडा (ध्वज) लगाने के लिए लगा हुआ पोल (दण्ड)। कई बार देखा इसको।

भावड़ा बाज़ार के इस मंदिर को चिंतामणि पार्श्वनाथ का मंदिर कहा जाता है। कहते हैं कि पहले इस स्थान पर भगवान ऋषभदेव विराजमान थे। वो मूर्ति या तो खंडित हुई या किसी घटना की पात्र बनी। उस स्थान पर बुद्धिविजय जी ने पार्श्वनाथ जी को विराजमान कराया था।

छोटी ईंट का बना शिखर, मछली के आकार जैसा। इसके पैरों में किसी का घर, जहाँ लोग रहते हैं। मंदिर का पेट खाली। अच्छा व बहुमूल्य जो कुछ था वो लाहौर म्यूजियम में चला गया, जो नहीं जा सकता, उसको समय की दीमक चाट रही है।

किसी का घर। उस घर पर शिखर, शिखर पर कलश और उसके ऊपर आकाश।

'जाओ, मुझे सोने दो,' मुझे लगा कि यह कलश की आवाज़ थी।

'सब जागदियाँ दा खेड़, ख्वाब हक़ीक़त केहड़ी'

पर मैं तो कलश की नींद और अपनी 'जाग' के बीच में हक़ीक़त (वास्तविकता) का रूपधारे हुए खड़ा था। मैं तो खेल रहा था इन दोनों के बीच-

** नी माएं मैंनू खेडन दे**
खेडन दे दिन चार
नी माएं मैंनू खेडन दे।

शिखर के इस कलश ने खून के दरिया बहते देखे थे। वतन वालों को बेवतन होता देखा था। एक लम्बा उजाड़ा देखा था।

मंदिर और स्थानक :

यहाँ कभी बहुत रौनकें थीं। जीवन खेलता था यहाँ। अनेक लीलाएँ थीं। यहाँ श्री आत्मारामजी की परम्परा चली। आचार्य विजय वल्लभ जी तथा स्थानकवासी मुनि श्री खज़ानचंद जी से आचार्य श्री सोहनलाल जी

तक अनेक साधु-साध्वियों ने आत्मा से परमात्मा के मार्ग का सफर किया। उपाध्याय सोहनविजय, साध्वी देवश्री, साध्वी मल्लोजी और आचार्य ललित विजयजी। ये सभी नाम भी गुजराँवाला की आत्मा से जुड़े हुए हैं।

करीब साठ सत्तर साल का एक व्यक्ति नज़र आया। मैंने उसको पूछा- 'भाई साहेब, इस मुहल्ले के बारे में हमें कुछ बताओ'।

'ये सारा मुहल्ला ही हिंदू मुहल्ला था। वो जैनी हिन्दू। उनको भावड़े भी कहते हैं। इसका नाम ही भावड़ा मुहल्ला है। अब यहाँ कोई पुराना बाशिंदा नहीं है। ये सभी, हम भी, इण्डिया से उजड़ कर यहाँ आकर बसे हैं।

पाकिस्तान में 45 दिन :

पाकिस्तान 14 अगस्त 1947 को बना। परन्तु आचार्य विजयवल्लभ सूरि जी, समुद्रविजयजी, जनकविजयजी आदि मुनिगण, प्र. देवश्रीजी आदि साध्वियाँ तथा वहाँ के जैन परिवार, तब गुजरांवाला में ही थे। पाकिस्तान सरकार द्वारा साधु-साध्वी वृन्द को हवाई जहाज से भेजने की ऑफर को श्री विजयवल्लभ ने यह कह कर स्वीकार नहीं किया कि मैं पूरे श्रीसंघ के साथ ही जाऊँगा, अकेला नहीं जाऊँगा। अंततः 26 सितम्बर 1947 को 17 ट्रकों द्वारा यह पूरा काफिला गुजराँवाला से चलकर लाहौर कैम्प में पहुँचा।

तेरापंथी मुनिजी को अपने साथ लाए :

कैम्प में विजय वल्लभ सूरि जी को सूचना मिली कि तेरापंथी साधु - अमोलक मुनि जी कई दिनों से लाहौर में रुके हुए हैं। तुरन्त कुछ युवकों की ड्यूटी लगाई कि वे कैम्प-अधिकारियों से बात करें व मुनिजी की तलाश करके यहाँ ले आएँ।

अमोलक मुनिजी को अपने साथ लेकर, गुजराँवाला से आये इस काफिले ने 27 सितम्बर को लाहौर से अमृतसर की ओर प्रस्थान किया।

भावड़ा बाज़ार, गुजराँवाला के मंदिर (अब घर) में रहने वाले लोग मूर्तियों वाले कमरे में जूता पहन कर नहीं जाते। इस सुन्दर पालकी में इस्लाम धर्म का पवित्र ग्रंथ-कुरान सजाया हुआ है।

समाधि मंदिर, गुजराँवाला

मैं उनसे कई और बातें भी पूछना चाहता था। पर आगे भी जाना था। उनसे आज्ञा लेकर हम **आत्माराम रोड** की तरफ चल पड़े। मेरे दिमाग़ में तो आत्मारामजी की समाधि घूम रही थी। मोटर साईकल ने एक दो मोड़ लिये और हम मुनि आत्माराम जी की समाधि पर पहुँच गए थाना सब्ज़ी मंडी में।

ब्रिटिशों के समय का एक बड़ा गेट, काफी पुराना हो चुका था। बाहर सन्तरी खड़ा था। सब कुछ वही 60-70 वर्ष पुराना। मुझे लगा कि जैसे वक़्त ही फ्रीज़ हो गया हो।

सन्तरी ने अता-पता पूछा और अन्दर जाने दिया। दर्शनी ड्योढ़ी के सामने एक खुला (लम्बाई में ज़्यादा) सहन। पूरे सहन में काली-सफेद मार्बल टाइलों का फर्श, कइयों पर नाम व रकम भी लिखी थी। ऐसे लग रहा था कि ये विनम्र लोग, फर्श पर नाम लिखा कर अपने गुरु के चरणों में बिछ जाना चाहते हों। इन टाइलों की ज़बान होती तो ज़रूर बोल पड़तीं- ''हमारे ऊपर पैर रखकर चलो। आपके पैरों के स्पर्श में ही हमारा कल्याण है।'

ये आत्माराम जी महाराज की समाधि है। 20 मई सन् 1896 की शाम को यहाँ उनका अग्नि-संस्कार हुआ था। देश भर के भक्तों ने यहाँ उनकी भव्य, शानदार समाधि तामीर कराई। दूध से भी सफेद मार्बल की कुछ सीढ़ियाँ, फिर समाधि के बड़े गोलाकार गुंबद के नीचे पहुँच कर लगा कि शायद इसी क्षण आत्माराम जी बोल पड़ेंगे।

अन्दर की वेदी (पालकी), और पवित्र चरण पादुका सरकार ने सुरक्षा हेतु यहाँ से लाहौर के सरकारी म्यूज़ियम में पहुँचा दी है।

बाहर सहन के दोनों तरफ कमरों के ब्लॉक हैं। एक तरफ, इसी कॅम्प्लेक्स में घर मंदिर था, जिसके पाँच शिखर सहित बड़े मेहराब खंडित पड़े हुए हैं। यहाँ मध्य में भगवान वासुपूज्य की मूर्ति थी। और बाकी चारों में चरण पादुकाएँ थीं। अब कुछ नहीं।

यहाँ की भगवान वासुपूज्य स्वामी की मूर्ति, अब इण्डिया में पालीताना की पंजाबी धर्मशाला के मंदिर में विराजमान है।

समाधि स्थल के मेन गुँबद के दोनों तरफ दो छोटे गुँबद हैं। समय ने अपना असर दिखाया है। जहाँ 1965 तक इण्डिया से जैन यात्री, हर साल आया करते थे, अब वह पवित्र स्थान धीरे-धीरे जीर्ण होता जा रहा है। भारत के जैनी लोग और पाकिस्तान की सरकार को ध्यान देना चाहिए। श्री विजयानंद आचार्य जी की महानता का विचार करता हुआ, पता नहीं मैं किस समय, उस पाँच फुट ऊँचे चबूतरे की सीढ़ियाँ उतर आया। मैंने कुछ फोटो लिये। उस शिला की भी जिस पर लिखा था-

"समाधि श्री आत्मारामजी विजयानंद"

20 मई, 1896 ई.

गुरुकुल गुजराँवाला

मुनि आत्माराम जी की समाधि की तामीर तो उनके स्वर्गवास के अगले साल ही शुरु हो गई थी, पर इसके बनकर तैयार होने में 5-6 साल लग गए। परन्तु साथ के कमरों के दो ब्लॉक, सहन में कुआं व रेहट व होस्टल रूम आदि करीब सन् 1924-25 तक तैयार हो चुके थे। अत: आत्माराम जी के चेले श्रीविजय वल्लभ सूरि जी ने सन् 1925 की वसंत पंचमी के दिन यहाँ पर गुरुकुल शुरू कराया। पूरे भारत के विशेषकर पंजाब क्षेत्र के जैन परिवारों के बच्चे यहाँ पढ़ने आते थे। बीस वर्ष गुरुकुल यहाँ चलता रहा।

सन् 1941-43 के मध्य, यहाँ से करीब दो मील दक्षिण की ओर जगह लेकर, उसमें तमाम तरह की सुविधाओं व छोटे मंदिर सहित इस नए कॉम्प्लेक्स में गुरुकुल को शिफ्ट कर दिया गया।

गुरुकुल की नई बिल्डिंग के उद्घाटन पर तत्कालीन कश्मीर स्टेट के रेवेन्यु व लॉ मंत्री मान्यवर श्री फूलचन्द मोघा तथा पंजाब स्टेट के वित्त सचिव श्री एल.सी. जैन विशेष रूप से पधारे थे।

अब यहाँ कुछ नहीं है। लोगों के घर हैं।

गुरुकुल के मंदिर की भगवान वासुपूज्य की मूर्ति वर्तमान में बीकानेर की दादावाड़ी - मंदिर में विराजमान है।

आचार्य विजय ललित सूरि जी

इस गुरुकुल के नाम के साथ ही जुड़ा है श्री ललित विजय जी का नाम। उन्होंने अपने उपदेशों से गुरुकुल के लिए विपुल धनराशि भिजवाई।

आपका जन्म गुजराँवाला के निकट भाखड़ियाँ गाँव में एक ब्राह्मण सुनार के घर हुआ। पिता दौलतराम ने आपका नाम लछमनदास रखा। पिता के मित्र भक्त बुद्धामल जैन के संयोग से आपको जैन साधुओं की संगत मिली। आचार्य विजय वल्लभ सूरि के पास दीक्षा लेने पर आपका नाम ललित विजय हुआ। सन् 1936 में आपको आचार्य पदवी मिली। पंजाब और विशेषकर मारवाड़ में शिक्षाप्रचार और नए स्कूल-पाठशाला कायम करना-आपके महान् कार्य हैं। सन् 1949 में खुड़ाला में आपका देहाँत हुआ। फालना में आपकी यादगार बनी हुई है।

शाम के अन्धेरे में बस समाधि का गुंबद ही नज़र आया। मेरे सामने लाहौर के म्यूज़ियम का वो दृश्य था-

''गुजराँवाला से मिलने वाले श्री आत्मारामजी'
के क़दमों के निशान'

नोट : बाबू दीनानाथ जैन (जेहलम वाले) जो हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी के जानकार थे, उन्हें गुरुकुल के रेज़िडेंट-सुपरिटेंडेंट के पद पर नियुक्त किया गया।

सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में गुजराँवाला के जैनों ने कई बुलंदियों को छुआ था। तत्त्वज्ञान व इतिहास के ज्ञाता व लेखक श्री हीरालाल दूगड़; कवि खुशीराम दूगड़, कपूरचंद मुन्हानी, देवराज मुन्हानी; गुरु भक्त ला. माणेकचंद, लाला कपूरशाह, रायसाहेब प्यारालाल, ला. दीवानचंद, ज्ञानचंद, ला. लाभचंद, ला. पन्नालाल, फग्गुशाह, चूनीलाल, रिखबदास, सरदारीलाल, चरणेशाह, कुन्दनशाह तथा स्वतंत्रता सेनानी श्री तिलकचंद तिरपंखिया के नाम उल्लेखनीय हैं।

क़िला सोभा सिंह

मेज़ पर पड़े हुए पुराने विवरण, किताबें और कई ज़िलों के पुराने गज़ेटियर शायद मुझे कुछ कहना चाह रहे थे। इन्हें देखते-देखते सन् 1920 का 'सियालकोट ज़िले का गज़ेटयर' मेरे हाथ में था। और अचानक इसमें ज़िक्र आया 'किला सोभा सिंह' में एक जैन श्वेताम्बर मंदिर का।

इसे दो तीन बार पढ़ने पर कुछ हैरानी भी हुई कि किला सोभासिंह में जैनधर्म के 10वें तीर्थंकर शीतलनाथ का बहुत ही शानदार मंदिर था।

नारोवाल को जाने वाली सड़क पर चलते हुए हम किला सोभा सिंह पहुँचे। गाड़ी रेल्वे स्टेशन पर रुकी। साफसुथरा था यहाँ का स्टेशन। अच्छा शहर है। यहाँ बाज़ार में दुकानें, भीड़, गाड़ियाँ, लड़के-लड़कियों के स्कूल। इन सबसे होते हुए हम आगे जा रहे थे कि मंदिर का बहुत ऊँचा शिखर दिखाई दिया। सारे शहर की हवेलियाँ, मकानों से ऊँचा था यह शिखर। ऊपरी कलश टूट चुका था। पंजाब के अन्य जैन मंदिरों से यहाँ के शिखर की बनावट बहुत अलग और सुन्दर थी। चौरस शिखर के कोने और सन्तरे की भीतरी फाँकों की तरह हर दिशा में दो दो, यानी कुल 12 परतों में ऊँचाई लेता हुआ शिखर बीते सुनहरे युग की कहानी कह रहा था।

पूछते-पूछते मुहल्ला ब्राह्मणां जो अब मुहल्ला शेखां है पहुँचे। अब हम मंदिर के दरवाज़े पर थे। दो सदी पहले की बड़ी ईंटों के व चूने से बनी दीवार में बहुत पुराने, टूटे हुए गेट से अंदर पहुँचे। दरवाज़े में दाखिल होते हुए डर भी लगा कि शायद यह अभी टूट जाएगा।

अंदर के सहन में ईंटों की दीवारें थीं। मूर्तिस्थान का मेहराब और चबूतरा बना हुआ था। ये सब ईंट व चूने से बने थे। ऊपर छत को देखा

तो वह भी ईंट व चूने से ही बिना किसी बीम या सहारे के, गुम्बद की तरह गोलाई लेती हुई, बनी हुई थी। छत का गुंबद अभी भी मज़बूती से खड़ा था।

जैन तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ के इस मंदिर की प्रतिष्ठा श्री बुद्धि विजय जी ने कराई थी। किला सोभा सिंह के एक धनाढ्य परिवार ने अपने बुज़ुर्ग-श्री सदानंदजी तिरपंखिया ओसवाल भावड़ा की याद में इस मंदिर का निर्माण कराया था। उस समय यह मंदिर बहुत ही सुन्दर और दिलकश था। एक ग्रंथ में इसे देव-विमान के समान सुंदर कहा गया था।

सन् 1941 में जैन आचार्य विजय वल्लभ सूरि जी नारोवाल से पैदल यात्री-संघ के साथ इस मंदिर के दर्शन-वन्दन के लिए आए थे।

किला सोभासिंह का यह मंदिर बनाने और पूजने वालों की और अधिक जानकारी के लिए अब हमें यहाँ के किसी बुज़ुर्ग मूल-निवासी की तलाश थी। दो तीन दुकानदारों से बात करने पर, आखिर 70-75 की उमर का एक व्यक्ति मिल गया जो यहाँ का पटवारी रहा था। उसने बताया यह जैनी भावड़ों का मंदिर है। सिर्फ एक बड़ा परिवार था यहाँ भावड़ों का। जैन साधुओं का आना-जाना होता रहता था। मेरे पिता-दादा बताते थे कि किरपेशाह भावड़ा तिरपंखिया की बहुत ज़मीनें - जायदादें थीं और वो यहाँ के नंबरदार भी थे। सरकारी ठेकेदार थे। इन्हीं किरपेशाह के बुज़ुर्गों ने यह मंदिर बनवाया था। सन् 1947 में अपने घर और यह मंदिर छोड़कर, वे इंडिया चले गए थे। अब यह मंदिर खाली है। यहाँ कोई नहीं रहता।

किला सोभासिंह के जैन श्वेताम्बर मंदिर को पाकिस्तानी पंजाब के अति प्राचीन मंदिरों में गिना जा सकता है। फर्श दीवारों, मूर्ति स्थान, कहीं पर भी संगमरमर नहीं लगा होने पर भी, कारीगरों ने इसे अत्यंत पक्का व खूबसूरत बनाया था।

ऊपर की छत पर जाकर, हमने मंदिर के शिखर, कलश और फिर दीवारों तथा ईंटों व चूने के, बिना बीम आदि से बने हुए छत के गुम्बद की फोटो उतारीं, और वापसी सफर शुरू किया।

किला दीदारसिंह

......जो उसके हैं मीत

गुजराँवाला से पश्चिम में करीब 30-35 कि.मी. की दूरी पर स्थित, अपने समय की मशहूर व्यापारिक मंडी - किला दीदारसिंह के श्वेताम्बर जैन मंदिर की तलाश में बहुत चाहते हुए भी मैं खुद नहीं जा सका। वैसे वहाँ के मंदिर की सुन्दरता और अनूठी शान, और फिर सन् 1992 में मज़हबी जुनून के प्रहारों के बारे में मैंने बहुत कुछ सुन रखा था।

आखिर एक दिन मैंने फेसबुक में अपना सन्देश छोड़ा-'कोई सज्जन जो क़िला दीदारसिंह का रहने वाला हो, मेरे से सम्पर्क करे'।

दोस्तों के उत्तर धड़ाधड़ आने लगे। उनमें से एक उत्तर मेरे जानकार मित्र सलमान रफीक का भी था। उत्तर सिर्फ इतना ही था- 'मुहम्मद मिज़ानुलहक़'।

उनके नंबर पर फोन करने ही वाला था कि उधर से वह खुद ही बोल पड़े। मैंने उन्हें बताया कि 'आपके शहर-किला दीदारसिंह में मुझे एक जैन मंदिर की तलाश है। ये मंदिर भावड़ा बाज़ार, भावड़ा मुहल्ला या हो सकता है कि किसी भावड़ा गली में हो'।

अगले दिन मिज़ान ने बताया- 'जी, कमाल हो गया। असल में हमारे कस्बे में बहुत सारे मंदिर और एक बड़ा गुरुद्वारा थे। ये सब बाबरी मस्जिद के बवाल में ढहा दिए गए। अब इन मंदिरों की तलाश काफी मुश्किल है, और उस पर जैनियों या भावड़ों का मंदिर, ये तो और कठिन सा है।'

कई दिनों के बाद मिज़ान का फोन आया- 'सर, मंदिर मिल गया है। पूरी गली का नाम ही भावड़ा गली है।'

वह बता रहा था कि 'गली में आठ या नौ घर थे भावड़ों के। और एक जैन मंदिर भी है। घरों, हवेलियों और इनकी बनावट व ऊँचाई से लगता है कि यहाँ के सभी भावड़े बहुत सुखी और समृद्ध थे।'

मैंने उसे बताया कि ये जैनों के 12वें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य का मंदिर है जो सन् 1866 में बना था और जैन साधु, मुनि बुद्धि विजय (बूटेराय जी) ने इसकी प्रतिष्ठा कराई थी।

जैन मंदिर

मिज़ान ने बताया कि आजकल यह मंदिर बाहर से एक बहुत बढ़िया, ऊँची और शानदार हवेली की तरह लगता है। अन्दर का हिस्सा, जिसमें पूजा का स्थान, मंदिर का कलश और शिखर थे। वह सब 1992 के दिसम्बर में ढहा दिए गए। अब यहाँ इंडिया से आए हुए परिवार बस गए हैं। मगर उन्होंने भी इसका बाहरी भाग, उसी तरह ही रखा हुआ है। पहचाना जा सकता है कि यह जैन मंदिर ही है।

मिज़ान ने उस गली के घरों-हवेलियों और जैन मंदिर की फोटो ली। पूरी भावड़ा गली, अब भी बहुत सुन्दर लग रही है।

ब्रिटिश काल में बनने वाली इमारतों की तरह ही अति सुन्दर मंदिर की बिल्डिंग, दरवाज़ों के पिल्लरों पर जालियों वाले रोशनदान, हरेक पिल्लर की डाट के शुरू होने से पहले, नागदेवता जैसे फूल, चित्रकारी वाली बहुत दिलकश व विशाल बिल्डिंग। बाहर की तरफ एक ही तरह के चार बड़े-बड़े प्रवेशद्वार। मुख्य प्रवेशद्वार के ऊँचे फर्श पर चढ़ने के लिए, गली की तरफ लगी हुई पत्थर की शिलाएँ।

न जाने कितने साधु-मुनि महाराज तथा पूजा, उपासना करने वाले लोग इस प्रवेशद्वार से होकर मंदिर में गए होंगे। ईस्वी सन् 1866 से 1941 तक यहाँ रौनकें रहती थीं। उत्सव होते थे। आरती, भजन होते थे। आज

सन्नाटा है। अब यह किसी का घर है। भगवान का घर, अब आदमी का घर है।

अंग्रेज़ी राज में तरह-तरह के बदलाव हुए। पंजाब के इस भाग में रेलों, सड़कों व मिलिट्री छावनियों का भी जाल बिछा। व्यापारिक मंडियों की दशा भी बदली। नए कारोबारी केन्द्र उभरे और पुरानी मंडियाँ शांत होने लगीं। पहले विश्वयुद्ध (1914-1918 ई.) ने भी अपना प्रभाव छोड़ा। क़िला दीदारसिंह के कस्बे का भी यही हाल हुआ। लोगों का साहूकारा बिज़नेस भी बैंकों ने लेना शुरू कर दिया। हालात की मजबूरी ने पलायन को जन्म दिया। और ज़्यादातर जैन लोग पास के बड़े शहरों, गुजराँवाला आदि में जाकर बसने लगे। बड़ी उमर के पुराने लोगों को सेठ मय्यादास भावड़े का नाम अभी तक याद है।

सन् 1940-41 में आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरि जी ने सारी बातों को ध्यान में रखकर, किला दौदारसिंह के मंदिर की प्रतिमाओं को गुजराँवाला में, गुरुकुल की नई बिल्डिंग के घर-मंदिर में स्थापित करा दिया। पुन: देश-विभाजन के समय, भगवान वासुपूज्य की यह प्रतिमा, बीकानेर की जैन दादावाड़ी में विराजी गई। यहाँ के मंदिर के शंख और घण्टों की आवाज़ें आज भी अनंत से ध्वनित हो रही हैं।

''उनको ही मिलता है वो, जो उसके हैं मीत।''

राम नगर

जो अब बन गया है रसूल नगर

लाहौर से रामनगर जाने के लिए पहले गुजराँवाला जाना पड़ता है। इस सफर में मेरे साथ था अहसान अली। हम दोनों एक कोच की अगली सीटों पर बैठ गये।

साथ की सीटों पर कुछ औरतें आपस में बातें कर रही थीं। उन बातों में मुझे सच्चाई की सुगंध आ रही थी। वो कह रही थीं-

'धरती की औलाद वो होती है, जो धरती को माँ माने, उसका दूध पिये और उसी के वक्ष पर सोये। जिन माँओं को मातृत्व प्राप्त नहीं हुआ, उनको ये नहीं पता होता कि माँ के स्तनों में दूध कैसे उतरता है और बालक को दूध पिलाने की सन्तुष्टि और आनंद क्या होते हैं।'

कोच चल रही थी और मैं अपने ख्यालों में औरत और धरती का समन्वय कर रहा था।

65 कि.मी. के सफर के बाद हम गुजराँवाला में उतरे। यह ऐतिहासिक शहर आजकल लोहे के कारोबार की मंडी है। यहाँ से हमने अलीपुर की बस ली जो यहाँ से 39 कि.मी. है। मैं इससे पहले भी दो बार रसूल-नगर आ चुका था। पहली बार पी.टी.वी. की टीम के साथ एक डाक्युमेंट्री बनाने और दूसरी बार रसूलनगर के जैन मंदिर की फोटोग्राफी करने के लिए आया था।

अलीपुर को मुसलमान लोग अलीपुर और हिन्दू सिख इसे अकालगढ़ कहते हैं। वैसे ही रामनगर अब रसूलनगर हो गया है।

अकालगढ़ के गवर्नर मूलराज ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध बगावत कर दी। लड़ाई में मूलराज पकड़ा गया। तब मुलतान का किला और भगत प्रहलाद का मंदिर भी तबाह हो गए।

अकालगढ़ से रामनगर करीब 15 कि.मी. है। मोटर-साईकल-रिक्शा ने रामनगर पहुँचा दिया। एक खुला बाज़ार, जिसके दोनों तरफ दुकानें तो हैं, पर उजड़ी सी लग रही थीं। वैसे भी यह शहर कई बार उजड़ा और कई बार बसा है।

दूर से रामनगर के जैन मंदिर का शिखर व कलश दिखाई दिये। धीरे-धीरे हम इस मंदिर के चौक तक पहुँच गए। अधेड़ और बड़ी उमर के कुछ व्यक्ति हमें ग़ौर से देख रहे थे।

'भाई साहेब, ये हिन्दुओं का नहीं, ये तो भावड़ों का मंदिर है।' इन्हें जैनी कहा जाता था। आप कहाँ से आए हो?'

'हम लाहौर से इसी मंदिर को देखने आए हैं।'

'इस मंदिर का अब क्या देखना है। ये तो 1947 से पहले देखने वाला था। इसकी निराली ही शान थी तब। यह बहुत बड़ा था और इसमें करीब 30 कमरे थे। अब तो इसे मिट्टी का ढ़ेर समझो। जिस दिन गिरेगा, लोग इसकी ईंटों को अपने घरों में लगा लेंगे। फिर भूल जायेगा कि यहाँ कोई मंदिर होता था।'

'जब वो लोग चले गए तो हमने इसका कोना-कोना बड़े चाव से देखा। इसकी दीवारें फूलों, पौधों से भरी होती थीं। गेट के पास पेंटिंग से दरबान बनाए हुए थे। रंग-बिरंगा काम बहुत दिलकश था। छत पर गोल व चौकोर छोटे-छोटे सैकड़ों शीशे लगे हुए थे। वो शीशे कभी गिने नहीं जा सके। पर वो भूलते भी नहीं हैं।'

'इसे लोग जैन मंदिर वाला चौक कहते थे। इसके साथ की पाँच गलियों को भावड़ों का मुहल्ला कहते थे। और इस सारे एरिया को सुहागपुरा कहते थे।'

मंदिर का दरवाज़ा सड़क से तीन फुट ऊँचाई पर था। लगता था कि यह मंदिर का मेन गेट नहीं है, वह तो दूसरी तरफ गली में है।

अन्दर पहुँचते ही एक बरामदा है। आगे बाएँ हाथ सीढ़ियाँ हैं। बरामदा और मंदिर की परिक्रमा से आगे हॉल (मंडप) है। इससे आगे बहुत बड़ा 9 कमरों का उपासरा साधु-साध्वियों के लिए था। ये सब कुछ अब ढ़ह चुका है।

गली वाले गेट से बरामदे में आते-आते ऐसे लगा कि अभी कुछ देर पहले ही कोई बमबारी हुई है। हमारे पैर जमीन या फर्श पर नहीं, बल्कि ईंटों, रोडों के ढ़ेरों पर थे। संगमरमर की शिला भी उस ढेर में थी जिस पर हिन्दी या संस्कृत में कुछ लिखा हुआ था।

कैमरे के फ्लैश से एक दम कुछ चमगादड़ें फड़फड़ाईं; ऐसे लगा कि इस मंदिर की रखवाली करने वाली कोई आत्मा हो।

मैंने छत को गौर से देखा। एक दम उदासी। छत पर लगी हुई लकड़ी की फट्टियों में शिकन (तरेड़) पड़े हुए थे। ये सभी शिकन मेरी आँखों द्वारा मेरे अन्दर उतरना चाह रहे थे।

विस्सर बहाराँ गइयाँ,
साडे अंग तरेडां पइयाँ।।

करीब 3 फुट चौड़ी गोल सीढ़ियाँ। कुल 25, फिर आया द्वार। सीढ़ियाँ इतनी खस्ता कि पैर धँसे जा रहे थे। ऊपर जाकर मुझे ऐसा लगा जैसे किसी सोये पड़े अँधे को जगा दिया हो। यह पूरा मंदिर पहली मंज़िल पर ही था।

साथ आया लड़का दीवारों की पेंटिंग्ज़ और फ्रेस्कोज़ ढूँढ़-ढूँढ़ कर हमें दिखा रहा था। मूर्तिस्थान वाले कमरे के द्वार पर बने फूलों, लताओं और पौधों के फ्रेस्कोज़ में अभी भी कहीं-कहीं जान थी।

और एक पेंटिंग देख कर तो मुँह में उँगली दबानी पड़ती है। एक ही पेंटिंग में 24 तीर्थंकरों के 24 चित्र उनके अलग-अलग मंदिरों में दिखाये गए थे। सभी के आस-पास पूजा-भक्ति करने वालों को दिखाया गया था।

साथ ही सजावट के लिए रास्ते, वृक्ष, फूल-कई तरह के रंगों और सोने की चमक के साथ चित्रित थे। परन्तु इसका पलस्तर अब उखड़ना शुरू हो चुका था।

एक दीवार पर रंगों और सोने के पानी से बहुत बड़ा सिद्धचक्र बना हुआ था।

सबसे ऊपर की मंज़िल पर पहुँच कर शिखर को देखा। इसकी बुलंदी ने अनेकों को सन्मार्ग दिखाया होगा। ठीक 150 साल पहले (वि.सं. 1924, ई. सन् 1867) में बनी इमारत के आज के स्वरूप को, इसके बचे खुचे कोनों, ईंटों, पत्थरों को जोड़कर, आदमी बस अन्दाज़ा ही कर सकता है, इसके वैभव का। शिखर व कलश काले पड़ चुके थे लेकिन कारीगरी का बेहतरीन नमूना थे। शिखर की जड़ के चारों कोनों में चार लघु-शिखर थे, जिनमें एकाध ही बाकी है। मेन शिखर को कमल की पत्तियों से उठाया गया था। सबसे पहले चार आले थे। फिर तीन शिखरों के स्वरूप मेन शिखर में ही समाहित थे। सबसे ऊपर चार चेहरों की मूर्तियाँ थीं। ध्वजा का पोल भी लगा हुआ था। शिखर के बेस की छत पर भी संगमरमर का काम हुआ था।

पंजाब में धर्मक्रांति के प्रथम प्रवर्तक मुनिश्री बुद्धिविजय जी (बूटे रायजी) ने पश्चिमी पंजाब में 6 या 7 मंदिर बनवाये तथा उनकी प्रतिष्ठा भी कराई। रामनगर में अत्यंत चमत्कारी चिंतामणि पार्श्वनाथ का बहुत विशाल व भव्य मंदिर बनवाया।

यहाँ के जैन भावड़ा लोग बहुत समृद्ध थे।

रामनगर की देन - मुनिश्री बुद्धि विजय जी के गुरु भाई श्री वृद्धि विजय (पहला नाम कृपा राम, ओसवाल गादिया गोत्र) रामनगर के थे। इनके शिष्य विजय नेमिसूरि जी हुए हैं।

इसी तरह श्री विजय वल्लभ सूरि के शिष्य श्री विजय उमंग सूरि का जन्म भी रामनगर के ओसवाल गादिया कुल में हुआ था।

हम लोग बाहर आ रहे थे। लग रहा था कि हमारा कद छोटा

होता जा रहा है और मंदिर ऊँचा-ऊँचा होता जा रहा है। सुहागपुरा अब विधवा नगर लग रहा था।

जैन स्थानक - रामनगर का जैन स्थानक अब किसी का घर है। इमारत का सब कुछ बदल चुका है।

चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर, रामनगर की प्रशस्ति

अब मोहे पार उतार, चिंतामणि, अब मोहे पार उतार,
रामनगर मंडन दुख खंडन, अवर ना कोई आधार ॥
आस-पास प्रभु अजित जिनेसर, मुनि सुव्रत चित्त धार,
चन्द्रप्रभु श्री वीर जिनेसर, शासन के सिरधार ।
संवत भुवन भुवन निधि दधिसुत, अश्विन मास अतिसार,
कर्मवाटी प्रति पदि गुण गाया, आतमराम उद्धार ॥

---

1. गुजरात की एक धार्मिक वृद्ध श्राविका, अपने परिवार के बुज़ुर्गों द्वारा सुरक्षित रखी हुई, बहुत ही सुन्दर, प्रभावक, शुद्ध पन्ने की (बेदाग) श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ की एक मूर्ति मुनि श्री बुद्धि विजय जी की सेवा में लेकर आई। मुनिजी ने इस मूर्ति को रामनगर के गादिया गोत्रीय परिवार के श्री गँडूशाह को सुरक्षा एवं संघ दर्शनार्थ दिला दी। कालान्तर में यह परिवार खानका डोगरा, तथा पाकिस्तान बनने पर लुधियाना में आया। पन्ने की यह प्रतिमा इन्हीं की संभाल में है।

2. रामनगर के भावड़ा परिवार के एक श्रावक बुज़ुर्ग महाराजा रणजीतसिंह के शासन में वित्तीय विभाग के उच्च्व पद पर आसीन रहे थे।

3. रेल मार्ग, सड़कें, नई मंडियाँ व फौजी छावनियाँ आदि के बसने पर राम नगर के अनेक जैन परिवार भी इन नए स्थानों पर जा बसे।

पपनाखा

(पपनाखे में तुम देख सुविधि जिन त्राता)

थेह या उजाड़ की मिट्टी का रंग सुरमई हो जाता है। यह रंग एक ही दिन में नहीं बदलता, इसे तो सदियाँ लग जाती हैं रंग बदलने में। और कभी-कभी इस उजाड़-थेह के ढेरों में से कथाएँ, किस्से, कहानियाँ भी हाथ लग जाती हैं। ऐसी कई कहानियों में लोग साँसें लेते हैं।

पपनाखा या पीपानगरी कभी उदयनगरी कहलाती थी। सियालकोट के राजा सलवान की पत्नी अच्छराँ, जो पूर्ण भगत की माँ थी, वो इसी उदय नगरी के राजा की बेटी थी, जो पुत्र को जन्म देकर भी बे-औलाद कहलाई। उसकी कोख ही उसकी कहानी बन गई।

लाहौर से गुजराँवाला क्रॉस करते ही 20 कि.मी. के सफर के बाद हम पपनाखा पहुँच गए। पपनाखा एक छोटा सा ऐतिहासिक कस्बा है। छोटी सी एक नहर को पार करके, कस्बे के मध्य में एक चौक था। वहाँ ही हमने गाड़ी छोड़ दी।

चौक में दो तीन छोटी-छोटी दुकानें थीं। हमें गाड़ी से उतरते देखकर कई लोग उत्सुकता से हमें देखने लगे। शायद हम उनके लिए अजनबी थे। गली में आगे बढ़े। चौक से ही ज़मीन की ऊँचाई शुरू होने लगी। यह ऊँचाई किसी नदी की मिट्टी के कारण नहीं थी, बल्कि पहले की, फिर उससे भी पहले की आबादी के मलबे के कारण थी। पता नहीं कितनी दैवी-आफतें, कितने भूकम्प से बरबादियाँ होती रही हैं। इन बीती हुई सदियों के ऊपर, तामीर हुआ पपनाखा का जैन मंदिर, जो हमारे बिल्कुल सामने था।

जैन मंदिर

दूध से धुला, सफेद चाँदी सा मंदिर, जैसे धरती में से कोई खूम्भ अभी-अभी निकली हो। अब हमें मंदिर का दर्शनीद्वार नज़र आ रहा था। ज़मीन से दो सीढ़ी ऊँचा था इसका द्वार, करीब 6 फुट चौड़ा, 8 फुट ऊँचा, मोटी लकड़ी की चौखट और मज़बूत तख्ते थे। चौखट के ऊपर भगवान महावीर के दो शेर, दीवार से उभरे हुए, सीमेंट से बने हुए थे। पर वहाँ लगा हुआ था लोहे का मोटा कुण्डा और उतना ही मोटा ताला। ताले को ज़ंग लगी थी, जैसे यहाँ कोई आया ही न हो।

हमारी परेशानी बढ़ी, गली में कोई व्यक्ति नज़र नहीं आ रहा था। हम मंदिर की दीवार के साथ-साथ चलने लगे तभी एक बुज़ुर्ग नज़र आए। सलाम के बाद हमने कहा-

'जी हम लाहौर से ये मंदिर देखने आए हैं। इसका द्वार खुल सकता है?'

'जी, इसकी चाबी जिसके पास है, वह दूसरे गाँव गया हुआ है।'

'कोई ऐसा उपाय जो हम इसकी छत पर जा सकें, और वहाँ से इसके चित्र बना सकें।'

'हाँ, आप इस नई बन रही बिल्डिंग पर चले जाओ, इसकी छत भी मंदिर की छत से जुड़ती है।'

वो बुज़ुर्ग हमारे साथ इस नई बिल्डिंग की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। हम पीछे-पीछे थे। इसकी छत तो मंदिर के बिल्कुल साथ लगी हुई थी। मैं वहाँ से इसके शिखर व कलश के चित्र लेने लगा। इतने में वो बुज़ुर्ग दीवार लाँघकर मंदिर की छत पर पहुँच गए। मंदिर की इमारत हमें बहुत मज़बूत लगी।

वो बताने लगे कि इससे अगला मकान उनका है। सन् 1947 में पहले किसी भावड़े का होता था। यह मंदिर वाला मुहल्ला है। इसे भावड़ों का मुहल्ला भी कहते थे। वैसे इस सारे इलाके को ही भावड़ों की गली कहते थे। यह मंदिर भी भावड़ों का था।'

इस मंदिर के नाम की एक शिला बाहर लगी हुई थी। इसमें अंग्रेज़ी में लिखा हुआ था-

'Jain Shvetamber Mandir'
'Lord Suvidhi Nath'

मंदिर के एक कोने में सीढ़ी बनी हुई थी, जिसका द्वार खुला था। हमें मंदिर में जाने का रास्ता मिल गया। मैंने उन बुज़ुर्ग को बताया। वो कहने लगे- 'अन्दर मत जाना। वहाँ दुर्गन्ध और अंधेरा है। क्या जाने कोई जंतु काट ले।'

अनसुनी करके हम सीढ़ियाँ उतरने लगे। एक-एक सीढ़ी के साथ दुर्गन्ध और अंधेरा बढ़ रहे थे। पानी और मिट्टी की दुर्गन्ध। लग रहा था कि ऑक्सीजन कम हो रही है। मोबाइल से प्रकाश किया तो एक साँप नज़र आया। ऊपर भी एक छत्ता था, काटने वाली मक्खियों का। बैठते-बैठते सीढ़ी उतरे।

दीवार पर लगे फ्रेस्कोज़ और पेंटिंग्ज़ नज़र आए। मुझे लगा कि हमारे यहाँ आने से शायद किसी तीर्थंकर, आचार्य, या मुनि के ध्यान की समाधि भंग हो गई हो।

मंदिर की दीवारों पर बे-शुमार चित्र थे। जो शायद इस दुर्गन्ध में तड़प रहे थे।

मैंने सामने वाली दीवार पर लाईट मारी। एक छोटा सा दरवाज़ा। बिल्कुल सामने बनी थी वेदी की आर्च, जो बता रही थी यही वो स्थान है, जहाँ विराजमान थे भगवान सुविधिनाथ (Lord Suvidhi Nath)। मंदिर की मूर्ति कहाँ गई? कोई पता नहीं।

इमारत की दुर्गन्ध में खड़े रहना अब मुश्किल हो रहा था। मैं फ्रेस्कोज़ के चित्र लेना चाहता था। पर दम घुट रहा था, हमें बाहर जाना पड़ा। धीरे-धीरे फिर छत पर आ गए। मंदिर को, शिखर और कलश को फिर से पूरी गौर से देखा। सूरज के साथ इसकी छाया भी दिशाएँ बदलती है। सालों से ऐसा होता आया है और होता रहेगा यह जब तक यह शिखर

अपने पैरों पर खड़ा है। जब इसके पैर थक जायेंगे तब यह मिट्टी का ढेर हो जाएगा।

बाबा गज्जा जी

उत्तर-पश्चिम की दिशा में शहर के बिल्कुल साथ ही पुराने गाँव का टिब्बा सा है। यह टिब्बा पुराना है। इस टिब्बे की नीवों पर बसा था पपनाखा। एक कोने पर है एक मस्जिद और उससे 200-250 गज़ दूरी पर है जैन बाबा गज्जा का स्थान। पपनाखे में कुछ खानदान भावड़ा के लोग बसते थे। इस खानदान में एक संस्कारी, धर्मिष्ठ व सर्वप्रिय बालक 'गज्जाजी' थे। अत्यन्त दर्दनाक परिस्थिति में उनका देहान्त हुआ। माता को स्वप्न में कहा मेरी मान्यता करते रहना। उनकी समाधि यहाँ थी।

मैंने इत समाधि को ढूँढ़ने की कोशिश की, पर यह नहीं मिली। शायद समय की परतों में कहीं खो गई हो। श्वेत से सुरमई रंग धारण कर लिया हो।

पर नहीं, यह बाबा गज्जा जी का स्थान तो इसी मंदिर और उपाश्रय की बाऊँड्री में चौबारे में है। मंदिर के बाई तरफ ही। यह ओसवाल बरड़ गोत्र वा़लों के बुज़ुर्ग महाचमत्कारी बाबा गज्जाजी की स्थली है।

जैन स्थानक

पपनाखा का जैन स्थानक छोटा पर खूबसूरत था। इसमें एक हाल और कमरे थे। मुनि महाराज आते रहते थे। अब से किसी का घर है।

बाबाधम्म जी

पपनाखा के जैनों में दूगड़ परिवारों में, बीती सदी में हुए उनके पूज्य बुज़ुर्ग- बाबाधम्मजी की मान्यता सश्रद्धा चलती आई है।

कसूर

.........कुछ तेरा-कुछ मेरा

कसूर शहर की गलियों में, मैंने बचपन के कुछ साल बिताए थे। आज अपने छोटे-छोटे कोमल पैरों के निशान मैं इन्हीं गलियों में ढूँढ़ रहा था। ये निशान तो नहीं मिले, पर गली में लगी सदियों पुरानी-'नानकशाही'-ईंटें अपना इतिहास बता रही थीं। ना जाने कितने आक्रमणकारियों के घोड़ों के पैर इन ईंटों पर से गुज़रे होंगे। कसूर के 'कोट रूकनदीन' के सदियों पुराने गेट को लाँघती एक लम्बी सी, शायद सोई हुई गली।

हिन्दू मान्यता अनुसार लाहौर और कसूर को श्री रामचन्द्रजी के दो पुत्रों लव और कुश ने बसाया था। 'मान्यता' से 'इतिहास' तक और 'कुश' से 'कसूर' तक की कहानी-इनके बीच में कितने ही युग बीते होंगे। कसूर ने देखे होंगे अनेक उतार-चढ़ाव, अनेक सूफी-संत-महात्मा व गुरु।

क़िले को कोट कहा जाता है। कई कोटों को मिलाकर यह शहर बना है। यहाँ एक कोट है 'बागड़ कोट' हिन्दुओं का एक गोत्र है बागड़, और मुहल्ले का नाम है बागड़ियों का मुहल्ला। एक अन्य कोट है- कोट रुकन दीन, जो नाम से मुस्लिम लगता है, पर है नहीं। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, जैन और सिखों के घर थे। सभी में बहुत प्रेम और सौहार्द था। यहाँ एक जैन परिवार का 9 मंज़िला घर था, जिसे लोग देखने आते थे।

कसूर का जैन मंदिर

जैनियों के पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का यह श्वेताम्बर जैन मंदिर, कोट रुकनदीन के मेन बाज़ार में, गेट के अन्दर, पहले चौक में

स्थित है। इस चौक को अभी तक 'जैन चौक' ही कहा जाता है। एक बहुत बड़ी, असरदार व खूबसूरत इमारत। करीब 100 फुट लम्बी व 50 फुट चौड़ी है मंदिर की इमारत। दो मंज़िले इस मंदिर में, मेन गेट से अन्दर जाते ही सीढ़ियाँ हैं।

छोटे-छोटे पादानों वाली सीढ़ियों में उस समय कुछ अंधेरा था। चढ़ते हुए, लगता है कि सीढ़ी का हरेक स्टेप (पादान) आपसे बातें कर रहा है। उन कारीगरों की बातें जिन्होंने इन्हें बनाया, **उन मुनियों साधुओं की बातें जो इन सीढ़ियों को चढ़ते-चढ़ते, अपनी आत्मा को भी उच्च-भावों में ले गए। जहाँ आत्मा-परमात्मा का भेद खत्म हो जाता है और दोनों एक-दूसरे में समा जाते हैं।**

अन्दर तूँ है बाहर तूँ, रोम-रोम विच तूँ।
कहे 'हुसैन' फकीर साईं दा, मैं नाहीं सब कुछ तूँ॥
......(शाह हुसैन)

अन्तिम सीढ़ी के बाद खुला सहन (वेहड़ा) था, जहाँ कुछ रोशनी थी। इस थोड़े से प्रकाश में मंदिर की संगमरमर की चौखट साफ दिखाई दे रही थी। बहुत सुंदर और मोटी चौखट के माथे पर हिन्दी में कुछ लिखा हुआ था, उनमें से काफी कुछ मिट भी चुका था। बहुत कोशिश करके, उस देहरी के माथे पर लिखा हुआ जो, पढ़ा गया- वह इस प्रकार है-

"लाला नंदलाल जी दूगड़ की यादगार
में बिहारीलाल, दुर्गादास................"
(आगे का पढ़ा नहीं जा सका)

सन् 1943 में बने इस मंदिर के प्रेरक तथा मंदिर की प्रतिष्ठा कराने वाले थे, आचार्य विजय वल्लभ सूरि। उन्होंने स्यालकोट, खानका डोगराँ, रायकोट, साढौरा, सामाना, रोपड़, फाज़िल्का, बिनौली, लाहौर और कसूर में जैन मंदिरों की स्थापना कराई।

यहाँ रहने वाले परिवार के लोगों ने बताया- 'यह वह स्थान है जहाँ उन गुरुजी की मूर्ति विराजमान थी।'

मंदिर की दीवार में एक झरोखा, जो दो फुट ऊँचा और चार फुट चौड़ा है। जहाँ पहले तीर्थंकर ऋषभदेव की मूर्ति बिराजमान थी, वहाँ इन लोगों ने घर के बरतन सजाये हुए थे। काँच, ताँबे व अल्मोनियम के बरतन। संगमरमर के ऊँचे चबूतरे पर कुल तीन मूर्तियों का स्थान था। वेदी में बहुत ही मनमोहक सफेद झालरदार, आर्टिस्टिक, मूर्तियों के दर्शन हेतु आर्च, वहाँ बने हुए, थोड़ा पतले, स्तम्भों पर टिके हुए थे। वेदी की छत के माथे पर भी बेल-व-फूलों के डिज़ाइन थे। तीनों मूर्तियों के स्थान के ऊपर, वेदी पर तीन गुंबद थे। बीच वाला गुंबद बाकी दोनों से गोलाई व ऊँचाई में कुछ बड़ा था।

मूर्तियों का यह कमरा, जिसे जैनी लोग मूल-गम्भारा कहते हैं, हम इसे बहुत देर तक देखते रहे। नज़र हटाने को जी नहीं करता था।

उन दिनों में कैसे लगता होगा जब यहाँ के जैनी लोग सुबह-शाम यहाँ अपनी पूजा-पाठ करते होंगे। गीत-भजन गाते और आरतियाँ करते होंगे। यहाँ आज वो मूर्तियाँ नहीं हैं, पर इस मूल वेदी ने, इन दीवारों व छतों ने तो वह सब देखा ही होगा।

एक मंज़िल की सीढ़ियाँ चढ़ चुके थे। अभी कुछ और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर छत पर जाना था। ऊपर खुले आकाश को छूने वाला मंदिर का शिखर व कलश दिखाई दे रहे थे। गर्दन को पूरा-पूरा घुमाकर इसे देखा जा सकता है। सफेद, दूध में धुला हुआ यह शिखर, जो कि मंदिर की छत से करीब 10-12 फुट तक तो पक्की ईंटों से बना है और उसके ऊपर है ये शिखर। पहले चारों कोनों पर मार्बल के छोटे-छोटे चार शिखर। इनके बीच है मेन शिखर। अपने तल से ही गोलाई लेता हुआ। बीच में तीन इन-बिल्ट शिखरों की बनावट और बिल्कुल ऊपर है कलश। कलश और ध्वज चढ़ाने का पोल (ध्वज दण्ड), अभी तक अपने स्थान पर लगा हुआ है। शिखर के ऊपरी सिरे पर, चारों दिशाओं में बनी हुई छोटी-छोटी चार मूर्तियाँ, इस ऊँचाई से धरती को, इस शहर को, नगर-निवासियों को, बल्कि पूरी सृष्टि को देख रही थीं।

ऊपर छत से दिखाई देता है एक और छोटा सा बहुत पुराना जैन मंदिर। गोल गुंबद वाले इस मंदिर को पूज (यति जी) वाला मंदिर कहते हैं। यह भी कोटरुकनदीन एरिया में ही स्थित है। शायद यह प्रारम्भिक मुगल-काल के समय का हो।

कसूर में जैन साधु (यति जी) श्री खिल्लू ऋषि ने संवत् 1645 (ई.सन् 1588) में चौमासा किया था। तब यहाँ सम्राट अकबर का राज्य था। इन खिल्लू ऋषि जी ने आसोज सुदि 13 वि. 1645 को यहाँ उपासक दशाँग सूत्र की प्रतिलिपि लिखी थी। पूज का यह मंदिर भी शायद इन्हीं यति जी के समय निर्मित हुआ होगा।

हम बाहर आगए थे। मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि इतना सुन्दर और ऊँचा मंदिर कसूर शहर में अभी तक विद्यमान है। मैंने एक बार फिर मंदिर के कलश को देखा, और इस मंदिर को बनाने के प्रेरक व सरपरस्ती देने वाले महान् गुरु श्री विजयवल्लभ को याद किया। उन्होंने आचार्य विजयानंद (आत्मारामजी) से तपागच्छ की मुनिदीक्षा धारण की। जैन-अजैन ग्रंथों का अध्ययन किया। वो महान् समाज-सुधारक व शिक्षा-प्रचारक थे। अनेक स्कूल, कॉलेज, धार्मिक पाठशालाएँ और गुरुकुलों की स्थापना की। उन्होंने सभी धर्मों की एकता के लिए दिन-रात काम किया।

जैन मंदिर से बाहर एक दुकान पर करीब 80 साल का बुज़ुर्ग हमें आते-जाते देख रहा था। मैंने उसे सलाम किया। उसने पूछा-

'आप कौन हो?'

'मुसलमान।'

'कहाँ से आए हो?'

'लाहौर से ये मंदिर देखने आए हैं।'

'इसका अब क्या देखना। ये तो अब घर है। कभी होता था मंदिर।'

'आप यहाँ के रहने वाले हो?'

'हाँ, मैं यहीं जन्मा व बड़ा हुआ हूँ।'

फिर तो आपने इस मंदिर की रौनक़ें देखी होंगी।'

'हाँ, रौनकाँ भी, बरबादियाँ भी...।'

'रौनकें कैसी होती थीं?'

'हम छोटे-छोटे होते थे। कभी-कभी तो बहुत सारे साधु महात्मा आते थे, कभी-कभी अन्य शहरों के लोग भी बहुत आते थे।

'आप कभी इस मंदिर के अन्दर गए हो'।

'कई बार। छोटे होते प्रसाद मिलता था। घर वालों से चोरी जाते थे। मंदिर का पुजारी छोटे बच्चों से बहुत प्रेम करता था। फिर पता नहीं क्या हुआ.....।'

'कब?'

'सन् 1947 एक ही रात में मंदिर खाली हो गया। पता नहीं कि वे लोग कहाँ खो गए। मंदिर कई दिन बन्द पड़ा रहा। फिर ये लोग इण्डिया से आ गए। इनको ये मंदिर अलॉट हो गया। इन्होंने जब मंदिर का द्वार खोला, तो........।' बाबा जी चुप हो गए।

'फिर क्या हुआ?'

'होना क्या था। वही जो सब जगहों पर हुआ। तोड़-फोड़, लूट-मार, जो मिला वो उठा लो। बस, जिस जगह पर मूर्तियाँ पड़ी होती थीं- वो भी साफ। पता नहीं वो मूर्तियाँ कब, कौन, कहाँ हैं?'

मैं अन्दर-ही-अन्दर सोचता रहा और बिल्कुल खो गया। मुझे मंदिर की सीढ़ियों का अन्धेरा याद आया। राजनीति का अन्धेरा। हमारे अन्दर का अंधेरा।

'उस वक़्त कोई इंसान नहीं रहा था। सभी बंट गए थे- हिन्दू, मुस्लिम, सिख बन कर जुदा-जुदा हो गए थे। मानवता कहीं खो गई थी।' -बाबा जी ने एक लम्बा साँस लिया और चुप हो गए।

कसूर का जैन स्थानक और पाठशाला

कसूर में अत्यंत सुन्दर, व प्रभावशाली जैन स्थानक था। समाज के अनेक कार्यक्रम यहाँ होते थे तथा साधु महाराज भी प्राय: चौमासा करते

थे। समाज द्वारा एक कन्या पाठशाला भी चलाई जाती थी। 100-125 साल पहले, कवि हरजसराय जैन का जन्म भी कसूर में हुआ था।

जैन परिवार की नौ मंज़िला हवेली :

जैन मंदिर वाली गली में ही एक धनी जैन परिवार की नौ मंज़िल की, उस ज़माने की बहुत खूबसूत हवेली अभी तक क़ायम है। इस हवेली के मालिक देश विभाजन के बाद दिल्ली में बसे गए हैं।

कसूर की देन :

विख्यात स्थानकवासी संत उपाध्याय मनोहर मुनिजी महाराज तथा श्री गुरु वल्लभ समुदाय में महत्तरा मृगावती श्री की शिष्या साध्वी सुव्रताश्री जी कसूर शहर की देन हैं।

देश विभाजन के समय कसूर के श्वे. जैन परिवार, जो भारत में आकर बसे, उनमें से कुछ नाम -

ला. मिलखीराम घनीराम समूह परिवार; बिहारीलाल दुर्गादास परिवार; कवि व गायक बिहारेशाह मनोहरलाल परिवार; सोहनलाल चैनलाल परिवार; मुहब्बतराय रूपकिशोर परिवार; पन्नालाल P.L.J. परिवार; लालचंद प्रेमचंद परिवार तथा बिमलप्रकाश जैन परिवार आदि।

खानक़ाह डोगराँ

जम गई बद्दल स्याही......

कभी इस शहर का नाम 'टिब्बा मियाँ आली' था, जो अब मिट्टी का ढेर है। उस पर बिखरी पड़ी सदियों पुरानी ठीकरियाँ, शायद मुझे कहना चाह रही थीं कि हमें पहचानो। आपके हाथों के निशान हमने आज तक संभाले हुए हैं। मैं अपनी हथेलियाँ देखने लगा तो ठीकरियाँ खिलखिला कर हँसने लगीं।

इससे भी पहले इस शहर का नाम 'असारवर था, जो पंजाब के इस छोटे से हिस्से की राजधानी था। असारवर या असरूर की कथा चीनी यात्री ह्यूनसांग ने भी सुनाई है। वो सन् 630 में इस नगर में आया। महात्मा बुद्ध के चरणों ने भी इस धरती को छुआ। और सम्राट अशोक ने यहाँ स्तूप बनवाया। भिक्षु यहाँ आते रहे। महान् अर्कियोलोजिस्ट डॉ. दानी ने यहाँ खुदाई कराई। जो चाहा वे अपने साथ ले गए। जो बाकी रहीं, वो आज भी यहाँ पड़ी हैं। मैं ने उस ढेर से एक ठीकरी उठाई और 'पीलू' के शब्दों में बोला-

'पीलू चढ़िया ढेर ते, थीं खला हैरान,
सच सच बोलनी ठीकरिये, कित वल्ल गया जहान।'

इससे पहले भी मैं यहाँ आया था। तब ननकाना साहिब से हम गुरुद्वारा सच्चा सौदा भी आए, जहाँ गुरु नानक ने पिता कालू जी की कमाई में से, जंगल में बैठे साधुओं को लंगर खिलाया था और इसे सच्चा सौदा कहा था।

खानक़ा डोगराँ, में पिछली बार हमने दूर से तो यहाँ के जैन मंदिर के शिखर व कलश को देखा, पर निकट नहीं पहुँच सके थे।

उस दिन मुहर्रम की दसवीं थी। सैकड़ों मर्द व औरतें काले कपड़ों में मातम कर रहे थे। हर तरफ पुलिस के पहरे थे।

मंदिर का दूध सा सफेद शिखर तो दिखाई दिया, उस गली में भी पहुँच गए थे, पर पूरी गली ही काले कपड़े पहने हुए, मर्द और औरतों से भरी पड़ी थी।

जैन श्वेताम्बर मंदिर। सफेद वस्त्र धारियों का मंदिर। और घिरा हुआ था काले कपड़े पहने हुई टोलियों से।

'काले मेंढे कपड़े, काला मेंढा देस'

कालिख का अपना कोई रूप नहीं होता, पर ये रूप को बहुरूप कर देती है। तन की कालिख तो धोकर उतर जाती है, पर मन की कालिख तो नरक के मार्ग पर ले जाती है।

पता नहीं कितने नाम हैं और कितने सवाल हैं कालिख के? एक सवाल गुरु नानक ने भी किया था-

'कोयल री तू कित गुण काली'

मंदिर के करीब पहुँच कर भी हम यह मंदिर तब नहीं देख सके। हसरतों को लेकर पीछे मुड़े। भगवान महावीर का मार्ग इस छोटी सी बात पर ही बंद नहीं हो जाता। अभी इस मार्ग की ज़िंदगी की किरण बाकी है। अब नहीं, तो फिर सही।

यह सब तो कुछ हफ्ते पहले की वार्ता है। इस बार हम पक्का इरादा लेकर आए हैं कि खानका डोगराँ का यह मंदिर अवश्य ही देखना है।

खानक़ा डोगराँ का श्वे. जैन मंदिर

आज एक बार फिर चले, जैन श्वेताम्बर मंदिर देखने, मेरे साथ हारून और मरियम थे। मरियम पिछली सीट पर बैठी ना जाने क्या सोच

रही थी, पर मैं मरियम के बारे में सोच रहा था। ये मरियम वो नहीं थी, जिसने एक पैगंबर को जन्म दिया। जो सारी सृष्टि के लिए ईसा मसीह हुआ। परन्तु वह मरियम खुद मुलज़िम (दोषी) कहलाई इस समाज की अदालत में।

उस मरियम से दो हज़ार साल बाद हुई, यह मरियम एक स्त्री है, जो हमारे साथ चली है जैन श्वेताम्बर मंदिर देखने।

खानकाह डोगरां लाहौर से 70 कि.मी. दूर ज़िला शेखूपुरा का एक कस्बा है। 'यह खान-काह डोगराँ क्या है?' हारून ने प्रश्न किया।

'असल में यहाँ हाजी दीवान साहिब का मज़ार था। आस-पास के कबीले उनकी भक्ति देखकर आने लग गए। और उन्हीं के मुरीद बन गए। इस तरह यह खानकाह - डोगराँ के नाम से मशहूर हुआ। मुग़लों ने इसके नाम एक हज़ार तीस रुपये की जागीर लगा दी। यह मज़ार (खानक़ा) अभी भी है।'

कस्बे में पहुँचकर हारून ने एक खुले बाज़ार में, लम्बी सी गली के सिरे पर, गाड़ी को खड़ा किया। एक व्यक्ति से मंदिर के बारे में पूछा।

अब मंदिर का शिखर व कलश हमारे सामने था। बहुत मज़बूत और सुन्दर मंदिर। हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रहे थे, मंदिर हमारे से ऊँचा होता जा रहा था और अपनी गर्दन को पूरा-पूरा मोड़कर ही इसे देख सकते थे। मंदिर की बिल्डिंग में ही एक सराफ-सुनार की दुकान थी। उसका दरवाज़ा खोल कर उनको सलाम कहा।

'हम ये मंदिर देखने लाहौर से आए हैं,' क्या दिखा सकोगे?'

'आइये, हम मंदिर देखते हैं।'

'ये सारी दुकानें इसी मंदिर की हैं। नीचे हमारी रहाईश है। मंदिर की बिल्डिंग बहुत बड़ी, हवादार और मज़बूत है।'

'इस मुहल्ले का नाम क्या है?'

'पहले तो इसको जैनी मुहल्ला कहते थे। आजकल इसे इमाम बारगाह वाला मुहल्ला कहते हैं।'

उन्होंने दरवाज़ा खोला। हम अंदर आ गए। पेचदार सीढ़ी, छोटे-छोटे स्टेपस पर बल खाते हुए हम छत पर आ गए। सीढ़ी से बाहर खुला बड़ा सहन (दालान), और इसके मध्य में जैन श्वेताम्बर मंदिर। दूध की तरह सफेद। ज़मीन से कोई चार फुट ऊँचा दरवाज़ा, और उसके अन्दर एक कमरा। ये है मंदिर का मूर्तिस्थान। इस स्थान के ऊपर, आकाश को छूता हुआ शिखर-कलश। मूर्तिस्थान के आगे एक बरामदा।

इस बरामदे में, श्रद्धालुओं-पुजारियों के लिए डिब की चटाइयाँ बिछी हुई थीं। मूर्तिस्थान के छोटे द्वार के आगे कागज़ के फूलों के रंग-बिरंगे फूलों की लड़ियाँ लटक रही थीं। अन्दर मूर्ति की जगह पर मिट्टी के पाँच दीये (चिराग) थे।

मैं इन दीयों में से एक को, बहुत ही ग़ौर से पूरी शिद्दत से देखने लगा। बिना आँख झपकाए देखता ही रहा। यहाँ तक कि वह दीपक (दीया) मेरे से बातें करने लगा।

मैं सन् 1941 में यहाँ आया था, अपने इन साथियों के साथ। तब मैं यहाँ बिराजमान मूर्ति के चरणों में हर रोज़ जलता-जगता था। फिर मैं बुझ गया। 'डार्कनेस'। हर तरफ अंधेरा। न मूर्ति, न पुजारी, न तेल न ही कोई दीया जगाने वाला। एक चुप्प, एक खामोशी। और इसके साथ 'डार्कनेस'। हम यहाँ से जाने वालों की इंतज़ार करते रहे।

भला मोये ते बिछड़े कौन मेले, ऐवें कूड़ा लोक अलांवदा ई
ऐसा कोई न मिलिया, मैं ढूँढ थक्की, जेहड़ा गयाँ नू मोड़ ल्यांवदा ई।
(वारिस शाह)

फिर एक दिन दरवाज़ा खुला। इनके बुज़ुर्ग यहाँ आकर बस गए। उसके बाद, हर दिन तो नहीं, पर हर वीरवार (जुमेरात) को ये हमारे में तेल डालते, प्रकाश करते और लौ लगती है। जब तक तेल रहता है, तब तक रोशनी रहती है। .....फिर अंधेरा।

दीवारों से लटक रही कागज़ के फूलों की लड़ियों में एक घंटी भी लगी हुई थी। पूछने पर घर वालों ने बताया कि जब हम हर जुमेरात

को दीया-बत्ती करते हैं, तो उससे पहले यह घंटी बजाते हैं।

हमारे लिए ये हैरानी की बात थी कि एक मुसलमान परिवार मंदिर की सेवा-संभाल कर रहा है। अगर यहाँ मूर्ति होती तो भी आप इसी तरह की सेवा-संभाल करते? मैंने सवाल किया।

'क्यों नहीं। ये हमारे पास उनकी अमानत है। इसकी संभाल करना हमारा पहला फर्ज़ है।'

'उधर उन्होंने तो कई मस्जिदें व मज़ार तोड़ दिये हैं, आप संभाल के बैठे हो?'- मैंने कुछ शरारती लहजे में पूछा।

'ये उनका व्यवहार बर्ताव है। हर किसी ने अपने किये का जवाब देना है।' उन्होंने बड़ी सरलता से कहा।

छत पर बने एक कमरे का उन्होंने दरवाज़ा खोला। अन्दर चटाइयाँ बिछी हुई थी। दीवारों पर सूफी बुज़ुर्गों के चित्र थे।

'जी, ये कमरा हम मेहमानों के लिए ही खोलते हैं'

इस कमरे के साथ ही सीढ़ियाँ थी। हम छत पर आगए। इस छत से मंदिर की शिखर की फोटो बड़ी आसानी से ली। शिखर के बिल्कुल ऊपरी हिस्से में चारों तरफ भगवान की चार मूर्तियाँ। कसूर के जैन मंदिर की तरह ही थीं, शिखर पर बनी ये मूर्तियाँ। मुझे लगा कि इन मूर्तियों ने अपने भीतर इस मंदिर का पूरा इतिहास छिपाया हुआ है। वो इतिहास जो इन चारों मूर्तियों ने खुद रचा है, देखा है और अपने पास संजो कर संभाला हुआ है।

इस मंदिर को आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरि जी ने सन् 1941 में बनवाया था, और यहाँ सोलहवें तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ और ऊपरी मंज़िल में भगवान पार्श्वनाथ को बिराजमान किया था। उन्होंने सिर्फ खानकाह डोगराँ में ही नहीं, बल्कि लाहौर, कसूर, रायकोट, सियालकोट, फाज़िलका, साढौरा, सामाना, रोपड़, बिनौली व बड़ौत आदि में जैन मंदिर बनवाये व मूर्तियाँ स्थापित कराईं। लड़के-लड़कियों की पढ़ाई के लिए स्कूल, कॉलेज,

गुरुकुल बनवाए। बम्बई में सन् 1954 में आप परलोक सिधारे। बंबई में ही आपकी समाधि बनी हुई है।

ये विजय वल्लभ सूरि जी बड़ौदा में जन्मे थे और 17 साल की उमर में, आत्माराम जी महाराज से तपागच्छ की मुनि-दीक्षा ली। आप के प्रचार का क्षेत्र ज्यादातर, पंजाब ही रहा। ये खानकाह डोगरा का मंदिर और उपाश्रय उन्होंने सन् 1940 में बनवाये। पाकिस्तान में ये मंदिर और स्यालकोट का मंदिर, उनकी अंतिम निशानियाँ हैं।

फिर, उसके बाद अंधेरा जैसे वो पाँचों दीये (चिराग़) बुझ गए हों,

मैंने अचानक अपने हाथों को देखा। मेरे हाथों पर उन दीयों (चिरागों) की स्याही ऐसे बिराजमान हुई थी, जैसे मैं खुद आप ही उस स्याही को उठा लाया हूँ-

ते जम गई बद्दल स्याही.....स्याही

जैन स्थानक

यहाँ पर स्थानकवासी परिवार ज़्यादा नहीं थे। फिर भी एक सुन्दर सा स्थानक साधु-साध्वी जी के लिए पर्याप्त था। दोनों समाजों में पूरा मिल वर्तन व सहयोग बना हुआ था। यह स्थानक भी अब एक घर है ओर अपनी पहचान खो चुका है।

खानक़ा डोगरा के समीप

फारुक़ाबाद का जैन श्वे. मंदिर

दो नहरों के बीच बसा शहर-फारुक़ाबाद, कस्बा खानका डोगरा के निकट ही एक अच्छा नगर है। वहाँ पर करीब 200 वर्ष पूर्व (एक यति जी की प्रेरणा से) निर्मित एक जैन श्वेताम्बर मंदिर है। मंदिर बहुत बड़ा तो नहीं है, पर शिखर व कलश सहित है। इसे एक धनी भावड़ा परिवार ने बनवाया था।

खानका डोगरा के मंदिर में रहने वाले मुस्लिम परिवर से फ़ारुक़ाबाद

के मंदिर की जानकारी चाही, तो उन्होंने बताया कि वहाँ का जैन मंदिर अच्छी सार-संभाल में है। तथा अब वहाँ एक मुसलमान व्यापारी परिवार की रिहाईश है, लेकिन वे लोग मंदिर की अच्छी साफ-सफाई रखते हैं।

जैन स्कॉलर Dr. Peter Flugel और एक मुस्लिम आर्ट-स्कॉलर मुज़फ्फर अहमद अपने निबंध "Survey of Jain Heritage In Pakistan" में लिखते हैं- 'One temple in Farooqabad is occupied by a local merchant who takes good care of it.'

फारुकाबाद लाहौर से 55 कि.मी. पश्चिम में ज़िला शेखूपुरा में है।

सियालकोट

सिल कोट उसारिया.....

जैन ग्रंथों - भगवती सूत्र, विपाक सूत्र, आवश्यक चूर्णि और आवश्यक निर्युक्ति में भगवान महावीर द्वारा पंजाब के कई क्षेत्रों में विहार का विवरण मिलता है। कहा जाता है कि चण्डकौशिक नाग को ज्ञान देकर, कनखल से भगवान महावीर उत्तर पाँचाल में पधारे। यहाँ वे स्वेतादिका में आये। जैन ग्रंथों में सियालकोट के लिए स्वेतादिका तथा साकल - ये दो नाम मिलते हैं।

महावीर के पावन चरण इस धरती पर पड़े और उससे करीब 2000 साल के बाद गुरु नानक ने इसी धरती पर तप किया। और इसी धरती पर बाबर की फौज ने इन्हीं गुरु नानक को क़ैद किया। गुरु नानक ने भगवान महावीर की अहिंसा और जीवरक्षा के संदेश को ही अपनी इस सूक्ति में दोहराया-

जो रत्त लागे कापड़ा, जामा होये पलीत
जो रत्त खावे मानसा, ताँ कउँ निरमल चीत॥

महावीर से गुरु नानक तक, दो हज़ार सालों की कहानी। इन सभी के कदमों के निशानों को समय की धूलि मिटा नहीं सकी। अपितु वक्त के साथ-साथ ये निशान और भी गहरे होते गए।

सियालकोट जाते हुए सड़क के दोनों तरफ घरों और इमारतों से ऊँचे और उदास खड़े हुए हिन्दू मंदिरों के दर्शन किये। अब ये मंदिर नहीं, घर हैं। घर के लोगों ने सबसे पहले इन मंदिरों में से मूर्तियाँ निकालीं,

फिर दीवारों पर बने चित्रों को ढ़ाया और फिर बाबरी मस्जिद का गुस्सा इन मंदिरों पर निकाला।

सियालकोट शहर

हमारे एक तरफ पुराने शहर के मिट्टी के ढ़ेर, समय की चक्की में पिसे शहर के खण्डहर, और दूसरी तरफ नई आबादी। अनेक घटनाएँ व कथाएँ इस शहर ने अपने अंदर समेटी हुई हैं। भगवान महावीर, राजा रसालू, राजा सलवान, पूर्ण भगत, उसकी विमाता लूना, सगी माँ अच्छराँ, पीर मुरादिया - कितनी कहानियाँ, कितने पात्र और अकेला सियालकोट।

पुरातन मंदिर

पंडित हीरालाल दूगड़ के अनुसार स्यालकोट में एक मंदिर भगवान पार्श्वनाथ और शाँतिनाथ का था। वि.सं. 1913 (ई. सन् 1856) में एक मुनिराज ने सूत्र अंतकृत दशांग की प्रतिलिपि यहाँ ही लिखी थी। एक अन्य प्रशस्ति विक्रम संवत् 1662 (सन् 1605), अकबर के राज्यकाल में सियालकोट में लिखी जाने का उल्लेख मिलता है।

कालान्तर में उपर्युक्त जैन मंदिर में से प्रतिमाओं का उत्थापन करके, इसे जैन स्थानक बना लिया गया।

सियालकोट का मंदिर

यहाँ के जैन मंदिर को ढूँढने के लिए हम आगे बढ़ रहे थे। मेरे दिमाग में था कि ये मंदिर नमक मंडी में था। पर वास्तव में यह कनक मंडी में स्थित था। मैंने बाज़ार पार किया तो एक बहुत ऊँचा मंदिर गली के दूसरी तरफ था। मैं बाएँ मुड़ा तो मंदिर की एक दीवार मेरे सामने थी। एक छोटे से दरवाज़े के ऊपर स्कूल का बोर्ड लगा हुआ था और स्कूल वालों ने ही बोर्ड के नीचे 'महावीर जैन श्वेताम्बर मंदिर' लिखा हुआ था।

मैंने गर्दन को ऊँचा करके देखा। मंदिर की इमारत कोई चार मंज़िला ऊँची थी। गर्दन पूरी-पूरी पीछे मुड़ गई। यहाँ से फोटो लेना मुश्किल था।

12-13 साल का एक लड़का, जो मुझे देख रहा था, उसे मैंने

कहा कि मैंने इस मंदिर की तस्वीरें बनानी हैं। क्या तुम मुझे किसी घर की छत पर ले जा सकते हो?

आओ जी, कहकर वो मेरे आगे-आगे चल पड़ा। घर में डबल रोटी बनाने का काम था। घर के व्यक्ति ने मुझे बिछी हुई दरी पर बैठा लिया। मैंने अपनी ज़रूरत बताई और छत पर जाना चाहा।

मैं छत पर पहुँचा और मंदिर के ऊपरी भाग की फोटो लेने लगा।

'क्या मैं इस मंदिर के अंदर जा सकता हूँ।'

जी, इस वक़्त तो नहीं। अभी तो स्कूल बन्द है। चौकीदार भी यहाँ नहीं होता। चाबी हैड मिस्ट्रेस के पास होती है। आप कभी स्कूल के टाइम में आओ तो फिर दिखा देंगे।'

'वैसे, ये जगह, जहाँ आप खड़े हैं, मंदिर का ही हिस्सा है। ये नीचे वाली दुकानें भी। ये बहुत बड़ा मंदिर है। कहते हैं कि सन् 1947 में जब यहाँ बहुत बड़ा कत्लेआम हुआ, तो शहर के सारे हिन्दू-सिख इस मंदिर में इकट्ठा हो गए।' यहाँ का मंदिर बहुत बुलंद, खूबसूरत और सफेद मार्बल का बना हुआ था। अन्दर बहुत खुला सहन था और सामने थीं- चारों दिशाओं की तरफ मुँह किए हुए चार मूर्तियाँ। साइडों में भी आलों व मेहराबों में मूर्तियाँ होती थीं। ऊपर की मंज़िल में भी मूर्ति स्थान बना हुआ था। सुबह शाम हर रोज़ आरती की आवाज़ें सुनाई देती थीं।

पर अब तो मंदिर का अन्दरुनी व बाहरी-सारा कुछ, लोगों के गुस्से का शिकार बन चुका है। अब यहाँ क्या है?

शाम के अंधेरे ने जगह लेना शुरू कर दी थी। मैंने भी बाहर आने की कोशिश की। सियालकोट की कितनी बातें याद आ रही थीं। यह केकेय देश की राजधानी था। महर्षि पाणिनी ने इस केकेय देश की सीमाएँ जेहलम, शाहपुर से ब्यास नदी तक बताई हैं।

सियालकोट के मंदिर को अन्दर से देखना चाहता था। पर देख नहीं सका। इसके बारे में समय-समय पर अनेक विवरणों, आलेखों और

पुस्तकों में पढ़ा है कि यह मंदिर अपने समय के बड़े जैन गुरु आचार्य विजय वल्लभ सूरि की प्रेरणा से बनना शुरू हुआ और 29.11.1946 के दिन उन गुरु जी ने इसकी प्रतिष्ठा कराई थी। बहुत ही आलीशान इस मंदिर में मेन गद्दी पर चार मूर्तियाँ थीं और ऊपरी मंजिल में चौमुखी चार मूर्तियाँ रखी गई थीं। नीचे से चौरस और ऊपर गोलाई लेता हुआ बहुत ही ऊँचा शिखर काला पड़ गया था। खंडित मूर्तियों पर भी समय का क्रूर गुस्सा झलक रहा था। निरंतरता की चक्की अनवरत चल रही थी। हमारी गाड़ी में खामोशी थी, पर मेरे दिमाग में तो इतिहास की चक्की चल रही थी।

भगवान महावीर सियालकोट में पधारे। इसी समय में वे कुरु देश में भी विचरे। जैन पटावलियों में लिखा है कि सियालकोट में महावीर जी ने अपने 15 दिनों के उपवास का पारणा किया। यहाँ ही उन्होंने अपने अनुयायी नागसेन से भिक्षा ग्रहण की। सियालकोट में ही सम्राट अशोक के बेटे कुणाल को अन्धा किया गया था, और कुणाल के पुत्र सम्प्रति ने यहाँ राज किया। सियालकोट उसकी राजधानी था, सम्प्रति ने जैन धर्म को अपना राज-धर्म बनाया। सैकड़ों मंदिर बनवाये।

हो सकता है कि सियालकोट में सबसे पहला जैन मंदिर सम्प्रति राजा के समय में ही बना हो।

सियालकोट का स्थानक

सियालकोट में स्थानकवासी मान्यता के घरों की संख्या बहुत ज़्यादा थी। एक ही मुहल्ले में थे ये घर। भाबड़ों की गली को यहाँ भाबड़खाना बुलाया जाता था। चिरकाल का पुराना भगवान पारसनाथ व शांतिनाथ का मंदिर, जो यतियों ने मध्यकाल में बनवाया था, उसकी मूर्तियों को हटा कर, इसे स्थानक में तब्दील कर दिया। फिर अन्दाज़ा 150-160 साल पहले, इसके साथ वाली जगह मिला कर, स्थानक के भवन को विशाल रूप दे दिया गया।

महिलाओं के लिए अलग से एक स्थानक था। यहाँ पर एक जैन जंज घर भी था। ये सभी अब लोगों के घर हैं। या शोरूम हैं।

दिगम्बर जैन मंदिर

सियालकोट छावनी में एक छोटा किन्तु प्रभावशाली व सुन्दर, दिगम्बर जैन मंदिर था। अब वहाँ कुछ नहीं है।

सियालकोट के भावड़े

भावड़े जैन लोग सियालकोट में बड़ी संख्या में आबाद थे। मुख्य तौर पर इनका कारोबार बाज़ार-कलाँ व गुड़मंडी में था। अच्छे पक्के घर व शानदार हवेलियों में ये लोग रहते थे। शहर के लोग भी इनको अमन-पसंद बिरादरी के तौर पर जानते थे। सराय-भावड़ान मुहल्ले में ही स्थानक व मंदिर थे।

देश का बँटवारा हुआ तो सबसे पहले दंगाइयों ने सेठ मोतीलाल भावड़ा की हवेली को पेट्रोल डालकर जलाया, तो आग ने पूरे मुहल्ले को अपनी चपेट में ले लिया। लोगों ने छावनी में कैम्प में शरणी ली और किसी तरह भारत पहुँचे।

सबके समझाने के बावजूद कुछ लोग सियालकोट में ही रहे। जैसे हकीम गोपालदास भावड़ा, लाला रामलाल और ठेकेदार रामजीदास का बेटा प्रभुदयाल।

---

1. श्री आत्माराम जी महाराज के बड़े गुरुभ्राता गणि मुक्ति विजय (मूलचंद जी महा.), का जन्म स्यालकोट में ही, ओसवाल बरड़ परिवार में हुआ था। उनकी स्मृति को सियालकोट मंदिर से जोड़ने के लिए, यहाँ के मंदिर का नाम 'श्री शाश्वत जिन मुक्ति मंदिर' रखा गया, और वहाँ पर श्री मूलचंदजी महा. की प्रतिमा भी पधारी गई थी।

2. सियालकोट मंदिर की दो तीन खंडित तीर्थंकर मूर्तियाँ, लाहौर के एक होटल में डेकोरेशन पीस के तौर पर रखी हुई हैं।

नारोवाल

चार सईयाँ रल खेडन लगियाँ.......

सनखतरा से वापस आते हुए, नारोवाल का मंदिर देखने का प्रोग्राम बना। नगर के बाहर से ही ये जैन मंदिर साफ दिखाई देता है। मस्जिदों के ऊँचे व नीचे मीनार, गुंबद और नगर की नई-पुरानी इमारतों से ऊँचा, परन्तु उदास खड़ा जैन मंदिर, शहर की एक विशिष्ट बिरादरी के अस्तित्व का इतिहास लिये हुए है।

आप यहाँ किसी मंदिर या गुरुद्वारे के बारे में पूछो, तो सबसे पहले वह आपको शक से देखेगा। फिर पूछेगा कि कहाँ से आए हो। कौन हो आदि। हम बिना पूछे ही आगे बढ़ते रहे। एक खुली जगह गाड़ी खड़ी की और मंदिर वाली गली में पहुँच गए। थोड़ा चले तो मंदिर के बिल्कुल करीब आ गए। मंदिर के सामने वाले घर के बाहर तीन लोग बैठे थे और बातें कर रहे थे।

उनको सलाम - अलेकम कहा तो वो भी अच्छे मूड में दिखे।

'जी, हम लाहौर से आए हैं, और आपका ये मंदिर देखना चाहते हैं। क्या हम इस मंदिर को अन्दर से देख सकेंगे।'

'हाँ जी, पता करते हैं। घर वालों से पूछना पड़ेगा।'

वो तीनों जन, हमें साथ लेकर, मंदिर के मेन-गेट की तरफ पहुँचे। घर का दरवाजा खटखटाया। अंदर से एक अधेड़ स्त्री निकली। हमारे साथ भी एक महिला 'अनूएम' थी, जिसे देखकर वो हमें मंदिर दिखाने को राज़ी हो गई।

मंदिर के अंदर

आज्ञा मिली तो हम अन्दर पहुँचे। अब हमारे सामने एक खुला सहन (वेहड़ा), और उसके पश्चिम में था स्वर्ण मंदिर। घर वालों ने वहाँ अपना सामान बहुत सुन्दर ढ़ंग से जोड़ा हुआ था। सुन्दर चारपाइयाँ और उन पर सफेद व रंगीन चादरें बिछी थीं। घर का बाकी सामान भी बहुत क़रीने से रखा हुआ था।

इस जगह को मंदिर व उसके शिखर के पैर कह सकते हैं। यह हमारा, इस मंदिर में पहला पड़ाव था।

साथ चल रहे तीनों लोग हमारे आगे-आगे सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। बहुत ही छोटी 25 पादानों की सीढ़ी को चढ़कर हम मंदिर की पहली मंज़िल पर पहुँचे। यह मूर्तिपूजक जैनियों का मंदिर है, इसी कारण हर मंज़िल पर मूर्तियों का स्थान बना हुआ था। हर फ़्लोर की छत पर फ्रैस्कोज बने हुए थे। यहाँ इस फ़्लोर की छत लकड़ी की थी, जिसमें फूल, पौधे, लताएँ बनी हुई थीं। ये सजावट लोकल रंगों से की हुई थी। फूलों के बीच में एक गोल शीशा लगा हुआ था। लकड़ी की छत समय के धुएँ से काली पड़ रही थी। पर अलग-अलग रंगों को साफ देखा जा सकता था।

अब हम अगले फ़्लोर पर चढ़ रहे थे। ये मंदिर की छत है। खुली छत और चारों तरफ, करीब 4 फुट ऊँची मुँडेर। छत के पश्चिम में मंदिर का शिखर व कलश अपने चौरस बेस पर कमल के फूलों से उठते हुए ऊँचे शिखर पर ध्वजा का पोल (दण्ड) लगा हुआ है। आकाश से बातें करता हुआ कलश। और शिखर के नीचे फिर मूर्तियों को रखे जाने का स्थान। जो अब स्टोर है, पर बहुत ही साफ-सुथरा। इस मूर्ति-स्थान की छत गुंबद जैसी, जिसे चारों तरफ से रंगदार धारियों से सजाया हुआ था। और इस गुंबद के मध्य में या एक रंगीन फूल।

ये सब कुछ देखकर अहसास हुआ कि घर वालों ने इस मंदिर की बहुत संभाल की हुई है। यहाँ तक कि उन्होंने गत 65-70 सालों में, इन फ्रेस्कोज को बचाने के लिए सफेदी भी नहीं कराई कि कहीं ये मिट

न जाएँ। परन्तु इन, फ्रैस्कोज के रंग ऐसे लग रहे थे, कि इन्हें बनाकर, कारीगर अभी-अभी नीचे उतरे हों।

हम इस शिखर-कलश की परिक्रमा कर रहे थे। चारों ओर बहुत सुन्दर आले बने हुए थे। इन आलों के साथ आधे कमल के फूल दीपक रखने के लिए बनाए गए थे।

नारोवाल का जैन मंदिर

श्री विजय वल्लभ सूरि जी (तब मुनि) ने ई.सन् 1897 का चौमासा नारोवाल में किया। उनके उपदेश से तब यहाँ मन्दिर बनाने की योजना बनी। मूलनायक भ. मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा जिसकी अंजनशलाका पिछले वर्ष सनखतरा में हुई थी, उनका स्थान निर्धारित करके, भूमिपूजन भी उन्हीं गुरुदेव की निश्रा में हुआ। मंदिर बनाने का काम अपनी गति से चलता रहा। और सन् 1912 तक मंदिर तैयार हो गया। श्री विजय वल्लभ सूरि जी से मुहूर्त व आज्ञा मंगवा कर 19 फरवरी 1913 वि.सं. 1969 माघ शुक्ला 13 बुधवार को भ. मुनिसुव्रत स्वामी जैन मंदिर की प्रतिष्ठा श्री स्वामीजी सुमति विजय जी व पंन्यास सुन्दरविजय जी के द्वारा सम्पन्न हुई थी।

इस मंदिर में मूर्तियाँ रखने का स्थान पहली मंज़िल पर बहुत ही सुन्दरता से बना हुआ है। घर में रहने वालों ने भी साफ-सफाई रखी हुई है। 19वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत की मूर्ति के दोनों तरफ ऋषभदेव व चन्द्रप्रभु विराजमान थे।

भावड़ों के इस मुहल्ले में स्थित मंदिर के साथ ही साधुओं के ठहरने का उपाश्रय था। लड़कियों का एक स्कूल भी समाज द्वारा स्थापित किया गया था, जोकि 1947 तक सफलता पूर्वक चलता रहा। (पाकिस्तान बनने पर नारोवाल के इसी स्कूल के कागज़ात के आधार पर सरकार ने अंबाला शहर में एक स्कूल के लिए जगह अलॉट की थी।)

नारोवाल में साधुओं का आना-जाना भी लगा रहता था। सन् 1897 (वि.सं. 1954) में आचार्य विजय वल्लभ सूरि ने यहाँ चौमासा किया। उन्होंने यहाँ ही मुनि ललित विजय को साधु दीक्षा दी।

यहाँ की एक जैन धर्मशाला 'सेठ पंजूशाह धर्मचंद की सराय' के नाम से अभी तक मशहूर है। इससे जैनी लोगों में जनसेवा व लोक भलाई की भावना का पता चलता है।

जैन स्थानक : यहाँ के जैन स्थानक में एक हॉल व दो कमरे थे साधु-साध्वी के लिए तथा सामाजिक सरोकारों की गहमा-गहमी भी लगी रहती थी।

मुहल्ला भावड़ा व लोग

मुहल्ले से बाहर, थोड़ी दूरी पर ही एक मज़ार था, जिसे धुएँ वाला पीर कहा जाता था, वहाँ घास पर बैठे कुछ लोग ताश खेल रहे थे। उनमे से एक को मैंने पूछा- 'इस मुहल्ले का नाम क्या है?'

'जी, इस मुहल्ले का नाम है उस्मानिया मुहल्ला। पहले इसको मुहल्ला भावड़ियाँ कहा जाता था, अब वो चले गए, तो नए लोगों ने इसका नाम अपने मुताबिक रख दिया। अब तो लोग इसका पुराना नाम बिल्कुल भी नहीं जानते। पर सरकारी कागज़ों में इसका नाम मुहल्ला भावड़ियाँ ही लिखा-पढ़ा जाता है।

'इसे मुहल्ला भावड़ियाँ क्यों कहते थे?'

जी, ये भावड़ों का मुहल्ला था। यहाँ के कुछ घरों का एक ही बड़ा परिवार था और इस परिवार के एक सौ से ऊपर छोटे-बड़े मैंबर थे। ये सब एक ही दादा-पड़दादे की औलाद थे। इनकी यहाँ बहुत सारी जायदादें थीं। पंजूशाह धर्मचंद्र की सराय, (जहाँ अब एज्युकेशन ऑफिस है), काला महल, ये मंदिर, उपासरा और स्कूल - ये सब इनका ही था।'

'इस मंदिर का हर रोज़ एक बोरी आटे का लंगर चलता था। ये सभी मिलकर खाते थे। बड़े शाँति-प्रिय लोग थे, कभी किसी के साथ कोई लड़ाई, कोई झगड़ा इनका नहीं था। मैं आपको इनका पूरा मुहल्ला दिखाता हूँ।'

'आप यहाँ के जद्दी रहने वाले हो?'

'जी नहीं, हम भी इण्डिया से आए हैं, फिर यहाँ बस गए। मेरा

जन्म यहाँ ही हुआ है। सरकारी स्कूल में मास्टर हूँ, वहीं ड्यूटी है मेरी।'

वो मेरे साथ गली के हरेक मकान के पास जाता और बताता कि ये मकान भी उन भावड़ों का है, ये अगला भी। एक मकान के माथे पर लिखा था-

'मकान लाला रिखीराम जैन, जागीरीमल जैन

संवत् 1981, ईस्वी सन् 1925

ये पूरा मुहल्ला एक गोल गली से, आपस में मिला हुआ था। पूरे मुहल्ले का चक्कर लगा कर हम फिर, जैन मंदिर के दरवाज़े के आगे थे। लिखा था- ''जैन श्वेताम्बर मंदिर- विद् शिखर'।

मैं इस मंदिर के बनने से करीब 150 साल बाद इसके गेट पर खड़ा था। कितनी ही ऋतुओं के गीत लेकर। हो सकता है कि सदियों पहले इस धरती पर किसी जैन तीर्थंकर के चरण पड़े हों।

मैंने नारोवाल के इस श्वेताम्बर मंदिर के उदास कलश व शिखर को एक बार फिर, अपनी पूरी हसरतों से देखा। इसकी उमर भी 150 साल हो चुकी थी।

पश्चिम के सूरज की धुँधली किरणों से मेरी आँखें बन्द होने लगीं। **ईंटों और मसाले से बना शिखर 150 साल की आयु भोग चुका है। अब यह अपनी देह को पलटने की अवस्था में है। मैंने अपने आपको देखा। उत्तर मिला कि 'नहीं, मैं देह नहीं पलट सकता। मैं ज़्यादा से ज़्यादा शरीर से मुक्त होकर परमात्मा का हिस्सा हो सकता हूँ। और मेरा शरीर मिट्टी के साथ मिट्टी होकर अपना अस्तित्व खो सकता है।'**

अस्तित्व जब पंचभूतों में विलीन हो जाता है, तब ख़ाक का शरीर भी ख़ाक में ही मिल जाता है। दार्शनिक सूफी कवि बुल्हेशाह के शब्दों में :-

माटी क़दम करेंदी यार

चार सईयाँ रल खेड़न लगियाँ

पंजवीं विच सरदार
हस्स खेड मुड़ माटी होइयाँ
पौंदियां पैर पसार
माटी क़दम करेंदी यार। - (बुल्हे शाह)

---

1. नारोवाल के श्वे. जैन समाज में उच्च शिक्षा के प्रति बहुत लगाव रहा। लाला जसवंतराय (वकील); ला. रतनलाल (वकील); ला. तिलकचंद (एम.एससी.); प्रिंसिपल ज्ञानचंद (एम.एससी.), डॉ. सुशील कुमार; श्री विजयकुमार (वकील); श्री हँसराज (बी.ए.बी.टी.) आदि कुछ नाम हैं। वर्तमान में सभी परिवार बटाला, अम्बाला लुधियाना, जालंधर, दिल्ली, चंडीगढ़ व भोपाल आदि में बसे हैं।

2. सन् 1941 में आचार्य विजयवल्लभ सूरि जी की निश्रा में एक पैदल यात्री संघ, नारोवाल से किला सोभासिंह के मंदिर के दर्शन-वन्दन के लिए गया था।

सनखतरा

मैं वी झोक राँझन दी जाणा........

'पहचान' की अपनी ही कहानी है। कभी किसी स्थान विशेष से व्यक्ति की पहचान होती है, और कभी व्यक्ति ही किसी स्थान की पहचान का प्रतीक बन जाता है। किसी के कर्त्तव्य भी उसकी पहचान बन जाते हैं।

सनखतरा जाने के लिए हम नारोवाल वाली सड़क पर थे। और सबसे पहले पहुँचे करतारपुर साहिब। करतारपुर की पहचान हैं गुरु नानक देव। इस जगह उन्होंने 18 साल खेती की, हल चलाये और रावी के पानियों में स्नान किए। यहाँ ही भाई लहना को गुरु अंगद बनाया और यहाँ ही पंजाबी बोली को गुरुमुखी लिपि मिली। मनुष्य मात्र के लिए गुरुजी का अमर वाक्य भी यहाँ ही प्रस्फुटित हुआ-

'नाम जपो, किरत करो, वंड छको'

गुरु नानक के लिए ये ही मनुष्य की पहचान है, जो उसे दूसरे पशुओं, जीवों, जानवरों से जुदा करती है।

हमारी गाड़ी सड़क पर भागी जा रही थी। सड़क पर फौजों के बनाए हुए बँकर बने हुए थे। हम भारत-पाक सीमा के पास-पास ही चल रहे थे, दोनों तरफ थे ऐसे बंकर। राजनीति, चौधराहट, राष्ट्रीय हितों की बातों में आम जनता कहीं नहीं। सुरक्षा के नाम पर मिलिट्री, सिविल, नेता लोग व अफसरों की चाँदी है। मरते तो बेचारे 'लोग' हैं।

बातों-बातों में सनखतरा पहुँच गए। शहर के पहले चौक से ही

हम दाएँ को मुड़ गए। किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ी। मंदिर खुद ही नज़र आ रहा था। आगे बढ़े तो सनखतरा का बाज़ार नज़र आ गया। रौनक वाले लम्बे बाज़ार के दाएँ मुड़ते ही मंदिर पर पहुँच गए। हमारे सामने ही था-

JAIN SHVETAMBER TEMPLE WITH SHIKHAR मंदिर के गेट में जाते ही सरकारी स्कूल था। ताला लगा हुआ। इस गेट के बाएँ तरफ अलग-अलग कई दुकानें। ये दुकानें भी मंदिर की इमारत का ही हिस्सा थीं।

दुकान पर बैठे एक युवा लड़के ने हमारे कहने से एक घर का द्वार खटखटाया। पर वहाँ बैठी औरतों ने हमें अंदर बुलाने से इंकार कर दिया।

अब ये उनका घर था, मंदिर नहीं। हम उनका घर नहीं, मंदिर देखने आए थे। पर अब इस मंदिर की पहचान बदल गई है। जब पहचान बदल जाए तो पिछला सब कुछ अतीत हो जाता है। गुज़रा हुआ अतीत और कई बार खोया हुआ अतीत।

पास में ही एक सुनार की दुकान थी। दुआ-सलाम हुए। दुकान वालों ने अच्छा स्वागत किया। हमें बैठाया। नाम पूछने पर उसने अपना नाम मुहम्मद असगर साग़र बताया। साग़र उसका तख़ल्लुस था। उसने बताया कि उसे सूफी कलाम का शौक है।

थोड़ी देर बाद मैंने बड़े आराम से पूछा कि इस मुहल्ले का नाम क्या है, क्या कहते हैं इस मुहल्ले को?

जी, इस मुहल्ले का नाम 'मुहल्ला भाबड़ियाँ' है। और इस चौक को आजकल हुसैनी चौक कहते हैं। पहले इसको मंदिर वाला चौक कहते थे।'

'क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति से मिलवा सकते हो जो इस मंदिर के बारे में और इन भावड़ों के बारे में हमें कुछ बता सके।'

साग़र ने उसी वक़्त छोटे लड़के को भेजा कि जा नंबरदार बाबा

जी को बुला ला। तब तक हम उनकी शायरी सुनते रहे।

इतने में दरम्याने क़द का, देहाती कपड़े पहने हुए, एक बुज़ुर्ग व्यक्ति दुकान में आ गया।

लो जी, नंबरदार साहिब आ गए। पूछने पर उन्होंने अपना नाम 'मियां गुलाम मुस्तफा अराईं' बताया। यह भी कि वे यहाँ कई पीढ़ियों से रहते हैं और नंबरदारी भी इतने ही अर्से से मिली हुई है।

'अच्छा, यह बताओ कि इस मंदिर का नाम क्या है?'

'जी, इस मंदिर को जैनी मंदिर भी कहते थे, और भाबड़ों का मंदिर भी कहते थे। यह सारा मुहल्ला ही भाबड़ों का मुहल्ला था। मंदिर के दरवाज़े में एक बड़ा सा टल्ल (घण्टा) लगा हुआ था, जिसे टंकार कर, बजा कर, अन्दर जाते थे। वैसे भी जब भी वे अपनी इबादत (पूजा आदि) करते थे, तो सुबह शाम इसको बजाते थे। इस मंदिर का आखिरी पुजारी साहिब सिंह जैनी था, जो इसकी देखभाल करता था। ये लोग आम करके मंदिर में सफेद कपड़े पहन कर आते थे।'

'क्या साधु भी होते थे।'

'हाँ, पर बहुत थोड़ी बार ही यहाँ आए होंगे। हमारे दादा के वक़्त में आते थे।'

'क्या आपने ये मंदिर अन्दर से देखा है?'

'हाँ जी, यह मंदिर अन्दर से बहुत बड़ा और सुन्दर था। दीवारों पर नक्काशी की गई तस्वीरें बनी हुई थीं, फूल, पौधे, साधुओं की तस्वीरें। बीच में बड़ा सा घण्टा (टल्ल)। अन्दर बहुत से कमरे थे।'

'अच्छा ये बताओ कि आपके बुजुर्गों ने भी कभी इसके बारे में कुछ बताया है?'

'हाँ जी, हमारे बुज़ुर्ग-दादा, पड़दादा हमेशा ही इस मंदिर की बातें बताया करते थे कि यहाँ एक बार बहुत भारी मेला भावड़ों का लगा था। आठ दिन चलता रहा था। बाहर के हज़ारों जैनी लोग यहाँ आए थे। बहुत

से जैन साधु भी थे। तब इस मंदिर में जैन मूर्तियाँ पधारी गई थीं। सनखतरा के हिन्दू मुसलमान सबही शामिल हुए थे। यहाँ के कई भावड़े सेठ मशहूर थे। उनका व्यापार-धंधा ज़्यादातर सराफी का या कपड़े व बरतनों आदि का था।

एक बात और याद आ गई कि इस मंदिर का ऊपर का कलश कई-कई मील से नज़र आता था। और मंदिर के पास ही साधु लोगों के ठहरने की जगह भी थी।'

'अच्छा, अब इस मंदिर में कौन लोग रहते हैं?'

'जी, दो परिवार रहते है। पहले ये खाली था। अभी कुछ साल पहले ही इन्होंने पटवारी से मिल कर, 'हिन्दू वक्फ़' वालों से यह अलॉट करा लिया है।'

शायद नंबरदार को इन परिवारों का मंदिर में आ कर रहना अच्छा नहीं लग रहा था। वो मंदिर को सिर्फ मंदिर ही देखना चाहते थे। उन्होंने तो पुश्तों से इसे एक जैनी मंदिर के रूप में ही देखा था। अब वो इस नई पहचान को हज़म नहीं कर पा रहे थे। मुझे नहीं पता कि उनकी ये मंदिर वाली पहचान कब तक चल पायेगी।

जैन ग्रंथों के विवरणों में कहीं पढ़ा था कि पिछली सदी में हुए, जैन इतिहास के विद्वान एक जैन साधु-आचार्य विजयेन्द्र विजय का जन्म सनखतरा में ही हुआ था। तब उनके साथी साधु श्री विद्या विजयजी इतिहास की खोज में सूबा सिंध में भी गए थे। जैन यति गुरदास ऋषि ने वि.1871 (ई.सन् 1714) में यहाँ पन्नवणा सूत्र की प्रतिलिपि लिखी थी।

सनखतरा - नंबरदार का शहर; श्वेताम्बर मंदिर के पुजारी साहिब सिंह जैनी और इण्डियन फिल्म एक्टर राजेन्द्र कुमार की जन्म भूमि।

सनखतरा शहर को देखते हुए बाहर को जा रहे थे। मैंने आखिरी बार मुड़कर, उस जगह से, मंदिर के कलश को देखा। ऐसे लगा कि वो कह रहा हो.......मैं शर्मिन्दा हूँ, आपके लिए अपना द्वार नहीं खोल सका। आप मेरे मेहमान हो, पर आज मैं मजबूर हूँ। मैं चल नहीं सकता, नहीं

तो आपके साथ चल पड़ता! फिर वो खुद ही कहता है कि अगर चल सकने के योग्य होता तो 1947 में उन्हीं के साथ न चला जाता।

मुझे ऐसे लगा कि वो वाक़ई मेरे साथ जाना चाह रहा हो। मैं जब से उसे देखने लगा हूँ, वो मेरे साथ-साथ चला आ रहा है, चुपचाप।

मुझे लगा कि शायद वो अभी रो पड़ेगा, और कह उठेगा-

'मैं भी झोक राँझन दी जाणा, नाल मेरे कोई चल्ले'

सनखतरा का जैन स्थानक

यहाँ की भावड़ों की गली में ही स्थानक का भवन है। बहुत बड़ा तो नहीं, पर यहाँ की ज़रूरत के लिये ठीक है। साधु-सतियाँ भी आते रहते थे। आजकल ये एक घर का रूप ले चुका है।

---

1. सनखतरा के मंदिर की प्रतिष्ठा श्री आत्माराम जी महाराज ने अप्रेल 1896 ई. में कराई थी। मूलनायक श्री धर्मनाथ; दाईं तरफ ऋषभदेव व पार्श्वनाथ तथा बाईं तरफ सुविधिनाथ व चन्द्रप्रभु - कुल पाँच प्रतिमा वेदी में विराजमान थीं। सामने की तरफ शाँतिनाथ, नेमिनाथ व अजितनाथ थे। देश के बँटवारे के बाद इन मूर्तियों का क्या हुआ, कुछ पता नहीं।

2. सनखतरा के ला. अमीचंद जैन खंडेलवाल, पुराने ग्रेजुएट थे। वहाँ की नगरपालिका के और काँग्रेस कमेटी के प्रधान भी रहे थे।

3. पुराने संदर्भों में लाला गोपीनाथ, अनंतराम व प्रेमचंद - श्रावकों के नाम मिलते हैं।

पसरुर

.......वस्सदा रह्वे पसरुर मेरा

किताबों की दुनिया एक अजीब सी दुनिया है। मेरा सारा कमरा किताबों से भरा हुआ है। इनमें से कई किताबें मेरे से शरमाती हैं और कई से मैं शरमाता हूँ। कई मेरे से पल्लू करती हैं, पर कई इशारों से बुलाती हैं।

मेरी बड़ी समस्या है कि कौनसी बात या कौनसा अक्षर मेरे मन की सही चित्रकारी कर सकेगा। 'पीर बाबा सरकार खज़ाँची' का किस्सा शुरू करूँ या पसरुर में मुनि खज़ानचंद की समाधि के बारे में जानकारी या कि उनके मुस्लिम पीर कहलाने की बात करूँ। कोई सिरा हाथ नहीं आ रहा।

लाहौर से नारोवाल जाने वाली सड़क से हम पसरुर पहुँचने वाले थे।

सियालकोट ज़िले की तहसील पसरुर के उत्तर में सियालकोट, पश्चिम में गुजराँवाला और पूर्व में नारोवाल व किला सोभासिंह के शहर हैं।

बाहरी सड़क पर ही पंजाबी शायर हयात पसरुरी के बेटे व कवि हबीब साहिब हमारा इंतजार कर रहे थे। उनके साथ शहर में पहुँचे और चाय आदि के बाद, मुहल्ला भावड़ाँ की खोज में चल पड़े।

बाज़ार से आगे, दाएँ हाथ की करीब 100 मीटर लम्बी गली, आगे जाकर दो हिस्सो में बँट गई। सामने दीवार पर 'मोदी खोखराँ' लिखा था। हम बाएँ मुड़े।

यहाँ दरवाज़ा-भावड़ियाँ होता था। मैंने दरवाज़े वाली जगह से भावड़ाँ मुहल्ले की गली के फोटो उतारे।

हमारे सामने एक सुन्दर सा मकान था। हबीब उसमें जाने लगा और मुझे भी अपने साथ अन्दर बुला लिया।

दरवाज़े के साथ कुछ नीची छत का बरामदा था। दीवार के साथ पानी की टूँटियाँ, जहाँ आने वाले हाथ मुँह धोते और वज़ू करते हैं। इसके साथ ही कबर पर हरे रंग की चादर, जिस पर पवित्र क़ुरान के वाक्य लिखे हुए थे। लोहे के जंगले के सिरहाने लिखा था-

'हज़रत बाबा खज़ाँची सरकार'

क़बर पर छत नहीं थी, पर दीवारों से लगता था कि पहले यहाँ छत थी। हबीब ने पूरी विनम्रता व विधि से दुआ माँगी।

'इनके असली नाम का किसी को पता नहीं। पर यह सय्यद मियां बरखुरदार जो पसरुर के पास ही लड़ाई में शहीद हुए, मुहल्ला भावड़ियाँ के साथ उनका मज़ार है। भावड़े लोगों ने भी बड़े अदब के साथ इसे कायम रखा। अब इस मुहल्ले को 'मुहल्ला इमाम-साहिब कहते हैं।'

हबीब अपने बुज़ुर्गों व नगर-वासियों से सुनी बातें सुना रहा था। उनके बताने में एक श्रद्धा, एक सच्ची मुहब्बत और एक सच्चे मुसलमान वाला प्यार था।

'ग़ौर से देखें तो काबे को सनमखाना कहें'

मज़ार से बाहर आए तो हबीब ने कहना शुरू किया कि उनके बुज़ुर्ग बताते हैं कि इस घर में साधु ठहरते थे और आज भी इसे साधुओं का डेरा ही कहा जाता है। वो सामने वाला घर उत्तमचन्द भावड़े का है जो इधर के जाने माने व्यक्ति थे और कमेटी के मेम्बर भी थे।

और यह जैन साधुओं का नया डेरा है। मुसलमान तो इसको जैनी-मंदिर कहते हैं। जैनसभा भी यही थी। मुहल्ला भावड़ां बड़ा अमीर मुहल्ला लगा। सभी मकान चार या पाँच मंज़िल के थे।

मैं सोच रहा था कि वक्त के साथ क्या-क्या नहीं बदलता? सैकड़ों जैन व बुद्ध मंदिर अब हिन्दू मंदिर होकर पूजे जाते हैं और अनेक मंदिर अब मस्जिद बने हुए हैं।

इसी तरह कल के जैन साधु खज़ानचंद आज हज़रत बाबा खज़ांची सरकार हैं। 70 साल पहले ये एक जैनी महात्मा की समाधि थी और आज ये पीर बाबा की क़बर हो गई। कल इसे जैनी पूजते थे और आज मुसलमान इसके श्रद्धालु हैं। कल हिन्दुस्तान, आज पाकिस्तान। उनका खज़ानचंद, हमारा बाबा खज़ाँची सरकार।

ना मैं पाकां विच पलीतां
ना मैं विच कुफर दियां रीतां
की जाणां मैं कौन वे बुल्हेया
की जाणां मैं कौन। ....(बुल्हे शाह)

मुनि श्री खज़ानचंद जी

मुनि खज़ानचंद, एक सुखी परिवार में पिता-मोहनशाह और माता गणेशी बाई के घर ईस्वी 1883 में जन्मे। छोटी उमर में ही वैराग्य का रंग चढ़ गया और ईस्वी 1903 में गुजराँवाला में स्थानकवासी पूजश्री (बाद में प्रधानाचार्य) श्री आत्माराम से साधुदीक्षा, ग्रहण कर ली। अपनी प्रखर बुद्धि से जैन आगम-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके, धर्मप्रचार व समाजसुधार के कामों में लग गए। पुरानी रस्मों व रूढ़ियों को हटाया। लड़कियों को पढ़ाने पर ज़ोर दिया और स्कूल खुलवाया। साधुओं के ठहरने के लिए स्थानक-भवन बनवाने का उपदेश दिया।

ईस्वी सन् 1945 में आप पसरुर में स्वर्ग सिधारे जहाँ मुहल्ला भावड़ाँ में ही आपकी समाधि बनाई गई।

बाबा धर्मदास

मुगलकाल में हुए दूगड़ गोत्र के बाबा धर्मदास, अपने समय के दानी और ज़रूरतमंदों की सहायता करने वाले हुए हैं। लोग आपको शाहजी के नाम से जानते थे।

एक बार अपने खेत में अकेले काम कर रहे थे कि कुछ डाकू आ गए। मुक़ाबले में डाकुओं ने आपको कत्ल कर दिया। मृत देह वहीं पड़ी रही। रात को माता के सुपने में आकर उसे बताया कि मेरा कत्ल हो चुका है। मेरा संस्कार खेत में ही आम के वृक्ष के नीचे करना। संस्कार करके पीछे नहीं देखना तथा वहीं पर मेरी समाधि बनाना। उसी वृक्ष के आम का फल मेरी पत्नी को खिलाना। उसके पेट में मेरी संतान है। उनकी समाधि भी पसरुर में बनी। ये बाबा धर्मदास पसरुर निवासी दूगड़ (ओसवाल) गोत्र वालों के उपकारी माने जाते हैं।

देराउर-या-किला द्राविड़

दादा जिनकुशल सूरि जी का समाधि स्थल

सब तों खतरनाक ओह दिशा हुंदी ए
जिहदे विच्च आत्मा दा सूरज डुब्ब जावे.... (पाश)

दादागुरु जिनकुशल सूरि की स्वर्गवास-स्थली देराउर की ओर बढ़ रहे थे। सफर लम्बा था।

रास्ते में पहले पहुँचे - 'यज़मान मण्डी'। वहाँ से मिलेगी द्राविड़ किले की सड़क। दूर-दूर तक पसरे वीरानों में छोटी-छोटी झाड़ियाँ शायद मिट्टी में सोई पड़ी थीं। यही इस रेगिस्तान-रोही का सुहाग है। जहाँ तक नज़र जाती, रोही के रंग नज़र आते थे।

बालू रेत थलां दी तपदी
जीवे जौं भुनण भुनियारे।

आगे थी रियास्त बहावलपुर। अब इसके तीन ज़िले हैं- बहावलपुर, बहावलनगर और रहीमयार खाँ। किसी समय टैक्सला राज्य की सीमाएँ बहावलपुर रियासत तक थीं। टैक्सला की कई यादगारें यहाँ मौजूद हैं- जैसे रहीमयार खाँ में - पत्तन मुनारा।

पत्तन मुनारा एक पुरातन स्थान है। यहाँ के राजा ने सिकन्दर से युद्ध किया था और 325 ई.पू. में मारा गया था। यहाँ पर दूसरी सदी का एक पूजा स्थान मिला था, जो इस इलाके में सबसे बेहतर हालत में था। इसे ही पत्तन मुनारा कहते हैं।

रास्ते में 'क़िला फोलड़ा' आया। इस क़िले की भी अपनी कहानी

है। इस क़िले से भी जैन मूर्तियाँ मिली हैं। यहाँ लम्बे समय तक जैनी लोग बसते रहे। जैन साधु भी आते-जाते रहे।

सामने दिखाई दे रहा था किला द्राविड़ (देराउर)। रेत के समुद्र में लाल ईंटों के बुर्ज, शायद हमें बुला रहे थे। थक चुके थे तो क़िले की दीवार का सहारा लेकर रुके।

देराउर

धीरे-धीरे टूट रही दीवारें, मौसम की मार से जर्जर होती हुई ईंटें थी वहाँ। दीवारों, दरवाज़ों को लाँघते हुए अन्दर पहुँच गए। यह है किला द्राविड़ जिसे अब आम लोग किला दिलावर कहने लग गए हैं। इसका पुराना नाम था- देराउर। किले की तारीख नज़र नहीं आई थी।

तभी लगा कि मेरे पैरों के नीचे की ईंटें खिलखिला कर हँस पड़ीं और बोलीं-

'हमारे पास है इस क़िले की हक़ीकत। हमारे शरीर पर अभी तक उन हाथों के निशान हैं, जो इसे बना कर गये हैं। इस किले को राजा देवसिद्ध ने बनवाया। राजा का दूसरा नाम देव रावल भी था। पहले इस किले का नाम देव रावल ही था। फिर देराउर हो गया।'

अभी तक मुझे पता नहीं था कि मैं श्री जिन कुशल सूरि जी की समाधि देख सकूँगा या नहीं? वह समाधि कायम है या नहीं? समाधि किले के अन्दर है या बाहर? कुछ भी पता नहीं था, मेरे मित्र नदीम खादर ने कुछ साल पहले एक फोटो दिखाई थी इस समाधि की।

सोच रहा था कि समाधि नज़र आ जाए, या उसके निशान ही मिल जायें। हम किले की एक मोटी दीवार पर चल रहे थे। दक्षिण दिशा में एक छोटी सी इमारत नज़र आई। यही तो है वह समाधि जिसकी फोटो मुझे मेरे मित्र ने दिखाई थी। अब मुझे वहाँ तक पहुँचने की जल्दी थी। कच्चे मकानों के बीच में से होकर हम समाधि तक पहुँचे।

मैंने श्रीजिन कुशल सूरि जी की समाधि के चौखट पर हाथ रखा।

अन्दर अंधेरा था। चार फुट की गोलाई वाले इस गुँबद में प्रवेश किया। अन्धेरा था वहाँ, दीवारों का पलस्तर उखड़ चुका था। थोड़ी रोशनी हुई तो मुझे लगा कि यहाँ जैन साधु तपस्या कर रहे हों। अपने ज्ञान-ध्यान में लीन हों।

कच्चे घरों में रहने वाले कुछ बच्चे वहाँ आ गए। उन्हें लग रहा था कि आज तक आने वाले सभी लोग किले की ही तस्वीरें लेते हैं। समाधि पर आज ये पहली बार आने वाले कौन हो सकते हैं।

उनमें से एक ने कहा कि ये हमारा मंदिर है।

'आप का मंदिर?'

'हाँ, यहाँ हम पूजा करते हैं।'

'आप हिन्दू हो?'

'हाँ, हम भील हैं, ये द्राविड़ हैं।' यह हमारे भगवान का मंदिर है।'

हमारे लिए यह हैरानी की बात थी। हिन्दू, जैनी, भील, द्राविड़ तथा कोली- पंजाब के पुरातन कबीले। इस धरती की सन्तानें। मरोट से लेकर नगर पारकर तक आज भी ये लोग पूरी दृढ़ता से जी रहे हैं।

बच्चों की इन बातों को सुनकर मैं एक बार फिर समाधि के अन्दर जाने लगा। बरामदे की दीवार पर सिंदूरी रंग से एक वृक्ष का चित्र बना हुआ था। समाधि की तरफ धुएँ की लकीरें, जैसे किसी ने दीया जलाया हो। फर्श पर भी तेल के निशान, जली हुई अगरबत्तियों की राख थी।

यह आचार्य जिनकुशल सूरि जी की समाधि है। इन्होंने दिल्ली के बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक को अपनी योग्यता से प्रभावित किया था। इनका जन्म सन् 1280 में हुआ। सिंध और पश्चिमी पाकिस्तान के क्षेत्र इनके धर्मप्रचार के केन्द्र रहे। टैक्सला के निकट उच्चानगर और क्यासपुर में भी विचरे। आपको तीसरे दादागुरु के तौर पर जाना जाता है। भारत के अनेक मंदिरों - या दादावाड़ियों में इनकी पूजा होती है।

इन दादागुरु जी ने इसी द्रावड़ किले के बाहर सन् 1327 में शरीर का त्याग किया। यहाँ ही संस्कार हुआ और समाधि बनी। करीब 4X4 फुट का गोल आकार का गुंबद, और इतना ही बड़ा बरामदा। इधर रहने वाले भील, कोल और हिन्दुओं का पूजा स्थान। इन्हीं में से कोई यहाँ आकर दीपक जला जाता है।

कहते हैं कि यह इलाका सदा से ही रेगिस्तान नहीं था। यहाँ नदी बहती थी जिसे सरस्वती या हाकड़ा कहते थे। बौद्ध भिक्षुओं ने यहाँ स्तूप बनाए। जैन साधुओं ने धर्म प्रचार किया। बादशाहों ने किले बनाए। और इन्हीं किलों की दीवार के पास आचार्य जिन कुशल सूरि, महान् धर्मगुरु, ने विश्राम किया। विश्राम........अनन्त कालीन विश्राम.....।

इस क्षेत्र का लोकगीत है -

हढ़ आवेगा हाकड़ा अन्दर
हाकड़ा मुड़ बहेगा
फिर इसके नदियाँ नाले
पानी संग भर जावन गे
फेर बहेगा हाकड़ा साडा
फेर बहेगा।

श्री अगरचंद नाहटा के अनुसार संवत् 1657 (सन् 1600) माघ सुदी 10 को मुलतान में गुरु चरण प्रतिष्ठित हुए। लाहनूर (लाहौर) में दादाजी का पंजाबीभाषी सात पदों के गीत की रचना हुई थी। जंडलौ नामक स्थान में जिनकुशल सूरि की पादुकाएँ थीं। यति सुखलाभ द्वारा रचित एक गीत में हाजी खान की दादावाड़ी का उल्लेख है। जिनचंद्रसूरि के शिष्य समुद्रसूरि रचित पदों में देराउर में कई नगरों के यात्री आने का उल्लेख है।

देराउर नगर - इतिहास के पन्नों में

पाकिस्तान की रियासत बहावलपुर में स्थित देराउर नगर (द्रावड़ किला), अपने समय में अत्यंत प्रसिद्धि प्राप्त और पुरातन स्थान था।

एक शक्तिशाली किले के भीतर और बाहर बसे हुए इस शहर के साथ-साथ पुरातन सरस्वती नदी बहती थी, जो इस क्षेत्र में हाकड़ा नदी कहलाती थी।

हड़प्पा और मोहिनजोडारो का समय ईसा से 2000-2500 वर्ष पूर्व का माना गया है। लगभग इसी समय में देराउर में भी एक विकसित सभ्यता का प्रसार था।

दैनिक अखबार 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' (8.2.2012) में देराउर का एक समाचार विस्तार से छपा है। इसके अनुसार :-

'पाकिस्तान के पुरातत्त्व विभाग ने सिंधु सभ्यता के काल की 'सील', जो 2000-2500 ई. पू. की है, वहाँ के चोलिस्तान क्षेत्र की खुदाई में से प्राप्त की है। चौरस सील पर बड़े सींगों वाले पहाड़ी-बकरे (या बैल) को अंकित (एन्ग्रेव) करके बनाया गया है। इसके साथ पाँच अन्य चित्र व रेखाचित्र हैं। बकरे (या बैल) के शारीरिक चिह्न बहुत साफ हैं।

यह सील देरावर किले के पास वत्तूवाला नामक स्थान से पौराणिक हाकड़ा नदी के तल से मिली है। सिन्धु घाटी से मिली सीलों से मिलती जुलती इस सील ने देरावर किले के इतिहास को भी सिंधु-काल से जोड़ दिया है। ......यानि आज से 5000 साल पूर्व तक।'

देराउर समाधि की हक़ीक़त

भगवान महावीर की पट्ट परम्परा में 19 वें पट्टधर (लघुशांति स्तव के रचयिता) श्री मानदेव सूरि ने तक्षशिला, उच्चनगर और देराउर आदि नगरों में बहुत क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर ओसवाल बनाया।

श्री जिनकुशल सूरि सिंध में उच्चनगर, देराउर, क्यासपुर, बहरामपुर, मलिकपुर आदि अनेक नगरों में विचरे। नौ साधुओं और साध्वियों को दीक्षाएँ दीं। क्यासपुर और रेणुकोट में जैन मंदिरों की प्रतिष्ठाएँ कराईं। आप 4-5 साल सिंध में विचरे। आपका स्वर्गवास देरावर (सिंध) में सं. 1389 फाल्गुण वदि 5 को हुआ। आपके अग्निसंस्कार के स्थान पर एक स्तूप का निर्माण किया गया।

वि.सं. 1649 में चौथे दादागुरु जिनचंद्र सूरि ने लाहौर में सम्राट अकबर से भेंट की और चातुर्मास करके बादशाह से फरमान प्राप्त किया और वि.सं. 1652 में पंजाब से लौटते हुए पंचनद की साधना करने के लिए देराउल नगर में गए। वहाँ जिनकुशल सूरि के चरणबिम्ब (पगला) के दर्शन किए।

वि.सं. 1672 में जैन यति जयनिधान (चेला रामचन्द्र) ने देराउर में एक ग्रंथ 'कुर्मापुत्र चौपाई' की रचना की थी।

श्री जिनकुशल सूरिजी के शिष्य और जिनचंद्र सूरि के गुरु जिनमाणिक्य सूरि, देराउर में जिनकुशल सूरि जी की समाधि के दर्शन करने आए थे।

जैन इतिहास के शोधकर्त्ता Dr. Peter Flugel and Muzaffar Ahmed write:-

Jinkushal Suri toured the small towns and villages of the Indus valley, south of Multan for fives years until his death in Derawer where

a stupa (samadhi) was erected over his ashes and a dadabari surrounding it. The samadhi was regarded as a miracle working shrine, not only by Jains, and became the centre of a network of further Dadabaries dedicated to Jinkusal suri, in Hala, Dera Ghazi Khan, Lahore and Narowel etc.'

ग्रंथ- 'खरतरगच्छ का वृद्ध इतिहास' लेखक-महामहोपाध्याय विनय सागर जी, संयोजन-भँवरलाल नाहटा, (Published by प्राकृत भारती, जयपुर, 2004-05, अध्याय 5, पेज-197 के अनुसार- "After Partition, relics, sand and stone were brought from the site to the Deraur Dadabari near Jaipur (i.e. Malpura)

कुछ लोगों ने मुझे (इक़बाल क़ैसर को) कहलवाया है कि देराउर (द्रावड़किला) में किले की दीवार के साथ श्री जिनकुशल सूरि की समाधि नहीं है। उनका अंतिम संस्कार एक खुले स्थान पर हुआ था। इत्यादि। मैं इतिहास का एक खोजी हूँ। एक मुसलमान खोजकार, खोज करना मेरा धर्म है। जो अनेक इतिहासकारों, पुराने ग्रंथों, किताबों और सरकारी गज़ेटियरों में लिखा है, मैंने वही पढ़ा है कि जिनकुशल सूरि जी की समाधि द्राविड़ किले की दीवार के साथ है।

यह ऐसा प्रश्न है जिसका जवाब मेरे पास नहीं है, सिवाये किताबों के गूँगे शब्दों के, जो सब कुछ कहकर भी खामोश रहते हैं।

रहीमयार खाँ (बहावलपुर स्टेट)

ब्रिटिशकाल में मुस्लिम नवाबों द्वारा शासित बहावलपुर स्टेट के वर्तमान में तीन ज़िले बन गए हैं- (1) बहावलपुर (2) बहावल नगर (3) रहीमयार खाँ। कहा जा सकता है कि रियासत के दक्षिण-पश्चिमी छोर का नाम है- ज़िला रहीमयार खाँ और ज़िले की राजधानी है इसी नाम का यह शहर।

लाहौर से मुलतान होकर बहावलपुर पहुँचने का रास्ता बहुत लम्बा था। रेत के बड़े टीलों-टिब्बों को पार करते हुए, हमने सतलुज और हाकड़ा (सरस्वती) नदी को पार किया। पुल, पत्तन, लोग, भेड़ें, झाड़ियाँ-ये सभी इस इलाके की सौग़ात हैं।

मुलतान से आगे बढ़कर हम मुज़फ्फरगढ़ में अपने मित्र डॉ. खलील फरीदी के मेहमान बने। खलील फरीदी बहुत पढ़े-लिखे और सूफी विचारों के हैं। वो धर्म को 'मौलवी के धर्म' की तरह डंडे या ज़ोर ज़बरदस्ती से लागू नहीं करते, बल्कि प्यार के शीशे में उतारते हैं।

कम्म कढ्ढ लैंदे नाल हीलियाँ दे
रासां चूस लैंदे मिट्ठी जीभ वाले।

गाड़ी रेत के टीलों में से भागी जा रही थी। कहीं-कहीं छोटी बस्तियों में कुछ झोपड़ियाँ नज़र आ जाती थीं।

खानपुर से होते हुए हम रहीमयारखाँ आ गए। इस शहर के पश्चिम में पंजाब की पाँचों नदियों के साथ सिंधु नदी के संगम का बहाव है। दक्षिण-पश्चिम में सूबा सिंध का सक्खर शहर और पूर्व व दक्षिण में इंडिया के जैसलमेर व बीकानेर की सीमाएँ बिल्कुल निकट ही हैं।

रहीमयारखाँ एक पुराना नगर है। मुस्लिम दरगाहों व मस्जिदों के साथ ही पुराने हिन्दू मंदिरों के चिह्न भी मिल जाते हैं। बाज़ार, दुकानें भी खूब हैं। गाड़ी से उतर कर चारों तरफ नज़र दौड़ाई। लड़कों का स्कूल मेरे सामने था।

यहाँ कोई पुराना जैन मंदिर रहा होगा, हमें कुछ भी पता नहीं चल रहा था।

इस क्षेत्र के विख्यात इतिहासज्ञ सलीम शहज़ादा ने एक बार मुझे बताया था कि बहावलपुर स्टेट में मरोट का किला और रहीमयारखाँ का मीनार व मंदिर, ये ईसा मसीह से भी पहले के हैं। यह भी बताया कि यहाँ से पत्थरों पर बनी देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

पुराने जैन ग्रंथों के अनुसार 2500 साल पहले भगवान महावीर ने सिंधु-सौवीर प्रदेश के नगर 'वीतभय पत्तन' (वर्तमान भेरा-पाक.) के राजा उदायन को प्रतिबोध देने के लिए, एक लम्बा विहार किया था। मार्ग की रेतीली भूमि में कोसों तक बस्ती का नामोनिशान न था। राजस्थान के कई भाग, सिंध, जैसलमेर तथा मुलतान आदि के क्षेत्रों के होकर उनका ये विहार था। तब इस इलाक़े में भी भगवान महावीर के चरण पड़े होंगे।

रहीमयारखाँ शहर के जैन मंदिर में हम दाखिल हो रहे थे। मामूली लाल रंग के सैंड-स्टोन से बना यह मंदिर जगह-जगह से टूट जाने के बाद भी पूरी शान से खड़ा था। ज़्यादा हिस्से टूट चुके हैं। कुछ दीवारें व परकोटा बाकी है, जिन पर जैन मंदिरों की शिल्पकारी झलकती है।

रहीमयार खाँ का मीनार

रियासत बहावलपुर के इलाके में पुरातन टैक्सिला (तक्षशिला) राज्य की कई निशानियाँ व यादगारें आज भी मौजूद हैं- उन में से एक है- रहीमयार खाँ में पतन-मीनार।

कहते हैं कि एक समय यहाँ कोई शहर आबाद था, जिसे हड़प्पा-मोहिनजोदड़ो के समय का कहा जाता है। मैंने अपनी बात को पक्का करने के लिए शहज़ादा सलीम से फोन मिलाया। उन्होंने इतिहास 'बहावलपुर की तारीख़' लिखी है। और वो इस इलाके के बारे में बहुत कुछ जानते हैं। मैंने उनको पतन-मीनार के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा-

पतन मीनारा, शहर रहीमयारखाँ से कोई 6 मील पर एक प्राचीन शहर है जिसे शाहमयुसी गणेश की राजधानी माना जाता है। सिकंदर से पहले का है यह शहर। शाहमयोसी गणेश ने 325 ई. पूर्व सिकंदर से विद्रोह किया और मारा गया।

टैक्सिला से भी इस स्थान का संबंध रहा था। यहाँ से ईस्वी दूसरी सदी का एक पूजास्थान मिला है, जो इस पूरे इलाके में सबसे प्राचीन और अभी तक अच्छी हालत में है। इसे पतन-मीनारा कहा जाता है।

रहीमयारखाँ का यह चौरस मीनार एक सुन्दर व ऊँचे चबूतरे की तरह के बेस पर खड़ा है। चारों दिशाओं में बड़े द्वार होने से यह सभी ओर खुलता है। वर्तमान में इसकी दो मंज़िलें ही मौजूद हैं। दो-अढ़ाई हज़ार के अपने अस्तित्व में, इसने अपनी ऊपरी मंज़िलें खो दी हैं।

जैन मान्यता में चैत्य स्तम्भ की परिभाषा में कहा गया है कि-

''यह चौकोर स्तम्भ होता है जिसकी चारों दिशाओं में तीर्थंकर

प्रतिमाएँ होती हैं, और स्तम्भ के शिखर पर लघुशिखा होती है।'

गूगल ने इसको बौद्ध धर्म का 2500 साल प्राचीन मीनार बताया है।

इसके निकट ही 'अहमदपुर शर्किया' गाँव के पास सोही-विहार में टैक्सिला के समय का एक बुद्ध-स्तूप है जो अति जीर्णदशा में है। गाँव वालों ने इसकी ईंटें तक बेच दी है। कुछ साल पहले तक यहाँ मिट्टी का एक बुर्ज विद्यमान था।

पतन-मीनारा.......बौद्ध पूजा स्थान........सोही विहार......बौद्ध स्तूप.......बाहुबली का टैक्सिला राज्य........बाहुबली के नाम पर बहावलपुर.....।

इतिहास खामोश है। पर मीनार की आवाज़ें सुनी जा सकती हैं कि 2500 साल पहले इस धरती को महावीर के कदमों ने पवित्र किया था।

इस क्षेत्र के कवि ने की 'महावीर से मुलाकात'

पाकिस्तान के बहावलपुर क्षेत्र में एक कवि है- 'अशुलाल फकीर', उसका जन्म एक मुस्लिम परिवार में हुआ। पर अब वह बन गया है एक विख्यात कवि-अशुलाल फकीर के नाम से।

उसने एक कविता 'महावीर नाल मुलाकात' - अपनी ठेठ बहावलपुरी बोली में लिखी है-

'लैहँदी होइयाँ
जंगल दे औं पार रखेन्दा
देहँदी होइयाँ
राह विच नाग डू मूँहां आया
असाँ न मारिया
तली हेठुं ठूँहाँ आया
असाँ न मारिया
औखी कोई सरीर चा नेती
आप आ लन्घूँ
डेंभू लड़िया सी न कीती
मोयाँ वाँगू।''

मरोट (या मरुकोट)

उच्चा कोट मरोट दा.......

रेत के बड़े-बड़े टिब्बों-टीलों को पार करते हुए हम मरोट की तरफ बढ़ रहे थे। प्राचीन सरस्वती जो यहाँ हाकड़ा नदी के नाम से जानी जाती है, के बारे में इधर एक कहानी या कथा बहुत प्रचलित है जिसके बारे में बड़े बुज़ुर्गों का कहना है कि यह उन्होंने अपने दादा-पड़दादा से सुनी थी, और उन्होंने भी अपने बड़ों से इसे सुना था।

कहानी में छिपा इतिहास

एक बुढ़िया भट्टी में दाने भून रही थी, तभी एक कव्वे ने एक दाना उठाया और जंगल में जा बैठा। दाना-पाने के लिए बुढ़िया जंगल के पास गई कि तू इस वृक्ष की शाखाओं को ज़ोर-ज़ोर से हिला दे। जंगल के ना मानने पर तरखान से यह जंगल-वृक्ष काटने को कहा। उसने भी नहीं माना तो कोतवाल, फिर राजा और अन्त में रानी के पास पहुँची कि वह राजा को कहे। परन्तु रानी ने भी बात न सुनी। आखिर में वह पहुँची नदी के पास और खूब रो रोकर अपनी फरियाद की, कि वह रानी के महल को गिरा दे।

नदी को दया आ गई और वह चली रानी के महल की ओर। रानी डरी तो उसने राजा को कहा। आगे राजा ने कोतवाल, फिर तरखान और जंगल। - दाना लेकर भागने वाला कव्वा डरा, और बुढ़िया को अनाज का दाना वापस मिला।

तब बच्चों ने पूछा कि वह नदी कौन सी थी? उत्तर मिला कि वह

'हाकड़ा नदी' का विहीत था, जिसे कोई घग्घर और कोई सरस्वती कहता है। फिर यह नदी रेत के समुद्र में डूब गई और इसके सूखने से रानी का महल भी उजड़ गया। अब उस महल के खण्डहर हैं। मलबे के ढ़ेर हैं। उस स्थान को **मरोट** कहते हैं।

विख्यात स्कॉलर राल्फ टी.एच. ग्रीब्थ (RALPH T.H. GRIBTH) द्वारा ऋग्वेद की ऋचाओं के अनुवाद के अनुसार -

कहते हैं कि एक दिन ब्रह्माजी का मन विचलित व चलायमान हुआ तो वे अपनी पुत्री सरस्वती के पीछे भागे। सरस्वती ने देखा कि ब्रह्मा जी नज़दीक पहुँच रहे हैं, और उसके पास कोई अन्य चारा न था, तो वो धरती माँ की कूख में समा गई। जब सरस्वती भाग रही थी तो उसके पैरों में से पानी का चश्मा फूट पड़ा, जो सरस्वती, घग्घर या हाकड़ा कहलाया। धरती के अन्दर समा जाना उसकी श्रेष्ठता है।

मरोट-किला

अब हम मरोट किले के समीप पहुँच रहे थे। चिकनी मिट्टी, टूटी ईंटें, रोड़े, पत्थर, रेतीली ईंटों से बनी कुछ दीवारों के अवशेष-ये सब बता रहे थे कि कभी ये मरोट के किले का मुख्यद्वार रहा होगा।

कहते हैं कि यहाँ एक शिला लगी होती थी, जिस पर लिखा था-

"संवत् 1548 पोह सुदि 2, मरोट पाथा मलक जाम सोमराकोट पक्की खील कराई।"

हमारे सामने एक हरे रंग का गुँबद था। मैं इस के अन्दर जाना चाहता था। सामने का सहन पार करके ही आप गुँबद के अन्दर जा सकते हैं।

इस क्षेत्र के विख्यात इतिहासज्ञ सलीम शाहज़ादा ने एक बार मुझे बताया था कि ये क़िला ईसा मसीह से भी बहुत पहले का है। शायद वैदिक युग के समय का। उन्होंने ये भी बताया कि यहाँ से पत्थरों पर बनी हुई देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। आगे लकड़ी

के दरवाज़ों वाली एक बहुत ही पुरानी इमारत थी। उसकी पुरानी ईंटें, लकड़ी में हुआ काम और दूसरे आर्टवर्क शायद मेरे से पूछ रहे थे-

'कहाँ से आए हो?'

'लाहौर से'

'क्या लेने आए हो।'

'इस किले को देखने आए हैं।'

'अब इस किले में आप क्या देखोगे? इसे देखना था तो उस समय देखते जब इसकी दीवारों से टकरा कर सरस्वती बहती थी। अब यहाँ क्या रह गया है।'

'क्या यह बादशाह का महल है?'

'नहीं, ये जैन साधुओं, श्रद्धालुओं और पुजारियों की पूजा करने व बैठने की जगह है जो अब खण्डहर बन चुकी है। तीन मंजिलों से अब एक मंजिल है वह भी अत्यंत जीर्ण टूटी-फूटी है। उजाड़ है चारों तरफ-

'यहाँ कितने जैन रहते थे?'

'बस थोड़े ही'। सन् 1926 में जैन यति पूर्णचन्द्र जी बिराजमान थे, जो लेखक और तपस्वी थे। और इससे बहुत पहले, ईसा से भी पहले, श्री कक्क सूरि जी हुए हैं। वे विक्रमी संवत से भी 213 साल पहले यहाँ पधारे थे। उनके पावन चरणों की सुगंध यहाँ चहुँ ओर फैली हुई है।

मुझे तो तलाश थी जैन मंदिर की, जहाँ निरंतर दो हज़ार सालों से जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों ने इस धरती के लोगों को शाँति और प्रेम का सन्देश दिया। वह जैन मंदिर कहाँ है?

एक शोधकर्त्ता ने बताया था कि अब मरोट के किले में कोई जैन मंदिर बचा नहीं है। जो कुछ बाकी बचा है, वो भी बिना नाम या मूर्ति के है। जैन मत को मानने वालों की संख्या घटते-घटते, यहाँ बहुत कम रह गई थी। अपने काम-धंधे, कारोबार के लिए, तथा हर साल आने वाली बाढ़ों के कारण धीरे-धीरे पलायन होता रहा।

मरोट के अलावा, जैनी लोग किला फोलड़ा, किला देराउर, अहमदपुर शरकिया, बहावलपुर व किला मौजगढ़ में आबाद थे। किला मौजगढ़ में जैन यतियों का मंदिर व उपासरा था। ये लोग माथा टेकने के लिए बीकानेर जाते थे।

भावड़ा बाज़ार

बहावलपुर शहर में एक बाज़ार का नाम ही भावड़ा बाजार था। देराउर तो दादागुरु जिन कुशल सूरि जी का स्वर्गवास स्थान है।

जैन मंदिर की तलाश में, मैं आगे बढ़ रहा था। कितने ही युगों की ईंटें बिखरी पड़ी थीं। हड़प्पा के समय की बड़े आकार की ईंटों से उत्तर-मुग़ल काल तक की ईंटें। कई सदियों के बसने व उजड़ने की कहानियाँ थीं इनमें। एक फूलदार ईंट को उठाया तो वो झट बोल पड़ी-

'जैन मंदिर ढूँढ़ने आए हो'।

'हाँ !'

'यहाँ बड़े-बड़े आचार्य, यति, साधु आते रहते थे।'

उपाध्याय मंगलकलश के उपदेश से, मरोट से (वि.सं. 177 से 199 के बीच) शत्रुँजय का संघ निकला। आचार्य कक्क सूरि पाँचवाँ ने (वि.सं. 336 से 357 के बीच) मरोट में भ. महावीर के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई। आचार्य सिद्ध सूरि-पाँचवाँ ने (वि. 370 से 400 के बीच) मरोट में शांतिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई। आचार्य यक्षदेव-छठा ने (वि.सं. 424-440) यहाँ पार्श्वनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई। आचार्य देवगुप्त सूरि-ग्यारहवाँ ने (वि.सं. 1108-1229) में नेमिनाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा कराई। आचार्य जिनवल्लभ सूरि ने (वि. 1130 में) मरोट के मंदिर में एक मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई।'

दादागुरु

'गणधर सार्द्ध शतकग्रंथ (सं. 1295) की वृहद्वृत्ति में उल्लेख है कि श्री जिन वल्लभ सूरि के शिष्य दादागुरु जिनदत्त सूरि ने अपने शिष्यों सहित मरोट में चौमासा किया था।'

मैंने पूछा- 'क्या आपने इन सबके दर्शन किए हैं?'

'नहीं, पहले दो चार के दर्शन नहीं किये। उनके बारे में सिर्फ सुना ही था। बाकी सबको तो अपनी आँखों से देखा है। इस जगह पर तो ज्ञानी-मुनियों-यतियों ने ग्रंथ रचे थे'।

'अच्छा'

'हाँ। वि.सं. 1667 (ईस्वी 1607) से वि.सं. 1794 (ईस्वी 1737) तक यहाँ अनेक ग्रंथों की रचना के प्रमाण मिलते हैं। यहाँ रहकर उन्होंने तपस्या की थीं',

उच्च नगर और दिल्ली के मार्ग में पड़ने वाला मरोट का किला, अपने समय का सबसे बड़ा, ऊँचा और सुन्दर था। समय बीता। हाकड़ा नदी (यानि सरस्वती नदी) सूख गई। जीवन की साँसें कठिन हो गईं। और धीरे-धीरे उजाड़ ने जगह लेना शुरू कर दिया। मिट्टी के कच्चे बुर्ज भी समय की मार सहते-सहते थक कर चूर होने लगे। पूरे इलाके को, वहाँ रहने वाले लोग 'रोही' (उजाड़ जंगल) कहने लगे।

'रोही' में रहने वाले दो व्यक्ति भी किला देख रहे थे। उन्होंने बताया कि यहाँ भावड़ों की आबादी होती थी। यह सामने की 'सोन-माड़ी' उन्हीं की हैं। ये बीकानेर की ओर से आकर यहाँ बसे थे।

जैन मंदिर

पर अभी तक हमें जैन मंदिर नहीं मिला था। पुराने बुर्ज से नीचे उतरते हुए एक पक्की इमारत नज़र आई। इस सारे किले में सिर्फ यही एक पक्की इमारत खड़ी हुई थी। लम्बाई 40 फुट और चौड़ाई 20 फुट के करीब, इस इमारत में सबसे पहले एक बरामदा था, जिसके सामने एक चौकोर इमारत थी, जो 12 फुट X12 फुट होगी। दरवाज़े के बिल्कुल सामने, दीवार के साथ मूर्ति रखने की जगह बनी हुई थी। छत पर बने हुए फूलों व बेलों आदि के रंग समय की धूलि की भेंट चढ़ चुके थे। चारों तरफ परिक्रमा का स्थान था, जो इतना तंग, कि एक समय एक ही व्यक्ति गुज़र सकता था। बाहर की तरफ, कुछ पूर्व दिशा की ओर मंदिर में आने वालों

के बैठने की जगह थी, जो खुली-खुली सी थी।

यह मरोट का जैन मंदिर है। इसकी इमारत तीन मंज़िला थी, जो अब सिर्फ एक मंज़िल की ही रह गई है।

इस मंदिर की मूर्ति के बारे में एक बार सलीम-शहज़ादा ने बताया था कि यहाँ से मिली एक मूर्ति के पीछे संवत् 13 विक्रमी लिखा हुआ था। जाँच-परख से भी यह संवत् ठीक पाया गया। श्री सुमतिनाथ की यह मूर्ति ईसामसीह से भी 44 साल पहले की थी, दूसरी जो मूर्तियाँ मिली थीं, वे विक्रमी संवत् 1139, 1201, 1450 और 1507 की थीं।

एक दिन इन्साईक्लोपीड़िया देखते हुए पता लगा कि ये मूर्तियाँ बहावलपुर के म्यूज़ियम में हैं। और श्री जिनचंद्र सूरि जी की प्राचीन चरण-पादुका भी इसी म्यूज़ियम में है।

हाकड़ा नदी सूख चुकी है। ब्रह्माजी की बेटी सरस्वती अलोप हो चुकी है। यहाँ से मिलने वाली मूर्तियाँ सरकारी म्यूज़ियमों का शिंगार बन चुकी हैं। अब कोई श्रद्धालु माथा टेकने नहीं आता।

हो सकता है कि हाकड़ा में फिर से भरपूर-विहीत बहने लगे। क्योंकि मरोट की मछली की प्रतीक्षा अभी बाकी है-

तू बगुला कोट मरोट दा
किद्धर उड्ड गया
मैं मच्छी दरिया दी
बैठी विच्च उड़ीक
तू बगुला कोट मरोट दा
किद्धर उड्ड गया।।

सरस्वती नदी के तट पर पनपी पुरातन सभ्यता

(सिंध सूबे में सरस्वती का नाम हुआ हाकड़ा नदी)

सरस्वती एक पौराणिक नदी है जिसकी चर्चा वेदों में भी है। कहीं-कहीं इसका नाम अन्नवती या उदकवती भी आता है।

सरस्वती का इतिहास, इसका रास्ता और विलुप्त हो जाने की अनेक थ्योरी हैं। ऐसा माना जाता है कि कई हज़ार साल पहले सतलुज, घग्घर और युमना-ये तीनों अलग-अलग नदियाँ नहीं थीं। बल्कि एक ही सम्मिलित नदी थी। तब इसके पाट की चौड़ाई भी कई कि.मी. थी। पृथ्वी पर आए भौगोलिक परिवर्तन व तीव्र भूकम्पों ने इस विशाल धारा को तीन हिस्सों में बाँट दिया, जो सतलुज, घग्घर और यमुना कहलाए।

पहाड़ से मैदान तक आने से पहले सतलुज की धारा उत्तर दिशा में बहने लगी और एक पूरा चक्कर लगाने के बाद ही पुन: मैदानी इलाके में आकर दक्षिण-पश्चिम को बहने लगी। स्मरणीय है कि भारत की अन्य किसी भी नदी का मार्ग दक्षिण से उत्तर को नहीं है। उधर यमुना भी, अलग होकर पहले नर्बदा तक पहुँची, तथा बाद के परिवर्तनों के फलस्वरूप प्रयाग की तरफ चली।

तीन नदियों की सम्मिलित यह विशाल सरस्वती नदी हिमालय के ग्लेशियरों से शुरू होकर पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, पाकिस्तान के कुछ क्षेत्र, और गुजरात को लाँघकर कच्छ की रण में पहुँच कर समुद्र में विलीन होती थी। सारा साल पानी से भरी रहने वाली इस नदी के तटीय क्षेत्र

हरे-भरे और उपजाऊ होने से यहाँ जो सभ्यता विकसित हुई, वह धातु युग की सभ्यता कहलाई।

सन् 1921-22 में हड़प्पा व मोहिनजोडारो की खोज ने सिंधुघाटी के इतिहास को 2000-2500 वर्ष-ईसा पूर्व पर पहुँचा दिया। भारतीय पुरातत्त्ववेत्ताओं ने भी लगभग 500 छोटे-बड़े स्थानों की खोज की है जो सरस्वती नदी के तट पर विकसित हुए। रोपड़, आदिवद्री, राखीगढ़ी, वैराना, बानावाली, कालीबंगां, अनूपगढ़, लोथल, सुरकोटड़ा तथा धौलवीरा आदि मुख्य हैं।

सरस्वती कहलाई हाकड़ा

पाकिस्तान के क्षेत्र (बहावलपुर-सिंध) तक पहुँचते-पहुँचते इसका नाम हाकड़ा हो गया। फिर भी कई जगह घग्घर या सरस्वती भी प्रचलित है।

फोर्ट अब्बास, मरोट, बहावलपुर के कई क्षेत्र, देराउर तथा खानपुर आदि इसी हाकड़ा नदी के तटों पर विकसित हुए।

आज की सस्वती उत्तर भारत की घग्घर नदी के पूर्व में बहने वाली बरसाती नदी है। इसी की एक धारा धरती के कुछ नीचे समाई हुई, बहती है तथा आदिबद्री, पिहोवा, कुरुक्षेत्र तक सरस्वती के नाम से ही पुकारी जाती है। आगे यह घग्घर में मिल जाती है, और सिरसा, हनुमानगढ़ को लाँघती है। वर्षा ऋतु में इसकी धारा कच्छ के सागर तक पहुँच जाती है।

इतिहास में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि मरोट (या मरोट कोट) तथा देराउर (ज़िला बहावलपुर) में प्राचीन काल से जैन मुनियों, यतियों का आना-जाना रहा है। जैन लोगों ने इन स्थानों पर सुन्दर और कलात्मक मंदिरों का निर्माण भी समय-समय पर कराया था।

फ्रांस के विद्वान् शोधकर्त्ता Dr. Micheal Danino ने सीज़योग्राफिक व सेटेलाइट डाटा की मदद से सरसवती नदी की 5000 साल पहले की स्थिति का स्केल किया है (चित्रावली पृ. 2)

गोड़ी पार्श्वनाथ जैन मंदिर

हमारा अगला प्रोग्राम गोड़ी जाने का था। इस इलाके में गोड़ी में जैन धर्म का यह सबसे बड़ा मंदिर है। यह नगरपारकर से करीब 25 कि.मी. इस्लामकोट रोड पर है।

गाड़ी मेन रोड से गोड़ी ग्राम की तरफ मुड़ी। सामने एक बड़ी बस्ती थी। अनेक गोल झुग्गियाँ, सुन्दर घर थे सड़क के दोनों ओर। महिलाओं के रंग-बिरंगे वस्त्र, ऊँट, गाएँ, मोर, मुर्गियाँ - ये सब यहाँ की रौनक थे। आगे था खुला जंगल और गाँव से आधा कि.मी. बाहर था गोडी जैन मंदिर।

मंदिर में इस समय बहुत रौनक थी। चारदीवारी में पहली दर्शनी ड्योढ़ी की बुर्जियों के पास, चटाई पर बैठे कुछ लोग हार्मोनियम और ढोलकी के साथ भजन गा रहे थे। बाहर भोजन तैयार हो रहा था।

भजन गाने वाले का नाम भगतराम है जो कराची टी.वी. का लोक-कलाकार है। वह यहाँ का ही रहने वाला है। उसने बताया कि किसी के घर खुशी हुई है, इसलिए पार्श्वनाथ की पूजा करने आए थे।

एक बरामदा जो पत्थर की बुर्जियों पर खुलता है, इस बरामदे के आगे एक गोल गुँबद वाला हॉल, जिसके चारों तरफ कोठरियाँ थीं। गुँबद की छत से, सूरज की किरणें थीं। अन्दर जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों के काले पेंट से बनाए चित्र थे। ये सब कला का अति सुन्दर और अद्भुत नमूना थे। इस हॉल के मध्य में केन्द्रीय मंदिर, जिसमें मूर्ति रखने के स्थान-के चरणों में ज्योत जग रही थी। मूर्ति का स्थान खाली था। कालिख सी थी इस जगह पर।

वक़्त की राजनीति और उदासी की कालिख। आज केवल इस स्थान की पूजा हो रही थी।

श्रद्धालुओं के हाथों में जँगली आक के फूल और जल रही अगरबत्तियाँ।

हम आठ जन मुसलमान.........ये सारे इधर की जातियों के हिन्दू........ जैन मंदिर......इतिहास का लम्बा सफर.......गोडी मंदिर की दुर्लभ कहानी........अर्कियोलोजी विभाग का बोर्ड......और मंदिर की जीर्ण-शीर्ण अवस्था।

जैनियों के 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के नाम के साथ 'गोड़ी' अलंकरण वाला यह सबसे प्राचीन मंदिर है। भारत भर में स्थापित गोड़ी जी के मंदिरों का प्रारम्भ यहाँ इसी गोड़ी (नगरपारकर) मंदिर से हुआ। इसी गोड़ी मंदिर-तीर्थ की यात्रा के लिए भारत के विभिन्न नगरों से समय-समय पर संघ निकलते रहे।

ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि नागौर के सेठ रायमल्ल ने वि.सं. 1402 में गोड़ी (सिंध) की यात्रा के लिए संघ निकाला था। वि.सं. 1441 में खाखर गाम से गोड़ी जी (सिंध) की यात्रा के लिए निम्मण सेठ ने संघ निकाला था। पुनः संवत् 1657 में बाड़मेर के श्रावक कुंभा जी, इस तीर्थ पर संघ लेकर गए थे।

गोड़ी का यह मंदिर एक समय बावन जिनालय था- ऐसे भी आलेख मिलते हैं। यहाँ की कुछ मूर्तियाँ गुजरात के 'वाव' नगर में ले जाई गई थी।

गोड़ी के मंदिर का वर्तमान स्वरूप ही इसके भूतकाल का परिचायक है। 'गोड़ी' परमात्मा का दुनिया को प्रथम परिचय यहीं से प्राप्त हुआ। मंदिर के अवशेषों से प्रगट होता है कि अतीत में यहाँ बहुत बड़ा मंदिर था जिसका शिल्प और कारीगरी आज भी जीवंत है। केनोपी सहित 8 खम्भे, फिर हॉल में 28 खम्भे, जिसे अर्ध मंडप कहते हैं। मुँढेर (पैरापेट वाल) का पूर्ण क्षय हो चुका है।

गोड़ी तीर्थ के वंदन-पूजन के लिए आते थे यात्री संघ

(1) वि.सं. 1889 आषाढ़ वदि 7 को उत्तरार्द्ध लुंकागच्छ के श्रीपूज्य विमलचन्द्र जी के पट्टधर श्रीपूज्य रामचन्द्र जी ने अपने यतिमंडल के साथ पंजाब में श्रावक श्री दासमल द्वारा निकाले हुए छरी पालित यात्रासंघ के साथ पारकर (सिंध) देश में श्री गोड़ी पार्श्वनाथ के अति प्राचीन जैनमहातीर्थ की यात्रा की थी। उस समय उन्होंने जो संस्कृत में गौड़ी पार्श्वनाथ की स्तुति की थी उसमें यहाँ की यात्रा करने का उल्लेख किया है।

स्तुति श्री गौड़ी पार्श्वनाथ

(आदि) गोड़ी प्रभो पार्श्व ! दर्शनं देहि मे। संघेन सार्द्धं समुपागतां मे।
अव्यक्त मूर्ते जनतारक ! दर्शनं भक्तयाय लोकेश दया सुधानिधे।।1।।
पारकरे देशवरे सुवासनं योगैरचित्यं भववारिपातकं।
वामांगजं देव - नरेन्द्र सेवितं। ध्यायामि ऽहं कर्मवनौघदायकं।।2।।
(अन्त) लुंकोत्तरार्द्धस्य गणस्थ स्वामिना श्री रामचन्द्रेण सहीवभावता।
श्री दासमल्लेन च संघधारया। यात्रा बिहारी करणाय आगता।।8।।
अंकाष्टाष्ट वर्षयुतेन (1889) भूमयेद्वाषाढ मासे असित सप्तमी तिथौ।
भाग्येन यात्रा तव देव सम्मतां कृत्वा कृतं जन्मकृतार्थमुत्तमं।।9।।
अहं भावेन ते पार्श्वं नमामि चरणद्वयं संसारवासतो भीतं।
मा रक्ष-रक्ष कृपानिधे ! त्वं। गोड़ी प्रभो पार्श्व। दर्शनं देहि मे।।10।।

(2) वि.सं. 1833 मिति फाल्गुण वदि 12 को पंजाब से तपागच्छीय यति श्री फत्ते विजय जी पारकर देश में श्री गोड़ी पार्श्वनाथ जी की यात्रा

करने आये थे। उस समय उन्होंने हिन्दी भाषा में श्री गोड़ी पार्श्वनाथ की स्तुति की थी। जिसमें उन्होंने यात्रा करने का उल्लेख किया है। यथा -

पारकर देशे श्री गोड़ी पार्श्वनाथ का स्तवन

(आदि) भाग्यवश आसफली आज जागया है मुझ पूरब पुण्य के।
पारकर मंडन भेटताँ। अवतार जेह थयो मुझ धन्य के।।1।।

(अंत) संवत् अठारे तेत्रीस में। फागुन वद है द्वादशी शनिवार के।
फतेविजय कहे रंगस्यूं। गोड़ी भेट्यौ है हुओ जय-जयकार के।।7।।

(यति रामचन्द्र लिपिकृतं वि.सं. 1864)

अंधेरा और सन्नाटा है गौड़ी के जैन मंदिर में

'क्या कर रहे हो', ता. 12 मई 2012 के दिन सुबह-सुबह ही फोन पर मेरे मित्र ने पूछा।

'अखबार पढ़ रहा हूँ'

'आज के' एक्सप्रेस ट्रिब्यून' में सिंध में स्थित गोड़ी के जैन मंदिर का आर्टिकल छपा है, जिसे अमरीका की Colorado यूनिवर्सिटी में पाकिस्तानी मूल के प्रोफेसर शाहिद हुसैन ने लिखा है।

इतने सालों के बाद, अपनी फाइलों में से, वही आर्टिकल यहाँ दिया जा रहा है।

'आजकल नगरपारकर (सिंध) के गोड़ी मंदिर में भयानक चुप्पी का सन्नाटा है, लेकिन सीमा के उस पार भारत में, गोड़ी के इसी मंदिर की विरासत पर बने एक जैन मंदिर ने अपना दो सौ साला उत्सव मनाया है। गोड़ी पार्श्वनाथ, बंबई का यह एक सुविख्यात मंदिर है। पाकिस्तान का गोड़ी मंदिर थारपारकर ज़िले में इस्लामकोट और नगरपारकर के बीच स्थित है। भारत में करीब 12 बड़े मंदिरों का नाम गोड़ी पार्श्वनाथ है, तथा सभी का मूल उद्गम पाकिस्तान का गोड़ी मंदिर ही है। बंबई महोत्सव की धूमधाम व चकाचौंध के विपरीत यहाँ डरावना सन्नाटा है।

15 अप्रेल से 12 मई तक चले महोत्सव, 200वीं सालगिरह, में 8,40,000 लोगों ने भोजन खाया। संचार मंत्री मिलिंद देवरा ने यादगारी टिकिट जारी किया।

थारपारकर के इलाके के सभी जैन मंदिर यहाँ की महत्त्वपूर्ण पुरा-अमानत हैं। इन सबमें प्रभावक है गोड़ी मंदिर। खंडहरनुमा इस मंदिर की यह बात समझ से परे है कि यह लम्बे समय से 'छोड़ा हुआ' क्यों है। थारपारकर में अब कोई जैन नहीं रहता। इधर, भारत में रहने वाले जैनी भी इस मूल गोड़ी मंदिर को कम ही जानते होंगे। शायद किस्से कहानियाँ ही सुने होंगे। इतिहासकारों ने इस भूले-बिसरे मंदिर को जानने की कई कोशिशें की हैं। उर्दू व अंग्रेज़ी के 'र' को गुजराती व हिन्दी में 'ड' किए जाने से भी कुछ भेद बना रहा।

भारत का कोई भी गोड़ी पार्श्वनाथ मंदिर 200 साल से ज़्यादा पुराना नहीं, पर थारपारकर का यह मंदिर बहुत प्राचीन है। बंबई का मंदिर सन् 1812 में बना। लकड़ी के मंदिर में सिरोही से वह मूर्ति लाई गई, जो वहाँ गोड़ी गाँव से आई थी। दस शिखरों वाला तीन मंज़िला स्वरूप इसे 40 साल पहले मिला।

बंबई का 200 साला महोत्सव अभूतपूर्व रहा। कुल 1,35,000 परिवारों को मिठाई सहित निमंत्रण भेजे गए। आठ लाख को भोजन परोसा गया। 30,000 किलो आटा, 200 किलो मिर्च व 1500 टन आमों का जूस लगे। 20,000 वर्कर काम पर थे। 280 साधुओं की उपस्थिति में आचार्य पद्म सागर सूरि ने संचालन किया। प्राचीन शास्त्रों के चित्रों वाले 4 ग्रंथों का प्रकाशन हुआ।

जैन लोग धनी व समृद्ध माने जाते हैं। दिल्ली के सुलतान और मुगल इन पर आश्रित रहते थे।

थारपारकर का गोड़ी मंदिर, 8वीं सदी ई. पू. में हुए पार्श्वनाथ के नाम से है। जैन ग्रंथों में इसका इतिहास व किस्से मिलते हैं। नेम विजय कृत 'श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन' इसी मंदिर में बैठे ही रचा गया था। इस के अनुसार यहाँ की प्रतिमा को सन् 1375 में मेघा सा नामक सेठ गुजरात के पाटण शहर से लाया था। प्रतिमा तो 1175 की है, पर यह दब गई। किसी ने बाद में निकाला। मेघा सा ने 500 मुद्राओं में इसे प्राप्त किया। देवी ने दर्शन देकर रेगिस्तान में मंदिर बनाने केलिए जल व पत्थरों वाली

ज़मीन बताई। मेघा सा ने मंदिर बनवाया और गोड़ी गाँव को बसाया।

आबू देलवाड़ा और हठीसिंह की वाड़ी के मंदिरों की तरह गोड़ी में भी एक मुख्य मंदिर और चारों तरफ 52 छोटे मंदिर हैं। प्रत्येक में मूर्ति बिराजमान थी। इसकी खास बात यह है कि सभी दीवारे पेंटिंग्ज़ से सजी हैं।

समय बीता और गोड़ी एक तीर्थ बन गया। सन् 1715 के एक शिलालेख में जीर्णोद्धार का विवरण है। सन् 1854 में स्टेनले नेपियर (STANLEY NAPIER) यहाँ आया था। वह लिखता है कि मूलनायक प्रतिमा को स्थानीय शासक सोदा सूतो जी 1716 में अपने किले में ले गया। सन् 1832 में उसके निधन के बाद किसी को पता न था कि मूर्ति कहाँ है।

सन् 1937 में मुनि विद्याविजय ने आकर देखा कि मंदिर खाली था और एक भील इसकी देखभाल कर रहा था। अंग्रेज़ी फौज के साथ लड़ाई और बाद में आए भूकंप से मंदिर को बहुत क्षति हुई।

जब Raikes यहाँ आया, तब तक समुद्री तटों के परिवर्तन से व्यापार मार्ग बंद होने से जैनों की संख्या यहाँ काफी कम हो गई थी। बाकी 400 जैनी 1947 में यहाँ से कूच कर गए। लेकिन मंदिर की स्मृतियाँ कायम रहीं।

गोड़ी पार्श्वनाथ नाम के कई मंदिरों की मूलनायक मूर्ति गोड़ी गाँव की ही है। ये ज्यादातर सिंध के साथ लगते राजस्थान व गुजरात में हैं लेकिन दूर हैदराबाद में भी कुछ हैं। असली गोड़ी मंदिर अब एक रहस्यमयी कहानी मात्र रह गया है। अनेक कच्छी जैन परिवार थारपारकर से आए हुए कहते हैं। गोड़ी मंदिर के निर्माता मेघा सा से अपनी वंशावली मिलाते हैं।

कथा-कहानियों को छोड़ भी दें, तो भी पाकिस्तान के इस मंदिर में काफी कुछ अद्वितीय है। वह है रंग मंडप की पेंटिंग्ज़। अजंता और एलोरा को छोड़कर, भारत के किसी भी मंदिर में इतनी प्राचीन पेंटिंग्ज़ व भित्तिचित्र (FRESCOS) नहीं हैं। भारत में तो हर जीर्णोद्धार के नाम पर पुराने भित्तिचित्र को मिटा दिया जाता है। पाकिस्तान में भी इससे प्राचीन कोई दिवारी-पेंटिंग्ज़ शायद ही हों।'

ज़िला-थारपारकर (सिंध)

सिंध के ज़िला थारपारकर के अन्तर्गत जो-जो जैन मंदिर स्थान आते हैं- उनके नाम हैं:-

1. नगरपारकर
2. भोदेसर
3. वीरवाह व पारी नगर
4. गौड़ी पारसनाथ
5. करूँझर
6. बोहर (या बोहड़)
7. उमरकोट
8. डमरेलपुर
9. किला फोलड़ा

थारपारकर क्षेत्र के इन शहरों के पुरातन जैन मंदिरों का शानदार कलात्मक काम, प्रभावशाली लोकेशन, वैभवशाली बनावट, भीतर बाहर की सिमिट्री, दीवारों व छत की पेंटिग्ज, झूमर, पिलर-प्रत्येक देखने वाले को चकित कर देते हैं। कई बार आँखों पर भी विश्वास नहीं होता। मौर्यकाल से मध्यकाल के बीच बने ये मंदिर, कुछ बड़े तीर्थों को छोड़कर, भारत के किसी भी तीर्थ या अन्य स्थान के मंदिरों की कला व शिल्प में बखूबी टक्कर में समर्थ हैं। यहाँ के गौड़ी पार्श्वनाथ तथा दो तीन अन्य मंदिरों के भित्ति चित्र, पेंटिंग्ज़ व फ्रेस्कोज, अजन्ता-एलोरा से माथा लेते हैं।

नगरपारकर

रात के पिछले पहर हम नगर पारकर के बाज़ार में पहुँचे। पहले से ही एक सरकारी रेस्ट-हाउस बुक कराया हुआ था। अब वहाँ तीन दिन रुकना था।

नगरपारकर तो मेरे लिए एक नया संसार लग रहा था। सफर के जंगल तो पीछे रह गए। इस शहर के चारों तरफ तो पहाड़ थे। दुनिया के पहाड़ों से अलग ही थे यहाँ के पहाड़। पहाड़ की हरेक चोटी के सफेद, घड़े हुए पत्थरों में से मानवीय आवाज़ें सुनाई दे रही थीं।

पाकिस्तान रेंजर्ज़ का एक जवान हमारे पास आया और कहा कि इधर फोटो लेने या मूवी बनाने की सख्त मनाही है।

इस छोटी सी मार्किट के पीछे एक छोटा सा हिन्दू मंदिर था जिसके बड़े द्वार के दोनों तरफ हनुमान जी की आकृतियाँ बनी हुई थीं।

कहते हैं कि कभी यहाँ समुद्र था और नगरपारकर बन्दरगाह थी। फिर समुद्र पीछे हट गया और अपने पीछे छोड़ गया मौत, यानि बिना पानी की ज़िन्दगी। पानी अब दूर पाताल में चला गया।

थर, थल, थर पारकर, नगर पारकर। 'पारकर' नाम कैसे पड़ा, इसकी भी एक कहानी है।

जब यहाँ समुद्र था तो इस जगह कारूँझर की एक चोटी पर पराशर ऋषि ने समाधि लगाई। इस पहाड़ पर उस ऋषि की उंगलियों के निशान हैं। मछँदरा नाम की एक नवयौवना पर कुपित होकर ऋषि ने शाप दिया। तब पानी का समुद्र पीछे हट गया और पीछे बना मौत का समुद्र। मारुथल.....मारी। इस मारी में यह नगर बसा जो ऋषि पराशर या पारस

के नाम पर पारी नगर, और फिर नगर पारकर हो गया। पारस ऋषि एक जैनी महात्मा थे, ऐसी भी मान्यता है।

इस इलाके में बहुत सारे 'सर' (यानि तालाब) हैं। जैसे - बोदेसर, बोरलाई, भानसर, राणासर, अधिगामसर। अधिगाम सर, जैनियों का तालाब है। अधिगामसर में अब थोड़े बहुत जैनी रहते हैं। पहले बहुत थे। यह सारा इलाका ही जैनियों का था। सन् 1965 और फिर 1971 के बाद, अपने मंदिर, घरबार, जायदाद सब कुछ छोड़कर राजस्थान चले गये।

शहर का जैन मंदिर

बाज़ार में थोड़ा चलने के बाद, दाएँ हाथ मुड़े तो हम मंदिर के बिल्कुल सामने थे। मंदिर के बाहर सरकारी आर्कियोलोजी विभाग का बोर्ड लगा था-

'जैन मंदिर, नगरपारकर। यह एक यादगार और पुरानी इमारत है। इसकी सुरक्षा पाकिस्तान सरकार का फर्ज़ है। इमारत को नुकसान पहुँचाना जुर्म है। जिसकी सज़ा क़ैद या जुर्माना या दोनों दी जा सकती हैं।'

मंदिर का दरवाज़ा दूसरी तरफ था। मैं अन्दर पहुँचा तो लगा कि कोई स्वागत कर रहा हो। झूलती आर्क में से अन्दर गया, वहाँ उदासी पसरी हुई थी, जो इतनी गंभीर कि मेरा रोम-रोम उदास हो गया। दीवारों का नीला रंग अभी तक अपनी पूरी ताकत से खड़ा था। कुछ देर बाद बाहर आया और सीढ़ी-सीढ़ी नीचे उतरने लगा। हर सीढ़ी एक सदी जितनी ऊँची थी। इतिहास, निष्ठा, मान्यता और उदासी-एक-दूसरे से मिल रहे थे।

करीब 1000 वर्ष पूर्व के आलेखों में नगरपारकर तीर्थ के वर्णन मिलते हैं। शहर की जाहोजलाली चरम सीमा पर थी। अपने वैभव, कला और शिल्प वाले यहाँ पर कई जैन मंदिर हैं।

ऐसा भी कहा जाता है कि नगरपारकर के मंदिर की मूर्तियाँ वर्तमान में गुजरात के 'वाव' नगर के मंदिर में विराजमान हैं।

नगर पारकर के एक तरफ गुजरात दूसरी तरफ सिंध तथा तीसरी तरफ रण-कच्छ होने से इस स्थान की भव्यता अपने आप बढ़ गई है।

वीरवाह व पारीनगर

वीरवाह एक छोटा सा शहर है, जिसमें सभी जैनी रहते थे। कहते हैं कि जब यहाँ से थोड़ी दूरी पर स्थित पारीनगर समुद्र की बन्दरगाह था तो पंजाब की तरफ से एक नदी हाकड़ा (सरस्वती) इस गाँव के पास ही समुद्र में गिरती थी। फिर समुद्र पीछे हट गया और पारी की बन्दरगाह उजड़ गई। पारी में लोहारों, राजपूतों और जैनियों के कुल पाँच हज़ार घर थे। इसमें 200 घर जैनियों के थे। यहाँ ओसवालों व परमारों का शासन था, और जैन धर्म वाले धन-दौलत के मालिक थे। ईसा से 500 वर्ष पहले यह नगर एक बड़ी बन्दरगाह था।

इस स्थान का नाम वीरो है और वाह उस नदी (हाकड़ा) के कारण कहा जाता है। वीर वाह एक झील के किनारे बसा हुआ है। यहाँ से कच्छ के ढेरे दिखाई देते हैं। ये सब जैनियों के ढेरे हैं।

वीरवाह में जैन धर्म वालों का एक बहुत सुन्दर मंदिर है जहाँ भगवान ऋषभदेव की मूर्ति होती थी। मूर्ति की आँखों में ऐसा काँच जड़ा हुआ था कि वो अँधेरे में भी चमकता था। दोनों तरफ बहुत छोटी बड़ी मूर्तियाँ थीं। अब यहाँ कोई मूर्ति नहीं। मंदिर के पत्थर भी गलियों में रुलते फिरते हैं।

पारीनगर में एक जैन महंत (यति) मंघु रहता था। उसे स्वप्न में भगवान पार्श्वनाथ ने कहा कि शहर में अमुक स्थान पर उनकी मूर्ति धरती के अन्दर है। मूर्ति को निकाल कर यहाँ मंदिर बनवाओ। करीब 12 फुट नीचे जाकर उसे मूर्ति प्राप्त हुई। धरती से ही मिले धन से उसने यहाँ मंदिर बनवाया और श्वेत पाषाण की 11 फुट ऊँची मूर्ति पधारी। मूर्ति के कण्ठ पर हीरे की कणिका लगी हुई थी, दो हीरे वक्षस्थल पर थे। पूर्व में यहाँ

6 जैन मंदिर थे। बड़े-बूढ़े बताते हैं कि महात्मा गाँधी के पूर्वज इसी पारीनगर के रहने वाले थे। मैं बड़े ध्यान से मूर्तिस्थान को देख रहा था। कैसा रहा होगा रौनकों का वह समय।

सारे का सारा थर ही जादूनगरी है। आने वाले को अपने जादू में जकड़ लेता है। वीरवाह के पुरातन जैन मंदिरों का वैभव, कला, स्थापत्य, शिल्प और सजावट अभी तक बरकरार है। मैं तो इनमें इतना खो गया कि नज़रें हटाने को दिल ही नहीं करता। उन कारीगरों और उनके औज़ारों को सलाम, जिन्होंने इन मंदिरों में खूबसूरती भरी होगी।

भोदेसर

भोदेसर और नगरपारकर की आपस में दूरी सिर्फ दो कि.मी. है। वहाँ महमूद गजनवी ने पत्थरों की मस्जिद बनवाई थी। जैन मंदिरों और इस मस्जिद की बनावट में ज़्यादा फर्क नहीं लगता।

भोडी राजा ने यह शहर बसाया था। उस समय यहाँ कोई तीन हज़ार घर जैनियों के थे। वे बहुत धनी थे। भोदेसर यहाँ के जैनियों का सबसे पवित्र ताल है। यह भी मान्यता है कि भोडी का असली नाम भद्रेसर था। जैनियों का एक मंदिर और इसके चार ढेरू अभी तक मौजूद हैं। ढेरू वो होता है, जहाँ बैठकर लोक और परलोक की बातें करें। परमात्मा की कथा सुनाएँ।

भोदेसर में भगवान शांतिनाथ का मंदिर था। भूतकाल को स्मरण कराती यहाँ की स्थापत्य, बाहर की कलात्मक बाँधनी तथा इसके अन्दर कई जगहों पर कारीगरी के अवशेष, सुन्दर गोखले तथा आकर्षक भीत-चित्र-अब जीर्ण-शीर्ण हैं।

मंदिर का शिखर 40 फुट ऊँचा बनाया गया था। वर्तमान मंदिर की मूर्ति खण्डित हो चुकी है तथा दीवारों का शिल्पकाम उखड़ा हुआ है।

उमरकोट (सिंध)

चाँदनी रात में, हमारी गाड़ी एक लम्बी सड़क पर भागी जा रही थी। और यह मीलों लम्बी सड़क भी, लगता था कि चुपचाप हमारे पैरों में सोई पड़ी थी।

उमरकोट का किला आ गया। गाड़ी किले के अन्दर पहुँची तो हमारे सामने एक बुर्ज था जो किले के मध्य में था, जिसके चारों तरफ से किले की दीवारें, बुर्ज पर चढ़ती थीं। दरवाज़े के सामने उमरकोट के बाज़ार, गलियाँ, मकान व दुकानें। अपने सदियों पुराने इतिहास के साथ यह जीता जागता शहर था- उमरकोट।

मरुस्थल शब्द के उच्चारण से, इस क्षेत्र में दो काल्पनिक पात्रों के लोकगीत प्रसिद्ध हैं- 'मारु' और 'सोमरु'

हथकड़ियाँ तेरिया नूड़िया तन मेरा वे
दस क्यों कर वस्सां सोमरु तेरे कोटीं वे।

मारु बोल रही थी और सोमरु चुप था, इस बुर्ज की तरह जिसने कभी नहीं बोलना।

शहर में घरों की छतें और अनेक मंदिरों के कलश थे। क़िले के बुर्ज पर, पुराने समय की दो तोपें थीं। मैं इनके बीच खड़ा हो गया। पता नहीं कि तोप हँसी या रोई। कहने लगी-

'मैं उस समय की यहाँ पड़ी हूँ, जब हुमायूँ से दिल्ली का तख्त छूटा और वो धक्के खाता यहाँ आ पहुँचा। तब यह किला एक हिन्दू राणा के पास था। यहाँ ही शहनशाह अकबर का जन्म हुआ।'

बीते दो हज़ार सालों में दीवारों व क़िले के अनेक पत्थर, ईंटें व

बरतन आदि पर समय की मार, आक्रमणकारी घोड़ों की पदचाप तथा धूप व बरसात का असर साफ दिखाई दे रहा था। अब ये सब छोटी-छोटी ठीकरियाँ बन गए थे। मेरे पैरों से एक ऐसी ही ठीकरी टकराई और उसने सवाल किया-

'कहाँ जा रहे हो? मैं सदियों से यहाँ पड़ी हूँ। इस क़िले की बुनियाद मेरे से कुछ पहले रखी गई थी। मुझे याद है कि श्री देवगुप्त सूरि (10वें) वि.सं. 1317 (ईस्वी 1250) से पहले यहाँ आए थे। ई.सन् 559 में राजा मन्दामराय यहाँ का शासक था। फिर 300 साल पहले पुराने किले के पास नया किला तामीर हुआ। यह उमरकोट भी एक समय जैनों का मुख्य केन्द्र स्थान था। पाकिस्तान बनने से पहले यहाँ एक श्वेताम्बर जैन मंदिर और 15-20 घर जैनों के थे।

उमरकोट के एक सरकारी बँगले में गौड़ी मंदिर के कोट के पत्थर लगे हुए हैं। पास ही एक छोटा सा सरकारी म्यूज़ियम है, जहाँ पारी व वीरवाह के जैन मंदिरों की मूर्तियाँ व अवशेष रखे हुए हैं।

इन्हीं यादों को हम इतिहास कह सकते हैं, जो लिखी जाती हैं, या फिर स्मृति में रखी जाती हैं।

करुँझर (सिंध) (Karoonjhar)

पहाड़ों की ऊँची-नीची चट्टानों में बने इस अतिभव्य जैन मंदिर की ऊपरी मंजिल व शिखर अब ढह चुके हैं। केवल खुला सहन मूर्ति रखने का कमरा (मूल गंभारा) ही बचे हैं। टूटी-फूटी हालत में, बाकी बचे मंदिर व मूर्ति स्थान को देख उदासी भी होती है और इसे बनाने व पूजने वालों के प्रति सिर भी झुकता है।

छोटे से एक किले का यह कस्बा, थारपारकर जिले का ही हिस्सा है।

डबरेलपुर

डबरेल भी एक पुराना शहर है। इसकी रौनकें अब भूतकाल की कहानी बनगई हैं।

जैन ग्रंथों में इसका नाम आता है कि आचार्य रत्नप्रभ सूरि (चतुर्थ) (समय वि.सं. 199 से 218) सिंध में विचरे और डबरेल में भी पधारे थे। पुनः उन्हीं आचार्य की परम्परा के आचार्य रत्नप्रभ सूरि (समय वि. 400-425) ने डबरेल नगर में चौमासा किया। आचार्य सिद्धसूरि (छठा-समय वि. 520-550) ने यहाँ चौमासा किया और सात महिलाओं व कुछ पुरुषों को दीक्षाएँ दीं। सिद्ध सूरि (आठवां, वि. 724-778) ने चौमासा किया।

महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण से पहले यहाँ जैन आचार्य व मुनिजी आते रहे व चौमासे भी करते थे।

यहाँ पर जैन मंदिर का कोई नामोनिशान अब मौजूद नहीं है।

बोहड़ (BOHAR) सिंध

थारपारकर बोहड़ गाँव का यह जैन मंदिर आज भी अपनी पूरी छटा लिये हुए है। शिखर और उसका कलश गाँव के बाहर से ही नज़र आते हैं। धरती से ऊपर तक शिखर की चमक आज भी क़ायम है। मेन शिखर में ही चार छोटे शिखर समाहित हैं। मंदिर का मेन गेट, बहुत खुला और संगमरमर का है। गेट के बाहर, एक तरफ दादागुरु की समाधि है, सभी जीर्ण हो रहे हैं। सबसे बढ़िया, सुन्दर और प्रभावशाली है इसके मूल गंभारे की वेदी। वेदी में भरे हुए हैं रंग, डिज़ाइन, शुद्ध सोने का सुनहरी जड़ाऊ काम शायद ही इतनी सुन्दर वेदी, अन्य कहीं देखने को मिले। बोहड़ कस्बा, नवाब शहर से 50 कि.मी. दूर है।

किला फोलड़ा

पाकिस्तान की रियासत बहावलपुर में यज़मान मंडी से देराउर जाते हुए रास़्ते में किला-फोलड़ा है। इस किले से जैन मूर्तियाँ मिली हैं। यहाँ लम्बे समय तक जैनी लोग बसते रहे। जैन साधु व जैन यति भी आते रहे।

कराची

लाहौर से कराची के इस सफर में, मेरे साथ थी मशहूर कवयित्री 'सारा शगुफ्ता' की किताब। कई बार लगा कि शायद 'सारा' मेरे से बातें कर रही हो।

मैं कराची का जैन मंदिर ढूँढ़ने निकला था। 'सारा' की ये पंक्तियाँ, पूरे सफर में मेरे दिमाग में घूमती रहीं-

"इंसान की दुकान से कपड़े धुलवाए थे। पहनते ही कपड़ों में से आवाज़ आई कि ये अपवित्र हैं। पलीत हैं। और फिर वो नंगों की चादर बन गए।

एक और दूसरी पंक्ति -

'अक्ख रंगी चंगी
अग्ग नंगी चंगी
मैं नंगी चंगी।'

जैन धर्म वालों ने एक स्त्री को भगवान की पदवी दी है। मैंने उस भगवान की मूर्ति देखी है, वह भी वस्त्र रहित थी।

'सारा'...... कराची .... भगवान मल्लीनाथ......

......और भगवान महावीर............सारे दिगंबर।

लाहौर से कराची का सफर 18 घण्टे का था। कराची के जैन मंदिरों के बारे में मैंने काफी कुछ पहले से पढ़ रखा था कि वहाँ 'रणछोड़ लाईन' एरिया में जैन मंदिर हैं। यह एरिया एकदम स्लम और पुराना है। वि.सं. 1980 (ईस्वी 1923) में इस मंदिर की प्रतिष्ठा हुई थी तथा इसमें मूलनायक पार्श्वनाथ (श्याम वर्ण) भगवान की मूर्ति है।

संवत् 1911 में यहाँ बसे, गुजराती परिवारों ने सोलजर-बाज़ार' में एक घर मंदिर बनाकर उसमें धातु की प्रतिमा विराजमान की थी। बाद में 'हाला' नगर से पाषाण की मूर्ति लाकर यहाँ विराजी गई थी। तथा एक दिगम्बर मंदिर इससे अलग था।

लम्बे सफर के बाद कराची शहर के स्टेशन पर इंसानों का रेला था। समुद्र के किनारे का यह शहर बहुत पुराना है। शायद पत्थर युग या धातु युग के समय का। भारत से वापस जाते हुए सिकंदर यहाँ आया था।

'भाई साहिब, रणछोड़ लाईन आगई है। कहाँ जाओगे'

'मुझे हिन्दू मुहल्ला ले चलो। वहाँ छोड़ देना।'

लाहौर से मुझे एक व्यक्ति 'मदनलाल' का पता व नम्बर दिया था कि वो मेरी मदद करेगा। वह मदनलाल मुझे जल्दी ही मिल गया। रणछोड़ लाईन में हिन्दुओं का यह छोटा सा मुहल्ला। छोटे-छोटे मकानों में एक छोटा सा मंदिर दिखाई दिया जिसका गेट बंद था। बाहर कुछ लोग बैठे थे। मदनलाल ने उन्हें मेरा परिचय कराया।

'ये मेरे मेहमान हैं। ये पंजाब से आए हैं। यहाँ हमारे रणछोड़ लाईन के इलाके में कोई जैन मंदिर है, ये उसे देखने आए हैं।' आप में से किसी को इस जैन मंदिर के बारे में पता है?'

'रणछोड़ लाईन तो बहुत बड़ा है, भाई। यहाँ बड़े मुहल्ले हैं, हिन्दुओं के, मुसलमानों के और पारसियों के। हम ने कभी नहीं सुना कि यहाँ कोई जैनी भी हो।'

'नहीं भाई, यहाँ जैनी नहीं रहते। पहले रहते थे। उनका यहाँ मंदिर है। मैं वो मंदिर देखने आया हूँ।'

'देखो भाई, हमारे आस-पास तीन मंदिर हैं। ये तीनों हिन्दू मंदिर हैं। यहाँ कोई जैनी मंदिर तो हमने सुना नहीं।'

अब उस हिन्दू मुहल्ले में से बाहर आ रहे थे। उस कवि के कहे अनुसार, जिसने कहा था-

'मैं मस्जिद में गया, वहाँ दरवाज़ा बन्द था
दरवाज़ा खटखटाया, और आवाज़ आई...
घर कोई नहीं.......।'

'भाई साहिब, अब इस वक्त इस इलाके में जैन मंदिर के बारे में तो कुछ पता नहीं चल रहा। मेरा ख्याल है कि जब जैनी यहाँ से गए, तो खाली मंदिर को किसी ने अपना घर बना बनाकर उसकी शकल बदल दी हो या हो सकता है कि अब वो हिन्दू मंदिर हो।'

एक अधेड़ उमर का आदमी जो हमारी बातों में काफी दिलचस्पी ले रहा था, मदनलाल के करीब आकर कहने लगा कि मेरे दादाजी इसी रणछोड़ लाईन में रहते थे। मुझे याद है कि उनके पास यहाँ के जैन मंदिर व कुछ परिवारों के कुछ फोटो होते थे। यहाँ के एक-दो जैन परिवारों से उनकी बहुत मित्रता थी। मदनलाल के कहने पर वह अपने घर से पुरानी फोटो लेने चला गया और थोड़ी देर बाद पुराने कागज़ में लिपटा एक छोटा सा बंडल लेकर आ गया।

उसमें रणछोड़ लाईन के पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर के फोटो व दो अन्य फोटो देखकर ऐसे लगा कि सचमुच हम उस मंदिर में ही खड़े हैं।

खुले से चौक में मंदिर का प्रवेशद्वार। मध्य में सफेद संगमरमर के 11 फुट ऊँचे व 8 फुट चौड़े प्रवेशद्वार पर शिल्पकारी का काम और साथ ही लकंड़ी की देहरी व कपाट भी इतने ही भारी व डिज़ाइनदार। मंदिर का कुल फ्रंट करीब 36-40 फुट था।

हमें जैन मंदिर तो नहीं मिला, यहाँ के फोटो हमें ज़रूर मिले।

मैं सोच रहा था कि वक्त क्या-क्या नहीं करा देता। मंदिर तो क्या, वक्त के साथ नदियाँ तक अलोप हो जाती हैं। पीछे रह जाती हैं कहानियाँ, जो धार्मिक किताबों के पात्र बन जाती हैं।

रणछोड़ लाईन-कराची वाला जैन मंदिर। क्या पता कि अब वो हिन्दू मंदिर है और उसमें कोई और मूर्ति विराजमान है। क्या वह ढहा दिया गया है इन 70 सालों में या वहाँ कोई घर बसने लगा है। कोई स्कूल खुल गया है। या कुछ और? इतिहास चुप है। पर कहानी रह जाती है, जैसे इस रणछोड़ लाईन वाले मंदिर की। जो आज वक्त के अथाह

सागर में विलीन हो गया है।

मुनि विद्याविजय जी 1937-39 में कराची पधारे, तब यहाँ जैनों के 60 घर थे। देश विभाजन (1947) के समय ज़्यादातर परिवार पलायन करके भारत चले गए। साल 1965 में यहाँ केवल तीन परिवार ही रह गये थे।

भेड़-बकरी आदि जानवरों की कुर्बानी देना मुस्लिमों का धर्म है। मंदिर के बिल्कुल सामने खुले चौक में ही हर रोज़ जानवरों की कुर्बानी का चीत्कार और फिर उनका माँस भी खुले में लटकाया जाता था। हालात बहुत बिगड़े तो यहाँ से जाते हुए एक गुजराती जैन परिवार, मंदिर की मूर्तियों को भी अपने साथ ले गया और सौराष्ट्र के मोरबी नगर के मंदिर में इन्हें विराजमान करा दिया।

सिंध का भ्रमण करने वाले मुनिराज श्री विद्या विजय जी

इतिहास, तत्त्वज्ञान व आचार संबंधी विषयों पर अनेक विदेशी विद्वानों के सम्पर्क में रहे- जैनाचार्य विजय धर्म सूरि जी के सुयोग्य शिष्य मुनिराज विद्याविजय, जिन्होंने सन् 1937-39 में सिंध प्रदेश में विचरण किया, वे चार मुनियों साथ मारवाड़ शिवगंज से, बालोतरा, बाड़मेर, मीरपुर होते हुए 850 कि.मी. के विहार के बाद सिंध के नगर पारकर, गोडी जी, हाला, हैदराबाद होकर कराची पहुँचे। वहाँ दो चौमासे किए। कराची में जैन लायब्रेरी, होम्यो हॉस्पीटल और महावीर कन्या विद्यालय स्थापित कराये।

सिंध में रह रहे जैनों के धर्म, नीति, मर्यादा, लिबास और रस्मो रिवाज के साथ जैन संघों को संगठित किया। कराची के दो मंदिर, हैदराबाद व हाला के एक-एक मंदिरों की सार-संभाल को व्यवस्थित कराया। जैनों के अलावा अन्य समाजों व बुद्धि जीवियों से भी सम्मान पाया।

तत्कालीन कराची के जैन श्वे. मूर्ति-पूजक संघ के पदाधिकारी थे- श्री छोटालाल खेतसी (प्रधान) और मणिलाल लहेरा भाई (सेक्रेट्री)।

हैदराबाद (सिंध)

लाहौर से कराची का लम्बा सफर, और उस पर थी रणछोड़ लाईन के जैन मंदिर के खो जाने की पीड़ा। अब मैं बिना ज़्यादा आराम किये ही हैदराबाद को जा रहा था। इंसानी घने जंगलों में अकेला ही।

हैदराबाद नगर सिंध सूबे का दूसरा बड़ा शहर है। सिकंदर से पहले इसे 'रुण' या 'अरुणपुर' कहा जाता था। तब यहाँ बौद्ध धर्म का बोल-बाला था। यहाँ के बौद्ध-राजा ने सिकंदर से समझौता कर लिया। यह भी कहा जाता है कि बौद्धों के साथ-साथ, उस समय यहाँ जैन धर्म अनुयायी भी बड़ी संख्या में बसे हुए थे।

मुसलमानों के सिंध पर पहली बार के आक्रमण (मुहम्मद बिनकासम द्वारा) के समय भी यहाँ पर जैनों की बहुत आबादी थी और यहाँ का राजा (दाहिर) भी जैनी था। इसकी पुष्टि नीचे लिखे विवरण से भी हो जाती है-

ELLIOT HISTORY OF INDIA, VOL. I में लिखा है कि -

Muslims first attacked Sindh and found it full of people called 'sramanas', (p.p. 146-158). The ruler of sindh of that time was also a follower of sramnas who observed vow of Ahimsa minutely and had great confidence in this predication (p.p. 158-161)

हैदराबाद में रहने वाले सिंधी भाषा के नामी लेखक जनाब 'ताज जोयो' के ऑफिस में पहुँचा। कमरे में मेज़ पर किताबें, फाइलें और कागज़। उनके बीच बैठे थे- ताज जोयो। सैकड़ों पुस्तकें उनके हाथों से गुज़री होंगी। हज़ारों लोगों से परिचित थे।

'जी, मैं आपके शहर में एक मंदिर की तलाश में आया हूँ, जैन मंदिर। 'यह कहाँ है?'

'यह तो मालूम नहीं। हाँ, इतना पता है कि यह मंदिर हैदराबाद प्राँपर शहर में है।'

'चलो, पता करते हैं।'

उन्होंने तसल्ली दी और अपने परिचित हर लेखक को इस मंदिर के बारे में फोन किये। फिर बताने लगे कि सातवीं सदी के अंतिम दशकों के समय राजा दाहिर की ओर से हैदराबाद का हाकिम 'समुद्र समणी' था जो बौद्धधर्म को मानने वाला था। उन्होंने अपना कोई मंदिर भी बनाया होगा। पर इस वक्त शहर में कोई बुद्ध या जैन मंदिर मौजूद नहीं है। अब तक कितनी सदियाँ बीती होंगी। क्या कुछ नया बना और क्या कुछ पुराना ढह कर ढेरी हुआ। कुछ भी पता नहीं।'

'पर जैनों की पट्टावलियों, ग्रंथों और साधुओं-यतियों के विवरणों में स्पष्ट प्रमाण हैं कि इस शहर में एक श्वेताम्बर जैन मंदिर था। जिसमें एक ही मूर्ति विराजमान थी। मंदिर का द्वार बहुत बड़ा और सुन्दर था। पूरे म़ंदिर में पत्थर और लकड़ी के काम के बहुत बढ़िया आयोजन के साथ रोशनी की भी व्यवस्था थी।' सन् 1937-39 में जैन मुनि विद्याविजय यहाँ आए थे।

'आजकल इस शहर में हिन्दुओं की काफी आबादी है। बहुत अमीर हिन्दू डॉक्टर, व्यापारी, सराफ और अन्य। शहर की राजनीति में इनका बड़ा हिस्सा है।'

'हाँ, थारपारकर के इलाके में आज भी जैन मत को मानने वाले रहते हैं। पर उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। पर वहाँ उनके मंदिर बहुत हैं। पुराने समय के जैन मंदिर, जिनके कारण नगरपारकर पूरी दुनिया में मशहूर है।'

'हो सकता है कि 1947 के बाद वो मंदिर खाली हो गया हो और उसमें कोई स्कूल या सरकारी दफ्तर हो। या किसी को अलॉट हो

गया हो और उसने वहाँ घर बना लिया हो। कुछ भी हो सकता है। क्या यह कोई ऐतिहासिक मंदिर है?'

'नहीं। यह एक छोटा सा ही मंदिर था, जैनों का। पूरे हैदराबाद में एक ही। दूसरे, यह मेरी खोज का हिस्सा है।'

मेरे सामने प्रश्न था कि क्या 70 सालों में एक मंदिर किसी शहर में से खोया जा सकता है। खोया जाने का किसी को पता भी न हो कि वो मंदिर कहाँ है। है भी या नहीं। कहाँ अलोप हो गया हैदराबाद का जैन मंदिर।

मैं इससे पहले कराची की रणछोड़ लाईन से खाली लौटा था। अब हैदराबाद से।

किद्धरों बोल ते सही
मैं तेरी भाल विच हाँ
तू इतिहास दा पात्र हैं।

हाला (न्यू हाला)

हैदराबाद के बाद मेरा अगला पड़ाव हाला था जहाँ के श्वेताम्बर जैन मंदिर की मुझे तलाश थी। हैदराबाद से न्यू हाला तक सैकड़ों कि.मी. का सफर।

इस सफर में मेरी सहायता के लिए ताज जोयो ने हैदराबाद से अपने दफ़्तर का एक व्यक्ति मेरे साथ भेजा था। हाला में हमें सिंधी कहानियों के विख्यात लेखक महमूद बुखारी के सहयोग से जैन मंदिर तक पहुँचना था। उनसे मिल कर हौसला हुआ कि यहाँ हमें निराशा नहीं मिलेगी।

हैदराबाद से मेरे साथ आए व्यक्ति (उनका नाम था जरवार) के साथ हाला के बाज़ार में निकले। बाज़ार से एक गली में पहुँचे। एक छोटी सी गली।

'यह मुझे हिन्दू मुहल्ला लगता है।'

'हाँ, लगता तो ऐसा ही है।'

एक व्यक्ति घर से निकल कर हमारे पास से गुज़रने लगा। जरवार ने पूछा- 'भाई साहिब, यहाँ हाला में कोई जैन मंदिर है?'

'नहीं'।

जरवार ने सिंधी बोली में उसे कुछ कहा, तो उसने अपना नाम मनोज कुमार बताया।

'यह बाएँ हाथ वाला बाज़ार भावड़ा चौक है।'

उसकी बात से मुझे लगा कि अवश्य ही हम जैन मंदिर तक पहुँच जाएँगे।

मनोजकुमार ने कहा कि मैं चौक तक आपके साथ चलूँगा। वहाँ से आप आगे, और मैं पीछे रहूँगा। मैं बोलकर आपको जैन मंदिर की निशान-देही करा दूँगा। उंगली या संकेत नहीं करूँगा।

आगे चलकर, चौक में रुक कर उसने बताया कि ये दाएँ हाथ वाली सबसे ऊँची इमारत जैन मंदिर है। अपनी बात कह कर वह हमसे आगे निकल गया।

मंदिर की इमारत घरों जैसी थी। दरवाज़े पर एक छोटा सा रास्ता जिसके दोनों ओर सीढ़ियाँ उतरती थीं। सीढ़ियों के दरवाज़े भी लकड़ी के थे।

दरवाज़े के बिल्कुल सामने एक कसाई की दुकान। वहाँ बैठे व्यक्ति के सामने कई छोटी बड़ी छुरियाँ और काँटों से लटकाया हुआ माँस-मीट। मैंने उसकी भी फोटो ली।

'आप यह क्या कर रहे हैं?'

'फोटो ले रहा हूँ।'

'किसलिए?'

'इस घर का दरवाजा अच्छा लगा, इसलिए।'

'ऐसे और भी घर हैं इस गली में। पुराने ज़माने के।

यह जैनी भावड़ों का मंदिर था। अब तो इसमें घर है।'

'कौन रहता है इसमें।'

'वो लोग जिन्हें ये अलॉट हुआ है। और कौन रहेंगे?'

'भाई, क्या मैं इसके अन्दर जा सकता हूँ।'

'पता नहीं। इस वक्त मर्द घर में नहीं होंगे। वैसे भी ये पर्दे वाला घर है।' उसकी बात में इन्कार साफ दिखाई दे रहा था।

मैं इसे अन्दर जाकर देखना चाहता था कि यह अन्दर से कैसा है। कितने कमरे, कितना बड़ा। दीवारों के फ्रैस्कोज़, कोई हॉल, मूर्तियों का स्थान। पर अब यह मंदिर नहीं, घर है।

सिंध के हाला नगर का यह मंदिर। यहाँ जैनों की चहल-पहल रहती थी। जैनों के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का यह मंदिर, जहाँ पाषाण की 10 और धातु की 12 मूर्तियाँ थीं। साथ में एक उपाश्रय भी था। हाला में यति जी बुद्धिचन्द्र-ज्ञानचंद्र का प्राचीन ग्रंथों का भंडार भी था। एक जैन स्कूल भी था। राधनपुर, पाली, जैसलमेर से आकर जैन लोग यहाँ बसे थे। मुनिविद्याविजय जब 1937 में यहाँ आए, तो स्थानकवासी व मंदिर-मार्गी जैनों के 25-30 घर यहाँ थे। मंदिर और उपाश्रय भी थे।

मनोजकुमार और जरवार मेरे से अलग क्यों हुए, यह समझाने की ज़रूरत नहीं। यहाँ मौत का खेल होता है। कौनसी गोली, किस दिशा से, किसको लगती है, यह तो गोली लगने के बाद ही पता चलता है। **मौत की परछाइयाँ बहुत गहरी होती हैं। भरे बाज़ार में इंसानियत बेपर्दा हो रही थी।**

हाला का बाज़ार, दुकानें, लोगों की भीड़ और मंदिर के बिल्कुल सामने कसाई और छुरे-छुरियाँ। एक बार फिर से मैं भावड़ा चौक की ओर लौटा। अब मेरे बाईं तरफ हाला का जैन मंदिर और दाईं तरफ कसाई की दुकान थी।

हाला से दो कि.मी. बाहर एक दादावाड़ी का पता लगा था।पर उसका अस्तित्व भी सन्देह के घेरे में है।

अब अंतिम बार हाला के मंदिर को देखा, जिसका द्वार मेरी तरफ नहीं था, बाज़ार में था।

समय की सीमा को भेद कर
अनंत प्रतीक्षा करते मेरे नयन
इतिहास का वही पन्ना खोल
कहीं से तो बोल।

रावलपिण्डी

ऐवें किसे ने आ समझा दित्ता.....

- रावलपिण्डी (श्वेताम्बर, दिगम्बर मन्दिर व स्थानक)
- टैक्सला (भ. बाहुबली, बौद्ध भिक्षु)
- पेशावर, उच्च नगर, कंधार, सिंहपुर, कटासराज
- जैन मुनि व सिकन्दर महान्
- हेमूं (दिल्ली के तख्त पर जैन बादशाह)
- मानदेव सूरि (लघु शांति), पाणिनी
- भावड़ा बाज़ार व स्थानक

रावलपिण्डी में कर्फ्यू का आज दूसरा दिन था। पर मैंने तो हर सूरत में इस्लामाबाद पहुँचना था। चाहे इस कर्फ्यू का मुझ पर कोई असर नहीं होना था, पर एक डर तो था ही। 16 नवम्बर, 2013 का दिन बहुत ही भयानक दिन। सुबह सवेरे अखबार पढ़ते ही दिल काँप गया।

इस भयानक काण्ड को हुए आज तीसरा दिन था। एन.सी.ए. इस्लामाबाद कैम्पस के प्रिंसिपल नदीम उमरतार्ड तथा उनकी रिसर्च-टीम के साथ राजा बाज़ार के चौक डिंगी खूई में मैं भी मौजूद था। जली हुई इमारतें, सड़क पर इंसानी खून के धब्बे, पुलीस, फौज और अन्य सुरक्षा कर्मी जवानों ने इस पूरे इलाके को घेर रखा था। हमारे शनाखनी कार्ड देखकर हमें आगे जाने की आज्ञा दी गई। सड़क पर लगी कनातों से आगे हम भी नहीं जा सकते थे। पर हमारे साथ विदेशी महिलाओं को देखकर फौज वालों में हमें सामने के एक होटल की छत पर जाने की आज्ञा दी।

चौथी मंजिल की छत से सब कुछ साफ दिखाई दे रहा था। करीब

छह कनाल में बनी, एक इमारत मिट्टी का ढ़ेर बनी पड़ी थी। कहीं-कहीं से अभी तक धुआँ निकल रहा था। हमारे पहुँचने से दो घंटा पहले ही मलबे से एक अध-जली लाश निकली थी। राजा बाज़ार की तरफ जले हुए एक बोर्ड पर लिखा था-

"जामा मस्जिद। मदरसा दारुल अलूमल्कुरान,
राजा बाज़ार, फव्वारा चौक, मदीना मार्किट रावलपिंडी"

हाँ, ये सब कुछ यहाँ ही घटित हुआ है। 16 नवम्बर 2013 को जुम्मा मुबारक का दिन। मसीत में जुम्मा हो रहा था और पुराना किला की तरफ से दसवीं मुहर्रम का मुसलमानों के शिया फिरके का मातमी जुलूस था। जुम्मे का खितबा देते हुए मौलाना ने कोई ऐसी बात कह दी जिससे शिया लोग भड़क उठे और देखते-ही-देखते आग और गोली का खेल शुरू हो गया। मदरसा, मसीत और मदीना मार्किट स्वाहा हो गए। सात जन मस्जिद में मरे और 12 लाशें मार्किट के मलबे से निकलीं। अरबों रुपये के माल व जायदाद की हानि हुई।

जैन मंदिर की छोटी सी गुमटी

मदरसा, मस्जिद और मदीना मार्किट की राख के पास एक जैन मंदिर की गुमटी दिखाई दी। लोग भी हैरान थे कि मंदिर के पास की ज़मीन पर ये मदरसा और मार्किट थे। वक़्फ बोर्ड वालों का कहना था कि यह मंदिर हमारी किसी लिस्ट में नहीं है। मीडिया को भी एक शोशा मिल गया।

जैन श्वेताम्बर मंदिर

मस्जिद (मसीत) में रह रहे तथा मदरसा में पढ़ाने वाले मौलाना अशरफ अली से मुलाकात हुई। उन्होंने बताया कि वो और उनका परिवार सन् 1947 से ही अहाते में बने जैन गुमटी के वारसों के इंतज़ार में हैं। बँटवारे के समय जब हालात खराब हुए तो वहाँ रहने वाले जैन परिवार पास वाले इस गुमटी मंदिर की चाबी मुझे (मो. अशरफ अली) सौंप गए। तय हुआ कि जब हालात ठीक होंगे, तो वो लोग आकर मंदिर की चाबी

ले लेंगे। लेकिन ये आज तक नहीं हुआ।

मौलाना नहीं जानते कि वो परिवार अब कहाँ है। किसी धर्म की किताब में यह नहीं लिखा कि दूसरे मज़हब की चीज़ों या प्रतीकों को नष्ट किया जाए। मौलाना कह रहे थे कि आज़ादी से पहले राजा बाज़ार में हिन्दुओं की घनी आबादी थी। जैन फिरका के लोग भी थे। ये गुमटीनुमा मंदिर जैन फिरका के लोगों ने बनवाया था। मस्जिद और मंदिर पास-पास होने से किसी को कुछ गलत नहीं लगा। बंटवारे की आग फैली तो हिन्दुओं को जान बचाने के लिए यहाँ से जाना पड़ा। सन् 1992 के वबाल में भी मेरे परिवार ने जान की परवाह न करके भी, इस मंदिर को दंगाइयों से बचाया व सुरक्षित रखा। (ऐसा लगता है कि यह किसी यति जी (पूज) द्वारा निर्मित कराया गया हो)

मैंने उस होटल की छत से पूरे-पूरे रावलपिंडी का नज़ारा देखा। ऊँचे महल, माड़ियाँ, बड़े-बड़े बाग, गुरुद्वारों के गुंबद, मस्जिदों के मीनार, मंदिरों के कलश सभी इमारतों की पहचान बनी हुई थी। हम और मीडिया वाले छत से नीचे आ गए।

भावड़ा बाज़ार

नदीम उमर के साथ हम सभी पुराने किले की तरफ घाटी चढ़ने लगे। यह पुराना रावलपिंडी है। फिर एक दो मोड़ मुड़कर हम रावलपिंडी के भावड़ा बाज़ार में थे। हर तरफ रौनक। ऊँचे-ऊँचे मकान और छोटी तंग गलियों में, किसी-न-किसी गली में, कोई-न-कोई उदास खड़ा हुआ मंदिर दिखाई दे जाता था।

'ये सारा हिन्दू मुहल्ला है। इसलिए इसकी हर गली में आपको मंदिर दिखाई दे रहा है।' हमारी टीम के किसी सदस्य ने कहा।

हम इन गलियों में से होकर सीधे लाल हवेली में पहुँच गए। वहाँ से लियाकत बाग के अंदर एन.ए.सी. के दफ्तर पहुँचे।

दिगम्बर जैन मंदिर, रावलपिंडी-कैंट

कैंट का दिगम्बर जैन मंदिर आज भी अपने शिखर को ऊँचा किये हुए है। इसका रंग काला पड़जाने के बावजूद भी यह एक विरासती यादगार है, इसके पूजने वालों की। पहली मंज़िल की ईटों की दीवार से ऊपर उठते हुए शिखर का आर्ट वर्क बहुत खूब है। अन्दर मूर्तियों के स्थान में अब घर बस गए हैं।

टैक्सला, पेशावर, पुराना लाहौर, गंधार व उच्चनगर

पाणिनी : रावलपिण्डी से आगे **टैक्सला,** फिर **पेशावर** और उनके बीच है- **पुराना लाहौर,** जहाँ **पाणिनी** का जन्म हुआ। परम विद्वान पाणिनी ने संसार की किसी भी भाषा की सर्वप्रथम व्याकरण की रचना की। फिर इसी धरती पर पैदा हुए शासकों ने उस लोक-भाषा को खत्म ही कर दिया। **टैक्सला** की भी अपनी ही एक कहानी है, जिसके बारे में जैन इतिहासकारों का कथन है कि उनके पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के सुपुत्र बाहुबली टैक्सला के प्रथम राजा थे।

पुस्तकें बेजान कागज़ों पर लिखी जाती हैं। उनकी स्याही और क़लम भी बेजा़न होती है। परन्तु, समय आने पर ये बेजान और बेज़ुबान किताबें बोल पड़ती हैं और अनेक साक्ष्यों, गवाहों के साथ कटहरे में पेश होती हैं।

महमूद ग़ज़नवी के साथ भारत में आए इतिहासकार 'अलबरूनी' ने 'किताबुल्हिंद' में टैक्सला वाले लाहौर के बारे में लिखते हुए किसी **उच्च नगर** का उल्लेख किया है। फिर 'उच्च' नगर इतना 'नीचे' हुआ कि लोगों की स्मृति से ही मिट गया। शोध करने वाले भी इतने भटक गए कि किसी ने इसे 'अच' कहा तो किसी ने अलबरूनी की गप्प कह दिया गवाही देने वाली अलबरूनी की पुस्तक किताबुल्हिंद खुद ही मुजरिम बन गई। लगे हुए दोषों के इन दाग़ों को कौन धोएगा?

और फिर एक दिन किताबों के पृष्ठ उलटाते हुए जैन पुरातन पटावलियाँ ही गवाह बन कर, अलबरूनी की किताबुल्हिंद के पक्ष में खड़ी हो गई।

एक पटावली ने कहा- 'भगवान महावीर के बाद जैन धर्म पंजाब में बहुत फैला। पश्चिमी पंजाब में जैन मुनियों की शाखाओं के नाम आते हैं, जिनमें दो शाखाएँ बहुत विख्यात हैं। एक प्रश्नवाहक (पेशावर) कुल और दूसरी उच्चा-नागर कुल। गवाही तो मुकम्मल थी, पर कच्ची रह गई। पेशावर तो आज भी है, पर ये उच्चा नागर कहाँ गया?

दूसरी पटावली ने कहा कि पेशावर शहर गंधार देश की राजधानी रहा है। ये जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र था। श्वेताम्बर जैनों के 84 गच्छों में गंधार गच्छ का बहुत ऊँचा स्थान था। इस गच्छ ने विक्रमी 14वीं सदी तक इस क्षेत्र में खूब धर्मप्रचार किया। ये दोनों शाखाएँ आचार्य सुहस्ति के कुल में से ही हैं। इनके बारे में विक्रमी 16वीं और 17वीं सदी के अनेक शिलालेख उपलब्ध हैं।

कल्पसूत्र (समय भगवान महावीर से 500 साल बाद का) में उल्लेख है कि आर्य शाँति सिरोदक ने उच्च नागर नामक कुल की स्थापना की। इन शाखाओं का समय वि. तीसरी सदी से पहले का है। उस समय जैन राजा संयमप्रभ का राज था, जिसने अशोक की तरह जैन साधुओं के वेश में कई प्रचारक, जैनधर्म के प्रचार के लिए विदेशों में भेजे। इनके गुरु आर्य सुहस्ति भगवान महावीर के बाद आठवें पाट पर बैठे।

गवाही लम्बी हो गई और कई नए तथ्य भी सामने आए जो इस गवाही को मज़बूत करते हैं। पर अभी तक वह बात बीच में ही रही कि यह उच्च नागर कहाँ है?

उच्च नागर - कुल उच्चनगर नाम के कारण बना। प्रसिद्ध चीनी इतिहासकार फाह्यान और जैन ऐतिहासज्ञ मुनि कल्याण विजय के अनुसार यह नगर टैक्सला के समीप था।

गवाही थोड़ा और आगे बढ़ी।

उच्च नगरी का विवरण 12वीं -13वीं विक्रमी में हुए कल्याणकारी आचार्य जिनप्रभ सूरि ने अपने ग्रंथ **'विविध तीर्थ कल्प'** में बहुत ही सुन्दर ढँग से किया है। उनके अनुसार यह स्थान जैनधर्म का बड़ा तीर्थ था। उच्चनगरी

से मिली पुरातन जैन मूर्तियाँ लाहौर के म्यूज़ियम में सुरक्षित है।

उच्चनगर में जैन यति

श्री समयसुन्दरजी (श्री पूज्य) जैन यति ने वि.संवत् 1667 (ई.सन् 1610) में उच्चनगर में 'श्रावक आराधना' नाम का ग्रंथ लिखा था।

अन्य साक्ष्य के अनुसार बहुत से ओसवाल परिवार राजस्थान से आकर यहाँ बस गए। उस समय यहाँ कई सौ परिवार थे। 13वीं सदी तक ये परिवार यहाँ बसे रहे थे।

मानदेव सूरि (लघुशांति स्तोत्र)

एक और साक्ष्य कह रहा है कि एक बार इस स्थान पर कोई भयानक बीमारी फैल गई। बीमारी टैक्सला तक भी पहुँच गई। उच्चनगर और टैक्सला का फासला सिर्फ 23 मील का तो है। बीमारी बहुत फैली। आचार्य मानदेव सूरि जी ने **लघु शाँति स्तोत्र** नाम के मंत्र की रचना की और लोगों को इस भयानक बीमारी से छुटकारा मिला।

सिकंदर और जैन मुनि

एक और ग्रंथ ने अपनी गवाही इस तरह दी कि आओ थोड़ा पीछे चलते हैं। जब सिकंदर महान ने (326 ईसा पूर्व) यूनान से आकर इस नगर पर आक्रमण किया तो यहाँ उसका मिलन जैन मुनि कल्याण जी से हुआ। मुनि जी की बातों से सिकंदर बहुत प्रभावित हुआ। यहाँ तक कि वह मुनि जी को अपने साथ ले गया। यूनानियों ने उनका नाम 'काणसी' लिखा है। उनकी समाधि ऐथनूज़ में है। पेथड़ शाह नाम के एक व्यक्ति ने 84 जैन मंदिर विभिन्न शहरों में बनवाए। इन शहरों में पेशावर और उच्चनगर भी शामिल हैं।

टैक्सला और उच्चनगर में अनेक ऋषि-मुनि पधारे, जिनके नामों ने इतिहास के पन्नों को सुशोभित किया। हम पहले टैक्सला आने वाले आचार्यों का वर्णन करते हैं।

श्री रत्नप्रभ सूरि (विक्रमी संवत् से 212 साल पूर्व); श्री कक्क सूरि (ईस्वी 100 से 117); श्री सिद्ध सूरि (120 से 142); श्री कक्क सूरि (175 से 207); श्री रत्नप्रभु सूरि चौथे (142 से 211); श्री यक्षदेव पाँचवें (253 से 279); श्री कक्क सूरि पाँचवें (279 से 300 ईस्वी)

इसके बाद उच्चनगर

यहाँ जिन आचार्यों ने चरण टिका ये उनमें श्री यक्षदेव (विक्रमी से 150 साल पूर्व)। श्री सिद्ध सूरि आठवें (ईस्वी 685 से 716); श्री जिनचन्द्र सूरि (ई. 1217 से 1221); श्री सिद्ध सूरि (1225 ई.); मुनि शेखर सूरि (1343); श्री जिनदत्त सूरि (1238) और जिनकुशल सूरि (1327 ई.).

एक बार अखबार 'डॉन' के विद्वान कॉलमिस्ट तनवीर मिर्ज़ा से इस उच्चनगर बारे में बात हुई। उन्होंने कहा कि आज इस उच्च नगरी का सिवाय पुस्तकों के अन्य कोई सबूत हमारे पास नहीं है। सारी बात उलझन में है। उन्होंने पूर्ण भगत के किस्से में से पूर्ण भगत के सौतेले भाई राजा रसालू की कहानी सुनाई।

रावलपिंडी के पास एक शहर था मंगयाला, जहाँ क़ा जालिम राजा प्रतिदिन एक इंसान को खाता था। ये वो ही मंगयाला है, जहाँ एक बार सम्राट अशोक ने महात्मा बुद्ध के जन्मदिन पर भूखे शेर के बच्चों के आगे अपना सिर पेश कर दिया था। फिर इस घटना की याद में यहाँ एक स्तूप बनाया गया।

मंगयाला के ज़ालिम शासक और उससे मुकाबला करने वाले राजा रसालू की कहानी ('किस्सा पूर्ण भगत') बहुत लम्बी है। अन्त में रसालू रावलपिंडी और अटक की पहाड़ी खेड़ा-मूर्ति में आके बस गया। उस काल में इस जगह पर जैनधर्म का एक मंदिर भी था। ये उस समय की बात है जब इस सारे क्षेत्र में बौद्ध धर्म का राज था। इस जैन मंदिर की यादगारें, अवशेष और यहाँ से मिलने वाली मूर्तियाँ लाहौर के अजायबघर में मौजूद हैं।

खेड़ामूर्ति, पपनाखा, सिंहपुरा, कटासराज

तनवीर मिर्ज़ा की बात सुनकर मुझे पूर्ण भगत की सगी माँ अच्छराँ का मायका शहर **पपनाखा** याद आया जहाँ आज भी श्वे. जैन मंदिर पूरे गाँव के घरों से ऊँचा खड़ा है। जैन श्वेताम्बार मंदिर जहाँ भगवान सुविधिनाथ की पूजा होती थी। भगवान सुविधिनाथ जैनधर्म के नौवें तीर्थंकर हैं।

बात एक बार फिर भूल-भुलैय्या में पड़ गई। उच्चा नगर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते खुद मैं ही कहीं खो गया। ईसा की 13वीं या 14वीं सदी तक जिस शहर के पैरों के निशान मिलते रहे हैं, फिर वो निशान कहाँ खो गए? क्या खेड़ामूर्ति पहाड़ वाला जैन मंदिर उसी उच्चानगर का मंदिर है? यह प्रश्न अभी तक प्रश्न ही बना हुआ है।

मियाँ अतीक़ पाकिस्तान के युवा आर्कियोलोजिस्टों में हैं। उन्होंने अपने सीनियर आर्कियोलोजिस्ट जनाब मुज़फ्फर चौधरी के बारे में बताया, जिनका सारा काम ही जैनधर्म के पुरातन टीलों पर है। उन्होंने फोन पर बताया टैक्सला, रावलपिण्डी और चकवाल के क्षेत्र में अब तक मिलने वाले जैन टीलों में सबसे महत्त्वपूर्ण टीला (टिब्बा) हमें कटासराज के समीप मिला है। यहा गाँव है सिंहपुरा। 'सिंह' संस्कृत के अक्षर हैं और इनका अर्थ है शेर। इस टीले (टिब्बे) की खुदाई के समय मूर्तियों-अवशेषों का सबसे बड़ा भण्डार मिला जिसे 26 बैल-गाड़ियों में लाद कर लाहौर लाया गया। फिर इसमें से बहुत सारा सामान देश से बाहर चला गया।

उनकी बातें सुनकर मुझे पुरातन पंजाब में जैनधर्म वालों के ये संदर्भ याद आ गए :-

महाराजा कुमारपाल जिनका राज 11वीं - 12वीं सदी ईस्वी बताया जाता है, उसने जैनधर्म को अपने पूरे राज का सरकारी धर्म बनाया। उसके राज्य-क्षेत्र में कटासराज और उच्चानगर भी थे। इसी राजा ने आचार्य हेमचन्द्र मुनि जी के उपदेश से 1440 नये मंदिर बनवाए और 1600 पुराने मंदिरों की मरम्मत कराई।

कटासराज के पास ये टीला (टिब्बा) सिंहपुरा आज भी विद्यमान है। इसकी दूरी टैक्सला से 23 मील के करीब है। हो सकता है कि अबूरेहान अलबरूनी गंडवाले लाहौर से चलकर यहाँ आया हो। क्योंकि उसका कटास-राज में रहना तो निश्चित है, जहाँ उसने संस्कृत पढ़ी और 'किताबुल्हिंद' लिखी।

अपने ग्रंथ 'मध्य एशिया और पंजाब में जैनधर्म' में श्री हीरालाल दूगड़ लिखते हैं- 'चतुर्विंशती जैन महातीर्थ' ग्रंथ में श्री जिनप्रभ सूरि ने सिंहपुरा में श्री नेमिनाथ और विमलनाथ के मंदिरों का ज़िक्र किया है। 'वि.सं. 1728 (ई.सन् 1672) में जैन यति कीर्तिसमुद्र ऋषि ने सिंहपुर में कई जैन ग्रंथों की प्रतिलिपि लिखी थी।

'एलेगज़ेंडर कनिंघम इस नतीजे पर पहुँचा था कि यह सिंहपुरा आजकल कटासराज (अथवा कटाक्ष) जेहलम नदी के किनारे पर है और सिखों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान भी हैं।'

'डॉ. वूल्हर की प्रेरणा से डॉ. स्टाईन ने उन जैन मंदिरों का पता लगा लिया।'

"Sir Aural Stien, the then Principal, Oriental College, Lahore, Peronally visited the place in 1889 A.D. and discovered the remains of Sinhapur Jain Temple, buried near Murti, a village two miles from katas, and collected from excavation a huge mass of idols which were brought to Lahore in 26 Camel Loads and were deposited in control of Punjab Museum."

रावलपिण्डी शहर का पुराना नाम रावल+पिण्डी। यहाँ रावलों की बस्ती थी। जब यह शहर बसा तो रावल क़बीले के सरदार का नाम सतोगुण था। उच्चानगरी में ओसवाल राजस्थान से आकर बसे। इनका धर्म श्वेताम्बर जैन था। पिंडी के रावलों को रावल जोगी भी कहा जाता है, ये बहुरूप-धारी और लोगों को धोखा देते हैं। बाद में इन्होंने अपने आपको रावल मुग़ल कहलाना शुरू कर दिया। ओसवालों के साथ एक क़बीला अग्रवाल नाम का भी है जो कि दिगम्बर जैन है। ये सभी गुजरात, राजस्थान के रहने वाले बताये जाते हैं।

डैण्ज़ल एबटसन ने 'पंजाब कास्ट्स' शोधग्रंथ में काफी विवरण दिये हैं- 'श्रीमाल, खण्डेलवाल, अग्रवाल, ओसवाल, भावड़े और रावल। ये अपने पुराने कार्य-व्यवहार और रीति-रिवाजों से आपस में बहुत मिलते जुलते हैं। पूज यति मठधारी साधु-जोगी जंतर, मंत्र, दवाई, जादू, हाथ देखना आदि करते हैं।'

भावड़ा बाज़ार है असली रावलपिंडी (क्या रावल कभी जैन थे?)

किताबों के पृष्ठों को उलटाते और उनसे बातें करते हुए मेरे मन के कोने में एक प्रश्न पैदा हुआ कि क्या ये रावल लोग मुसलमान बनने से पहले जैन थे? श्वेताम्बर जैन? रावलपिंडी का असल और सब से पुराना इलाका ये भावड़ा बाज़ार ही है। यदि रावल और ओसवाल आपस में संबंधी थे; दोनों जैन धर्म को मानने वाले थे, तो फिर हो सकता है कि ये उच्च नगरी को छोड़कर यहाँ आकर बस गए हों, जहाँ बाद में ये बड़ा शहर रावलपिंडी बस गया।

इस्लामाबाद में घूमते हुए मुझे हमेशा ही ये ख्याल आता है कि धरती के कुछ भागों को सदा ही राजधानी होने का मान प्राप्त होता है। जैसे दिल्ली और टैक्सला। वर्तमान में इस्लामाबाद और टैक्सला के मध्य एक मारगलाह पहाड़ी है। टैक्सला मारगलाह से उधर तो बौद्ध भिक्षुओं की तपस्या भूमि हज़ारों साल पुरानी गुफा इस्लामाबाद में है।

इस्लामाबाद पाकिस्तान की राजधानी और उसके साथ लगता है रावलपिंडी शहर, और उसमें है भावड़ा बाज़ार।

जैन स्थानक

आज तो मैं केवल जैन मंदिर को ढूँढ़ने ही आया था। पर असल में यह जैन स्थानक है। यह भावड़ा बाज़ार के मुहल्ला भावड़ियाँ में आज भी मौजूद है। एक बहुत ऊँची इमारत अब तो ये केवल नाम और शकल का ही है; वैसे ये किसी का घर है। घर में रहने वाले आपको अन्दर भी नहीं आने देते। मैं गली में खड़े होकर बाहर के गेट के चित्र बनाने

लगा, तो इतने ही में एक युवक मेरे पास आ गया।

'बच्चे यारा, मैं यहाँ किसी घर की छत पर जा सकता हूँ, जहाँ से मैं यहाँ के फोटो ले सकूँ?'

'हाँ हाँ। क्यों नहीं। आ जाओ, ये हमारा ही घर है।' उसने बड़ी फुर्ती से घर का गेट खोल दिया और मुझे अंदर ले गया।

छत पर रोशनी और खुला आकाश। दूर तक घरों की छतें। हर छत की अपनी कहानी। मेरे सामने 'श्वेताम्बर जैन स्थानक' अपनी पूरी शान से खड़ा था समय ने दीवारों का रंग बदल दिया, पर और कोई बदलाव नहीं। तस्वीरें बना कर छत से नीचे उतरा और उनसे आज्ञा लेकर जैन स्कूल को ढूँढ़ने लगा।

टेढ़ी-मेढ़ी तंग गलियाँ। खूबसूरत घर। हर घर का दरवाज़ा मुझे बुलाकर अपनी कहानी सुनाना चाह रहा था। एक घर पर लगी तख्ती ने तो मुझे पकड़ ही लिया। "लाला रामलुभाया शाह, कार्तिक सं. 1967 विक्रमी।" मैंने हिसाब लगाया कि ये ईस्वी सन् 1910 हुआ। क्या कुछ नहीं देखा होगा इस घर ने। यह सोचकर ही रोंगटे खड़े हो गए।

किसी किताब में पढ़ा था कि पंजाब में कुल पाँच परम्पराओं की पटावलियाँ थीं। पहली श्वेताम्बर मूर्तिपूजक तपागच्छ, दूसरी लौंका गच्छ, तीसरी उत्तरार्द्ध गच्छ, चौथी नागौरी गच्छ और पाँचवीं खरतर गच्छ। पंजाब में तपा गच्छ काफी प्रचलित रहा। फिर ये मूर्तिपूजक भी हो गए। यानि श्वेताम्बर जैन स्थानकवासी परम्परा। अब इसके भी तीन भाग बताए जाते हैं। श्री पूज अमरसिंह जी की परम्परा; आचार्य गंगाराम जी की परम्परा और आचार्य रतीरामजी की परम्परा। पंजाब की जैन स्थानकवासी परम्परा भी भगवान महावीर से जा मिलती है।

गलियों में घूमता हुआ और लोगों से पूछता हुआ मैं झंगी मुहल्ला पहुँचा जोकि भावड़ा बाज़ार का ही हिस्सा है। गली में ही एक सज्जन से जैन स्कूल के बारे में पूछा। जवाब मिला कि शायद ये स्कूल झंगी मुहल्ले में है, आप उधर तलाश करें। एक खुली जगह फिर एक बन्दे को पूछा

तो उसने कहा कि आपने किसको मिलना है?

'असल में मुझे यहाँ एक स्कूल की तलाश है, जिसे जैनी स्कूल कहा जाता है।'

'भाई साहिब, आप उसी स्कूल के आगे तो खड़े हो।'

अंग्रेज़ी बनावट की इस इमारत पर अंग्रेजी, उर्दू और हिन्दी में लिखा था :-

'फ्री जैन कन्या पाठशाला, रावलपिंडी 1935 ई.।'

ये हाई स्कूल था। इसके बाद मैंने प्राईमरी स्कूल को भी ढूँढ़लिया। यहाँ की जैन लायब्रेरी का तो अब अस्तित्व ही नहीं है।

रावलपिंडी में जैन यति

रावलपिंडी में जैन यतियों का अपना निश्चित स्थान (डेरा) था। यति (श्री पूज्य) इस क्षेत्र में धर्मप्रचार करते थे। वि.सं. 1758 (ई.सन् 1701) में यति दाना ऋषि ने यहाँ कुछ जैन साहित्य की रचना की थी।

बहुत संभव है कि राजा बाज़ार, फव्वारा चौक-मदीना मार्किट वाले मदरसा दारुल अलूम कुरान के पास स्थित (ऊपर लिखित) गुमटी जैसा लघु जैन मंदिर का जैन यतियों के डेरे से कोई लिंक जुड़ता हो।

दिल्ली के बादशाह हेमूँ जैन

इतिहास गवाह है कि श्वेताम्बर फिरका के लोगों के मुग़लों के साथ, और उससे पहले कई मुस्लिम शासकों के साथ अच्छे संबंध रहे थे। उस काल में अनेक अच्छे-अच्छे मंदिर बने। धर्मप्रचार हुआ। इसी का उदाहरण है कि सन् 1421-23 ई. में मुबारक शाह के समय हेमचन्द्र दिल्ली का पहला बादशाह बना। उसने अपने समय में बहुत सारे मंदिर बनवाए। यह हेमचन्द्र, इतिहास में हेमूँ जैन के नाम से जाना जाता है।

आत्माराम जी (विजयानंद सूरि)

गुजराँवाला के श्री आत्माराम जी की जीवनकथा कई बार याद आई। मुनि जीवनलाल जी से साधु दीक्षा ली। कुछ ही समय में आपने सारे जैन

आगमों को जान लिया और गुरु की आज्ञा लेकर अपना अलग प्रचार करने लगे। जैनधर्म में आई गिरावट और पाखण्डों के खिलाफ आपने आवाज उठाई। उस समय जैनों में लड़कियों को नहीं पढ़ाया जाता था। साधु जीवन में आपने शिक्षा का प्रचार किया। जहालत भरे रस्मों-रिवाजों को हटाया। लोगों की सोच को बदला। पूरे पंजाब में जागृति आई। पंजाब के अनेक शहरों में मंदिर आपकी प्रेरणा से बने।

श्री आत्माराम जी महाराज और उनकी परम्परा ने, विभाजन से पहले और बाद में, पंजाब में धर्म की प्रफुल्लता के लिए जो कार्य किये, वो किसी और के हिस्से नहीं आया।

मैं विचारों से बाहर आया और देखा कि मैं रावलपिंडी के पुराना किला और भावड़ा बाज़ार के चौक में था। मेरे एक तरफ हिन्दू मंदिर का कलश, नीचे दुकानें, दूसरी तरफ घर। सामने की गली में नज़र पड़ी तो उस इमारत पर मुस्लिम शिया फिरके का काला झण्डा और दूर सिरे पर पंजे का निशान।

इतने में मैं डिंगी खूई वाली सीधी सड़क पर था। उसी चौंक में। सामने कनातें नज़र आ रही थीं। इन कनातों के पीछे सड़ी हुई मदीना मार्केट। मदरसा दारुल अलूम तालीमुल्कुरान का मलबा। और इस जले हुए मलबे में से निकला छोटा सा मंदिर, जो वक़्फ बोर्ड की लिस्टों में नहीं। और आज के अखबारों की सुर्खियों में था, श्री महावीर का फरमान -

कोई बुद्धिशाली व्यक्ति किसी को कतल नहीं करता। ना वो कतल करने का कारण बनता है। न ही वो चाहता है दूसरे भी किसी को कतल करें।

रावलपिंडी की भावड़ा आबादी 1947 के बाद भारत में अधिकतर मेरठ-दिल्ली व अन्य कुछ स्थानों में अपने कारोबार-घरबार सेट किये हैं। धार्मिक व सामाजिक सरोकारों में आगे रहते हुए, ये परिवार फल-फूल रहे हैं।

टैक्सला (तक्षशिला)

20 कि.मी. में फैले पुरातन टैक्सला के खण्डरात का चक्कर लगाकर मैं वहाँ खड़ा हूँ, जहाँ किसी समय अति भव्य, कलात्मक व आलीशान जैन मंदिर का कलश आसमानी बादलों की गोद में खेला करता था। टैक्सला का रंगरूप बदल गया है। बेहाल और उदास खण्डहरों को देख कर इतिहास के अतीत का स्मरण तो होता ही है, साथ ही रोना भी आता है।

पाकिस्तान के शहर रावलपिंडी से 20 मील दूरी पर सरायकाला रेल्वे स्टेशन से थोड़ी दूर पुरातन टैक्सला नगर है, जो 12 मील के घेरे में फैला हुआ है। पहाड़ की तराई और हरो नदी की नज़दीकी इस स्थान को रमणीय बनाते हैं मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया के देशों से व्यापारिक संबंधों के कारण यहाँ बहत खुशहाली थी।

पुरातन तक्षशिला को अंग्रेज़ों ने टैक्सला नाम दिया। बौद्धों ने इसे गांधार की राजधानी माना है और जैन ग्रंथों में तक्षशिला को भगवान ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली के राज्य की राजधानी कहा गया है। ऐसा भी वर्णन है कि भगवान ऋषभदेव छद्‌म अवस्था में यहाँ पधारे थे।

तक्षशिला का विश्वविद्यालय अपने समय में बहुत प्रसिद्ध था। अति विशाल व समृद्ध विश्वविद्यालय में विदेशों तक के विद्यार्थी पढ़ने आते थे।

ई.सन् 223 में तक्षशिला में फैली अति भयानक बीमारी को शांत करने के लिए, श्रावकों की विनती पर आचार्य मानदेव सूरि ने संस्कृत में लघु शांति स्तव की रचना की थी।

तक्षशिला के ध्वंस होने पर वहाँ के जैन मंदिर भी मलबे का ढेर बने। ऐसा भी वर्णन आता है कि जैनों और बौद्धों ने मंदिरों की मूर्तियों को जमीन में दबा दिया था।

पुराने स्तूप और मंदिरों के खण्डहरों को देखते-देखते आदमी थक जाता है। ये 12 मील (20 कि.मी.) तक फैले हैं।

जैन मंदिर के अवशेष

टैक्सला के इन्हीं खण्डहरों में एक अति विशाल जैन मंदिर के भग्न हुए अवशेषों का भी ढेर है। इन अवशेषों को देखकर, ढहे हुए इस मंदिर की विशालता, ऊँचाई और सुन्दरता का अन्दाज़ा ही लगाया जा सकता है।

जैन टैम्पल टैक्सला का बोर्ड

इस पुरातन जैन मंदिर के भग्न हुए अवशेषों और मलबे को पाकिस्तान सरकार ने अपने संरक्षण में लिया हुआ है। और वहाँ पर पुरातत्त्व विभाग ने अंग्रेज़ी में एक तख्ती (बोर्ड) भी लगाया हुआ है, जिस पर लिखा है- 'जैन टेम्पल, टैक्सला'।

नज़दीक ही एक अन्य बड़े सरकारी नोटिस बोर्ड में टैक्सिला के इस जैन मंदिर के इतिहास का वर्णन है कि-

'टैक्सिला पुरातन समय में जैन धर्म का बहुत बड़ा व विख्यात केन्द्र था। मौर्य काल में यहाँ पर बहुत विशाल जैन मंदिर था। जिस का घेरा पूरे क्षेत्र में सबसे बड़ा था। पास में पानी के दो ताल थे।'

'खुदाई में मूर्तियों, स्तम्भों व अन्य अवशेषों के साथ ही क्रिस्टल का एक बड़ा कास्केट (डब्बा) भी था, जिस में पवित्र स्मृति चिन्ह (RELICS) रखे हुए थे। ऐसा माना जाता है कि 'मल्ल' राजाओं ने इस कास्केट में ये स्मृति-अवशेष सुरक्षित किये थे.....।'

कटासराज, सिंहपुर, मूर्तिगाँव

कटासराज एक प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ है। इस तीर्थ की वार्ता भगवान शिवजी - पार्वतीजी से जुड़ती है। शिवजी के आँसू की एक बूँद तो यहाँ की धरती में समा गई, पर पवित्र आँसू की इस बूँद से धरती माँ के पेट से जो चश्मा फूटा, वह कटासराज तीर्थ का पवित्र ताल बना। इसी ताल के साथ है अति सुन्दर कशमीरी कला के मंदिर और प्राचीन चश्मा।

उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान के हसन अब्दाल क्षेत्र में, इस तीर्थ के समीप ही सिखों का श्री पंजा साहिब तीर्थ है।

ऐसे वर्णन मिलते हैं कि इस कटासराज तीर्थ से सटे हुए, बिल्कुल आस-पास कुछ जैन मंदिर तीर्थ भी थे। इनमें एक है 'सिंहपुर', जहाँ पाताल लिंग नामक श्रीनेमिनाथ भगवान का मंदिर था। श्री जिनप्रभ सूरिकृत 'विविध तीर्थकल्प' में उल्लेख है-

'श्री सिंहपुरे लिंगाभिधः श्री नेमिनाथ.....।'

भारतीय पुरातत्त्व के पितामह एलेग्ज़ेंडर कनिंघम के अनुसार यह सिंहपुर आजकल कटास के निकट होना चाहिए। वैसे कटासराज के यात्रा विवरणों में, इस तीर्थ कॉम्प्लेक्स के पास ही एक छोटे से जैन मंदिर का भी ज़िक्र होता है।

ईस्वी सन् 630 में भारतभ्रमण के लिए चीन से आए हुएनएंग ने सिंहपुर के क्षेत्र में जैन धर्म को पालने वालों का विस्तृत वर्णन किया है। वहाँ जिन श्रमणों, श्रावकों, देव मंदिरों व मूर्तियों का यात्री ने वर्णन किया है, वे श्वेताम्बर जैन परम्परा से मेल खाते हैं। तथा जिस स्थान में इन मंदिरों के अवशेष मिले थे, उस स्थान का नाम पाकिस्तान बनने से पहले

'मूर्ति ग्राम' था। सिंहपुर के खण्डहरों में अधिक मूर्तियाँ होने के कारण इसका नाम मूर्ति प्रसिद्ध हो गया।

खेड़ा मूर्ति गाँव (या गंधारा मूर्ति)

डॉ. वूल्हर की प्रेरणा से डॉ. स्टाईन ने सिंहपुर-मूर्तिगाँव के उन जैन मंदिरों का पता लगा लिया। डॉ. महोदय को मालूम हुआ कि कटास (या कटाक्ष) के दो मील के अन्तर पर मूर्ति नामक गाँव में इन मंदिरों के खण्डहर मौजूद हैं। तब उसने वहाँ पहुँच कर खुदायी शुरू कर दी। बहुत सी जैन मूर्तियाँ, जैन मंदिरों तथा स्तूपों के पत्थर वहाँ से प्राप्त हुए जो 26 ऊँटों पर लाद कर लाहौर लाए गए। इनमें से काफी तो लाहौर के म्युज़ियम में सुरक्षित कर दिये गये, परन्तु ज्यादा तो विदेशों में पहुँचे।

गाँव खेड़ा मूर्ति की धरती के नीचे कितने ही जैन मंदिर तथा बौद्ध स्तूपों के अवशेष दबे होंगे। यहाँ से मिलने वाले कई हथियार तो पत्थर युग के हैं।

खेड़ा मूर्ति (या गंधारा मूर्ति) गाँव के पत्थर कटासराज के हनुमान मंदिर में जड़े गए। सन् 1904 के जेहलम गज़ेटियर में गंधारा मूर्ति के विवरण हैं। डॉ. स्टाईन के यहाँ की खुदाई से वस्त्र पहने हुए दो स्त्रियों की बहुत ही सुन्दर आकृतियाँ मिली थीं, जो इंडिया में एलोरा से मिली मूर्तियों जैसी थीं।

गंधारा मूर्ति तो अब मिट्टी का ढेर ही रह गया है, जिसके बहुमूल्य पुरातन चिह्न व अवशेष डॉ. स्टाईन ले जा चुके हैं।

जेहलम गज़ेटियर में डॉ. स्टाइन ने लिखा है कि 'कटास के इन मंदिरों में कोई एक भी जैन मंदिर नहीं था। यहाँ के एक नए मंदिर को देखा, जो एक पुरोहित ने महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल में गंधारा मूर्ति (मूर्ति गाँव-खेड़ा मूर्ति) से लाए हुए पत्थरों से बनाया था। यहाँ बहुत ही बढ़िया शिल्पकारी वाले दो स्तम्भ हैं, जो इसी शकल में, पूरे-पूरे, मूर्ति गाँव (के जैन मंदिरों) से लाए गए थे। अब ये हनुमान मंदिर है, जिसे सरजूदास का मंदिर भी कहा जाता है। इसकी दीवारों में आज भी गंधारा-मूर्ति गाँव से लाए गए पत्थर दिखाई देते हैं।'

इस ढेरी से मेरा प्रश्न है कि क्या तू उच्चानगरी है? या फिर कटासराज के उस पार की 'उच्छ' को उच्चा नगरी माना जाए।

उच्चानगरी

अल्बरुनी ने जिस नगर को उच्च कहा है, उसे शायद आजकल 'उच्छ' कहा जाता है। गाँव खेड़ा मूर्ति और टैक्सिला के खण्डहरों के बीच में होकर 'कल्लर कहार' से जो सड़क जाती है, वह 'उच्छ' को जाती है।

उच्छ या उच्च नगरी से कटासराज 25-30 कि.मी. और टैक्सिला 40-45 कि.मी. की दूरी पर है।

चीनी यात्री फाह्यान और जैन इतिहासकार मुनि कल्याण विजय के अनुसार उच्चनगरी टैक्सिला के निकट ही है। आचार्य जिनप्रभ सूरिजी ने भी उच्चनगरी का वर्णन बहुत विस्तार से किया है।

वि.सं. 1295 (ईस्वी 1238) में दादागुरु जिनदत्त सूरि जी ने उच्च नगरी में चौमासा किया था।

शोध-अनुशंसनीय एवं संदर्भ ग्रंथ

1. मध्य एशिया और पंजाब में जैन धर्म : हीरालाल दूगड़ : 1979 (दिल्ली)
2. सद्धर्म संरक्षक मुनि बुद्धि विजय : हीरालाल दूगड़ : 1976 (लुधियाना)
3. नवयुग निर्माता आत्माराम जी : विजय वल्लभ सूरि : 2001 (दिल्ली)
4. मारी सिंध यात्रा : मुनि विद्या विजय : विजयधर्म सूरि ग्रंथमाला : 1943
5. उपाध्याय सोहन विजय : पं. हंसराज व महेन्द्रकुमार मस्त : 2017 (दिल्ली)
6. आदर्श जीवन आ. विजयवल्लभ सूरि : कृष्णलाल वर्मा : 2006 (दिल्ली)
7. आत्म अमृतसार : महेन्द्रकुमार मस्त : 2009 (दिल्ली)
8. तारीख पंजाब : कन्हयालाल : 1981 (लाहौर)
9. तारीख पंजाब : सै.मु. लतीफ : 1994 (लाहौर)
10. वादी हाकड़ा के आसार : सद्दीक ताहिर : 1982 (बहावलपुर)
11. पाक. के किले : डॉ. मु. इकबाल : 2010 (लाहौर)
12. गौतम नाल झेहड़ां : आशुलाल : 1995 (मुलतान)
13. तारीख गुजराँवाला : डॉ. फकीर मुहम्मद : 2015 (लाहौर)
14. चोलिस्तान : अहमद गज़ाली : 2007 (लाहौर)
15. पुरातन पंजाब विच जैन धर्म : रविंदर कुमार : 1985 (मालेरकोटला)
16. Pakistan from Khyber to Karachi : Gurmander
17. Encyclopedia India, Pakistan, Bangladesh
18. 5000 years of Pak. Archeological Outline : Robert Eric (1992)
19. A Comprehensive History of Jainism 1000-1600 AD
20. Encyclopedia of Jainism : Narendra Singh : 2001
21. History of Oswals : Chanchal Mal Lodha
22. The Imperial Gazetteer of India
23. Pakistan Archaeology Survey (Pb.) Pak. Arch. Deptt.:Issue 29
24. 17 Gazetteers of Provices / Distts. of Pakistan (1876 to 1992)
25. "Jainrelicsinpakistan_abafna" : abafna.googlepages.com
26. Jaina stupas at Sirkap / Taxila : C.F. Marshal
27. Jaina Studies : Magazine of SOAS, University of London : www.soas.ac.uk (Ch./Director Dr. Peter Flugel)
28. Atmaramji's Memorial in Gujranwala : by Faizan A. Naqvi : Video/ Print 2018
29. Pakistan mein Jain Mandir : 18 Articles in VIJAYANAND : Mahendra Kumar Mast : 2004-2009
30. Reports in Times of India and The Tribune (Newspapers).

Jaina Sites in Pakistan

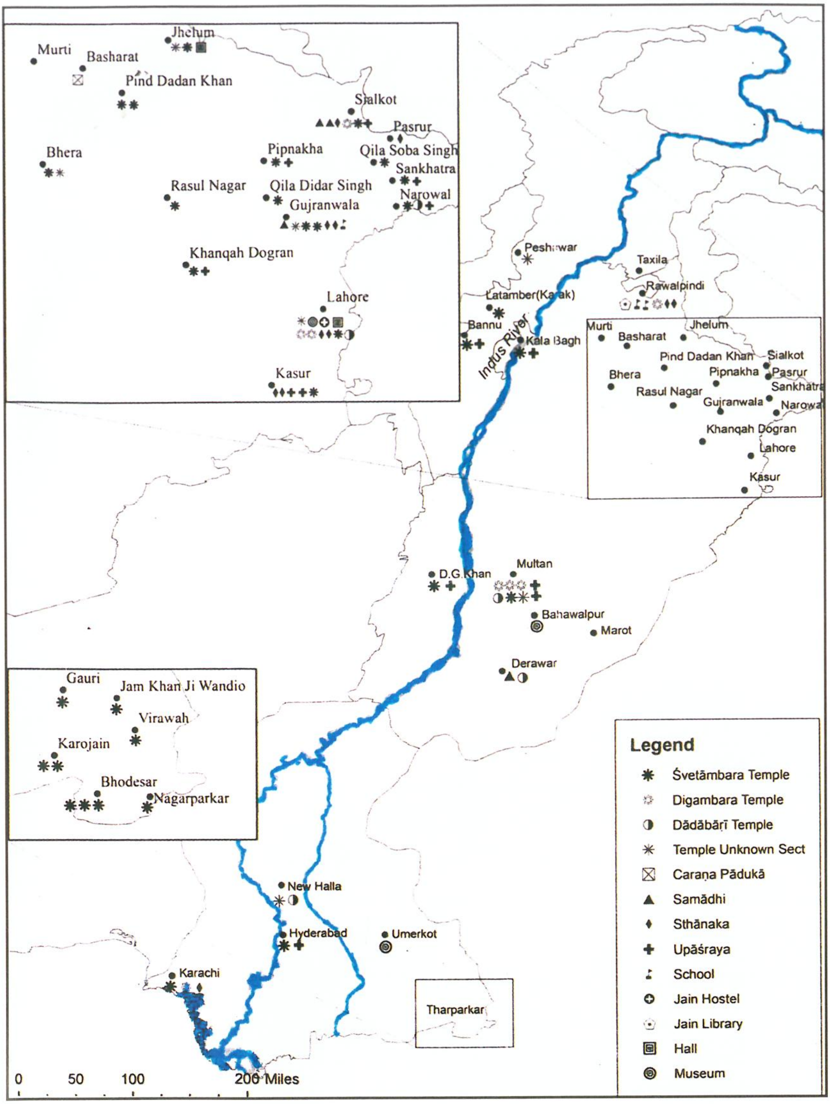

सरस्वती कहलाई हाकड़ा नदी : पंजाब हरियाणा से राजस्थान होते हुए पाकिस्तान के बहावलपुर व सिंध में सरस्वती को - 'हाकड़ा' नदी पुकारा जाता है। देराउर व मरोट आदि नगर व किले इसी हाकड़ा नदी के तटवर्ती हैं।
फ्रांस के विद्वान शोधकर्त्ता Dr. Micheal Danino ने 1900-2000 वर्ष ईसा. पूर्व इन नदियों की स्थिति को स्केल किया है।

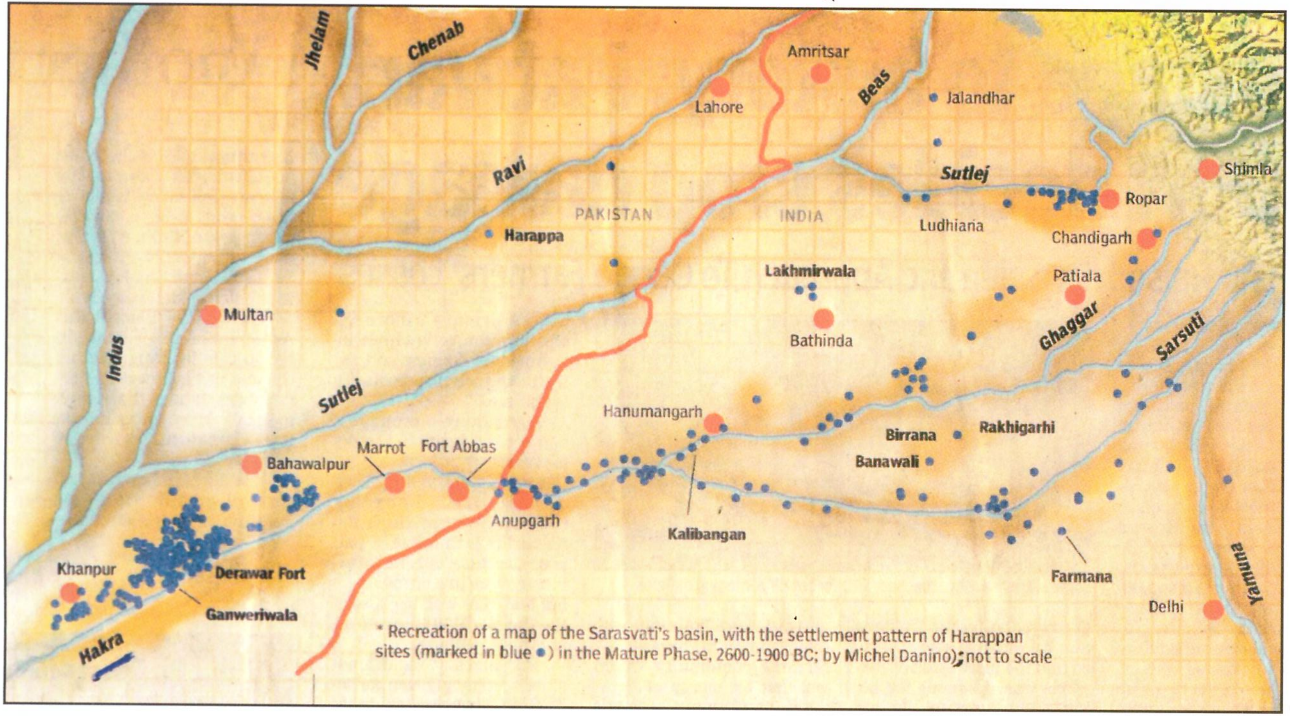

भेरा (ज़िला सरगोधा - पं.)

(भेरा जो भगवान महावीर की चरणरज से पवित्र हुआ)

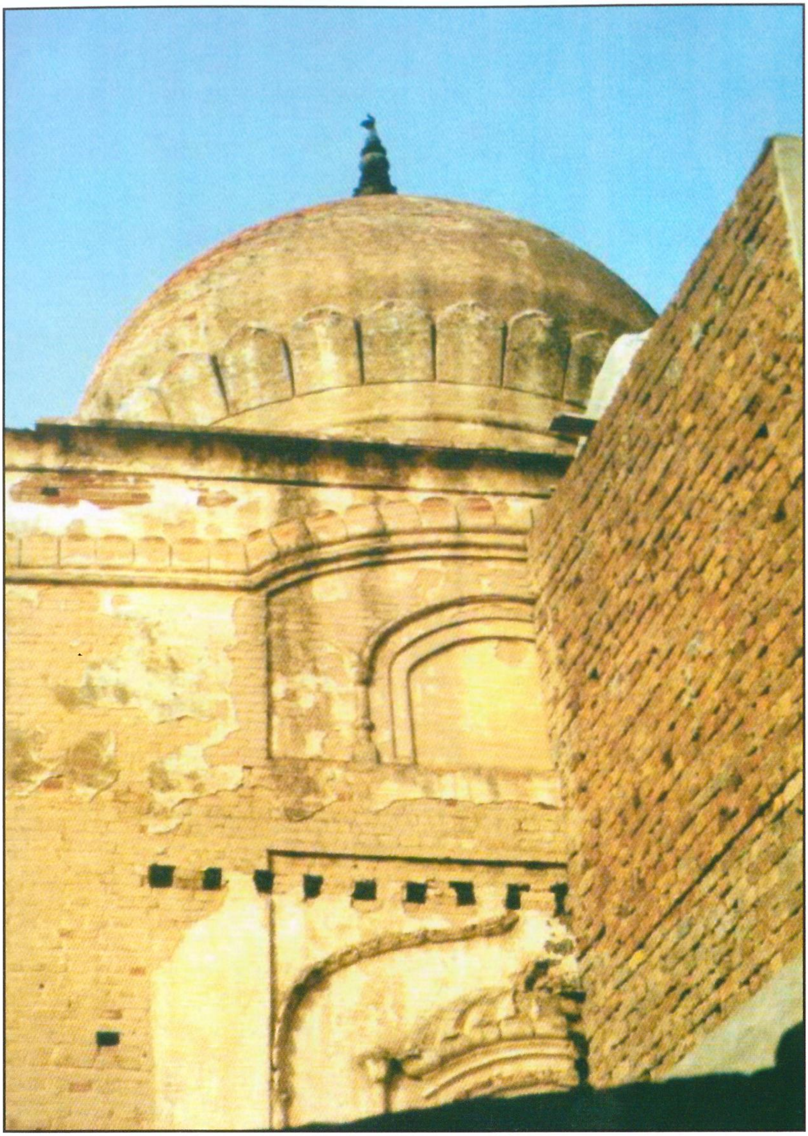

तीर्थंकर चन्द्रप्रभु का 500 वर्ष प्राचीन जैन श्वेताम्बर मंदिर - नया भेरा

बोहड़ जिला-थारपारकर सिंध

श्वे. मंदिर-बोहड़ प्रवेशद्वार, शिखर-कलश तथा बाहर बनी दादावाड़ी

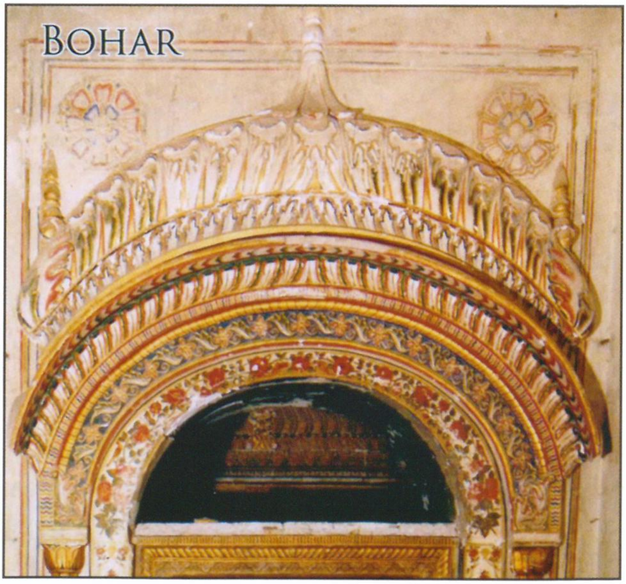

मूलगम्भारा का भव्य प्रवेश-द्वार - बोहड़

बन्नू (फ्रंटियर सूबा)

महा-प्रभावक व चमत्कारिक

मूलनायक श्री अजितनाथ प्रभु, बन्नू

देश विभाजन के समय बन्नू के लाला सुभागचंद शामलाल सुराणा यह मूर्ति ले आए थे। जो वर्तमान में नौघरा जैन मंदिर-दिल्ली में विराजमान है।

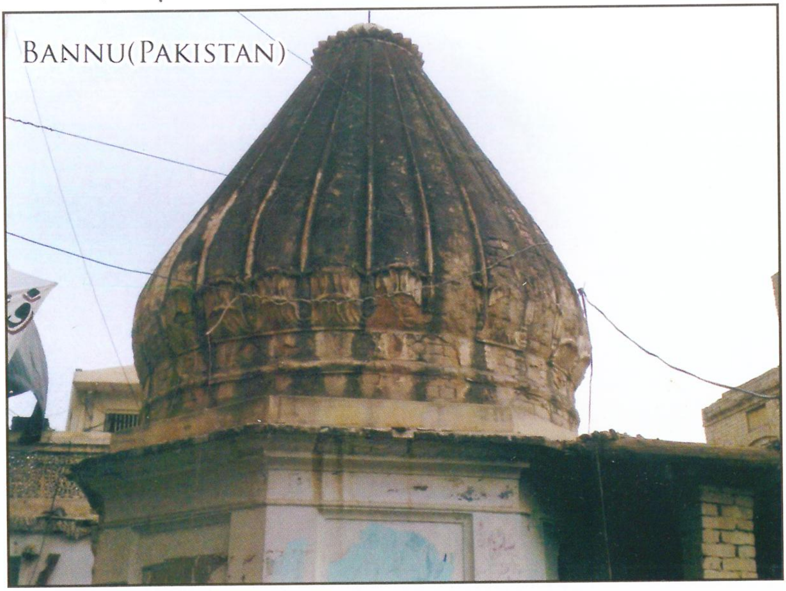

श्री जैन श्वेताम्बर मंदिर - बन्नू

भोदेसर (थारपारकर) - सिंध

श्वेताम्बर जैन मंदिरों के समूह का एक मंदिर भोदेसर

मंदिर का बेस
(प्रक्षाल जल की निकासी)
भोदेसर

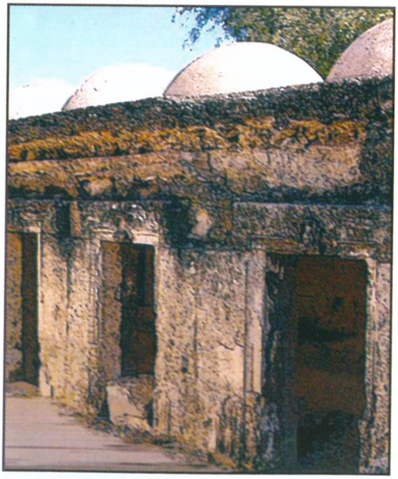

बड़े मंदिर का भीतरी दृश्य
भोदेसर

भोदेसर (थारपारकर ज़िला) - सिंध

मंदिर के शिखर का कलात्मक परकोटा (भोदेसर)

भग्न हुआ जैन मंदिर (भोदेसर)

भोदेसर (थारपारकर)

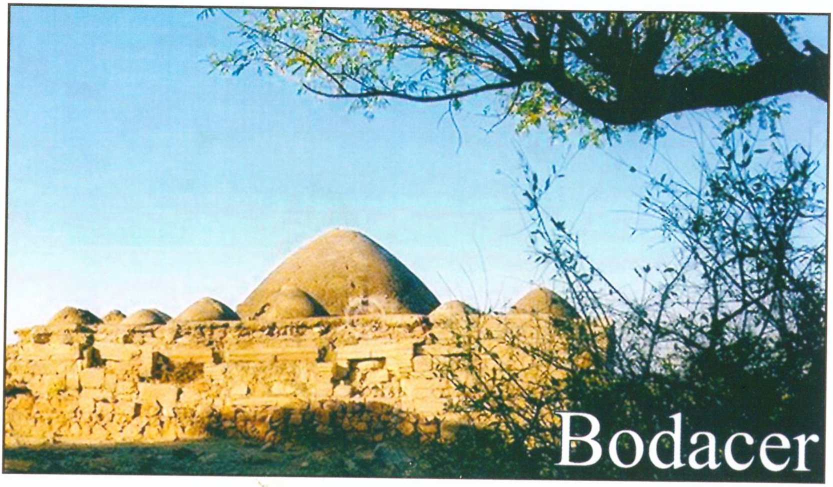

बड़े मंदिर का बाहरी चित्र भोदेसर

मंदिर का मूल गम्भारा

खण्डहर बना हुआ जैन मंदिर
भोदेसर

डेरा गाज़ी खाँ (फ्रंटियर सूबा)

श्री आदिनाथ भगवान

मूलनायक श्री आदिनाथ जी
(की प्रतिमाजी जो
अब श्रीमालों के मंदिर
जयपुर में है)

डेरा गाज़ी खाँ का मंदिर
शिखर

डेरा गाज़ी खाँ

मूल गंभारा में प्रभु की वेदी (डेरा गाज़ी खाँ)

आर्च सहित 12 द्वारों का मंडप (मध्य में मूल गंभारा नज़र आता है)

शहर से बाहर भव्य दादावाड़ी (डेरागाज़ी खाँ)

डेरा गाज़ीखाँ (फ्रंटियाल सूबा) पाक.

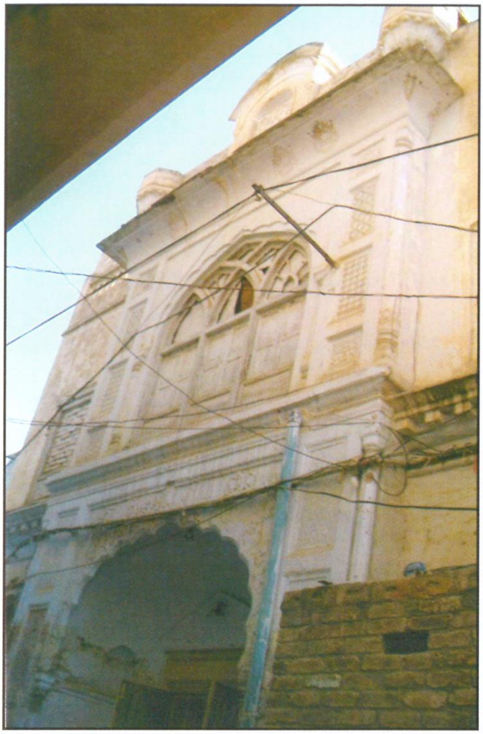

श्री दिगम्बर जैन मंदिर-डेरा गाज़ीखाँ

दिगम्बर जैन समाज-डेरागाज़ीखाँ द्वारा संचालित श्री महावीर जैन कन्या स्कूल
(अब है सरकारी प्राईमरी स्कूल)

देराउर (बहावलपुर स्टेट)

दादागुरु जिन कुशलसूरि जी की पुण्यस्थली (समाधि) के दो चित्र

देराउर - (समाधि दादा गुरु)

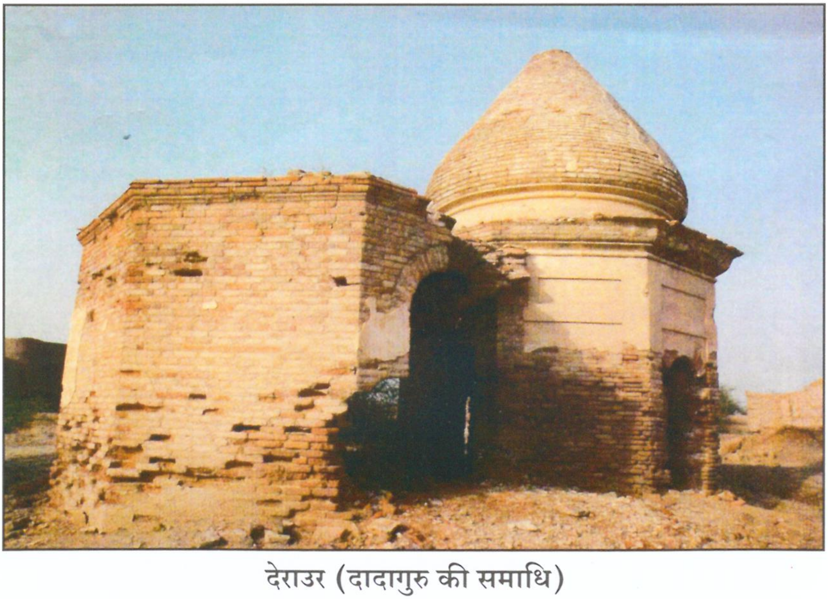

देराउर (दादागुरु की समाधि)

देराउर (बहावलपुर स्टेट)

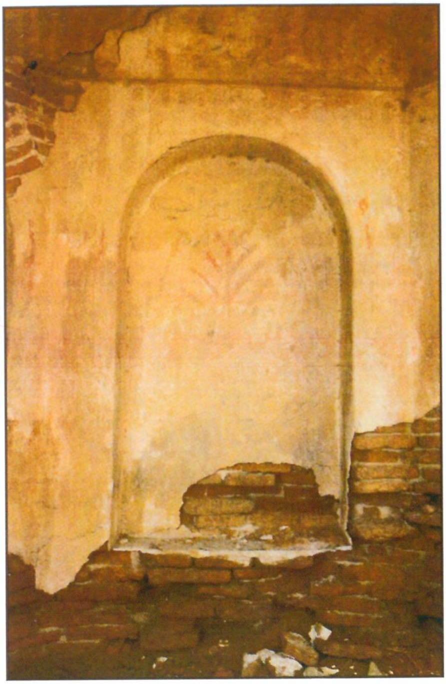

दादागुरु की समाधि के अंदर पुरातन चित्रकारी

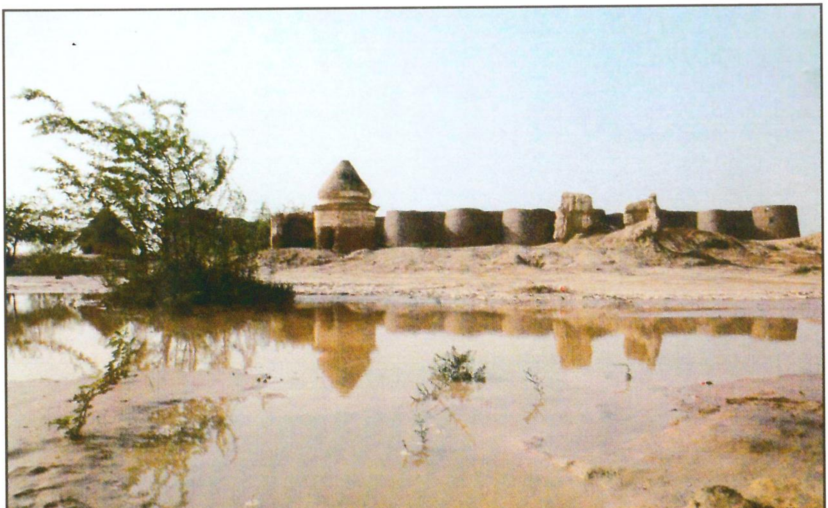

क़िले की दीवार के पास, सरस्वती नदी के तटपर - समाधि स्थल

देराउर

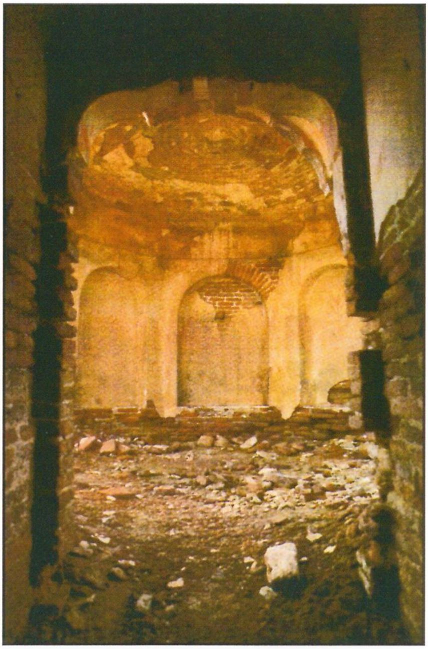

समाधि के अन्दर का दृश्य

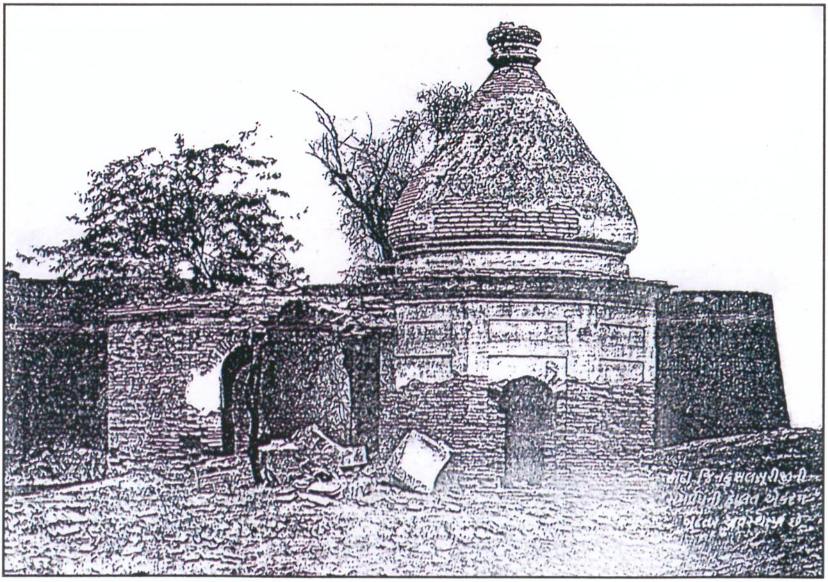

सन् 2001 तक समाधि के शिखर का कलश स्थापित रहा था जो अब टूट चुका है।

गोड़ी पार्श्वनाथ

Gori Temple is Located in Village of Gori, between Islamkot and Nagar Parkar in Tharpakar Distt. At least a dozen major Indian Jain Temples, all of them named Godiji Parshwanath, trace their heritage to Pakistan's Gori temple.

गोड़ी पार्श्वनाथ मंदिर कॉम्पलेक्स

गोड़ी पार्श्वनाथ - शिखर की महीन शिल्पकारी

गोड़ी पार्श्वनाथ

मंदिर की साईड का प्रवेश (गोड़ी)

ऊपर का टूट चुका शिखर (गोड़ी पार्श्वनाथ)

गोडी पार्श्वनाथ

गोड़ी पार्श्वनाथ मंदिर का मण्डप

प्रतिमा स्थान का गोखला (गोड़ी पार्श्वनाथ)

गोड़ी पार्श्वनाथ

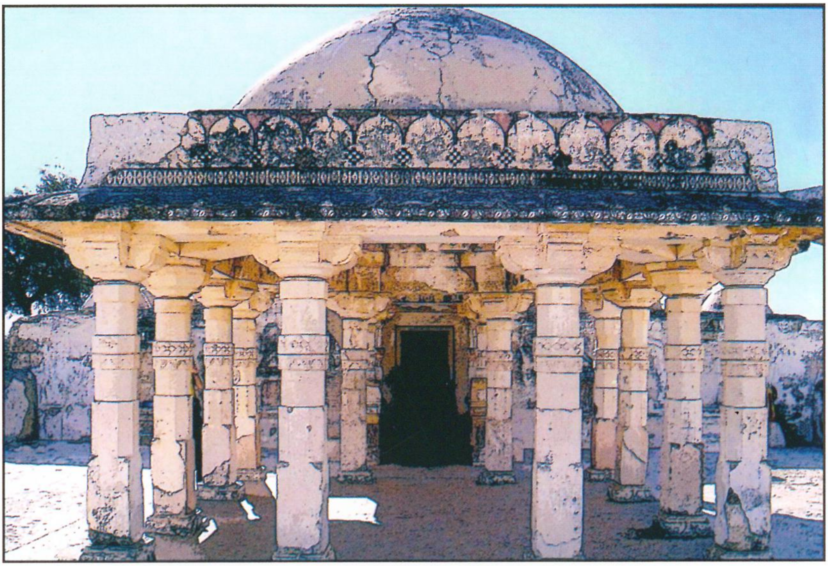

मंडप से दिखाई देता मूल गंभारा (गोड़ी पार्श्वनाथ)

मंडप की विशालता (गोड़ी पार्श्वनाथ)

गोड़ी पार्श्वनाथ

मंडप के गोल गुम्बद (छत) की अनुपम पेंटिंग (गोडी)

मंदिर के पिछली ओर जल-भराव स्थान - गोड़ी

गोड़ी पार्श्वनाथ

मण्डप के गुंबद का क्लोज़-अप (गोड़ी)

भादों की चौदस तथा पारिवारिक खुशी के अवसरों पर गोड़ी मंदिर में, लोकल भील आदि हिन्दू

गुजराँवाला

चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर, भावड़ा बाज़ार

मंदिर का बुलंद शिखर (गुजराँवाला)

गुजराँवाला - (भावड़ा बाज़ार) - जैन मंदिर

मूलनायक प्रभु की वेदी व सिंहासन
भावड़ा बाज़ार-गुजराँवाला

श्री जैन मंदिर - गुजराँवाला

इस वेदी में गुरुदेव की मूर्ति विराजमान थी
भावड़ा बाज़ार-गुजराँवाला

जैन मंदिर, भावड़ा बाज़ार, गुजराँवाला

वेदी के ऊपर कलात्मक सीलिंग

मंडप की दीवारों पर जैन कथाओं के चित्र (गुजराँवाला)

जैन मंदिर, भावड़ा बाज़ार, गुजराँवाला

दीवार के साथ बना गोखला

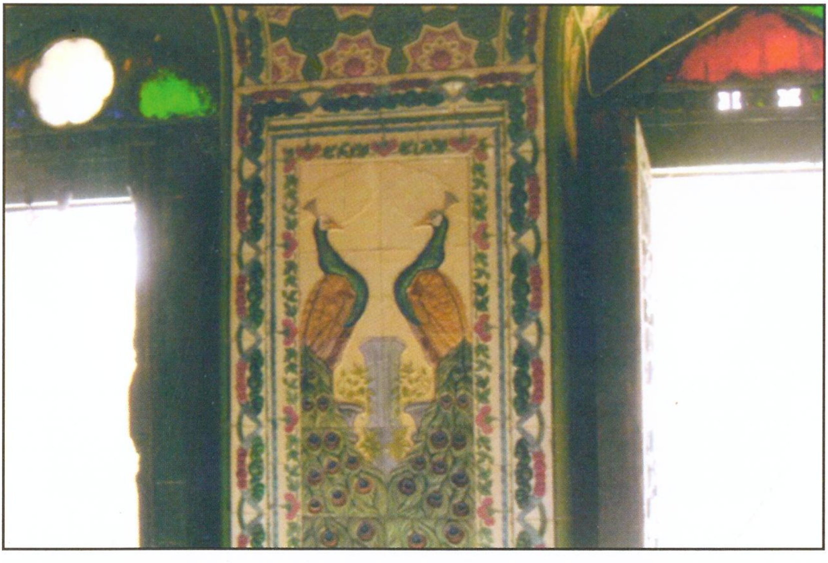

मार्बल में फिलिंग से हुई चित्रकारी का पिल्लर (गुजराँवाला)

श्री गुरु आत्म समाधि मंदिर - गुजराँवाला

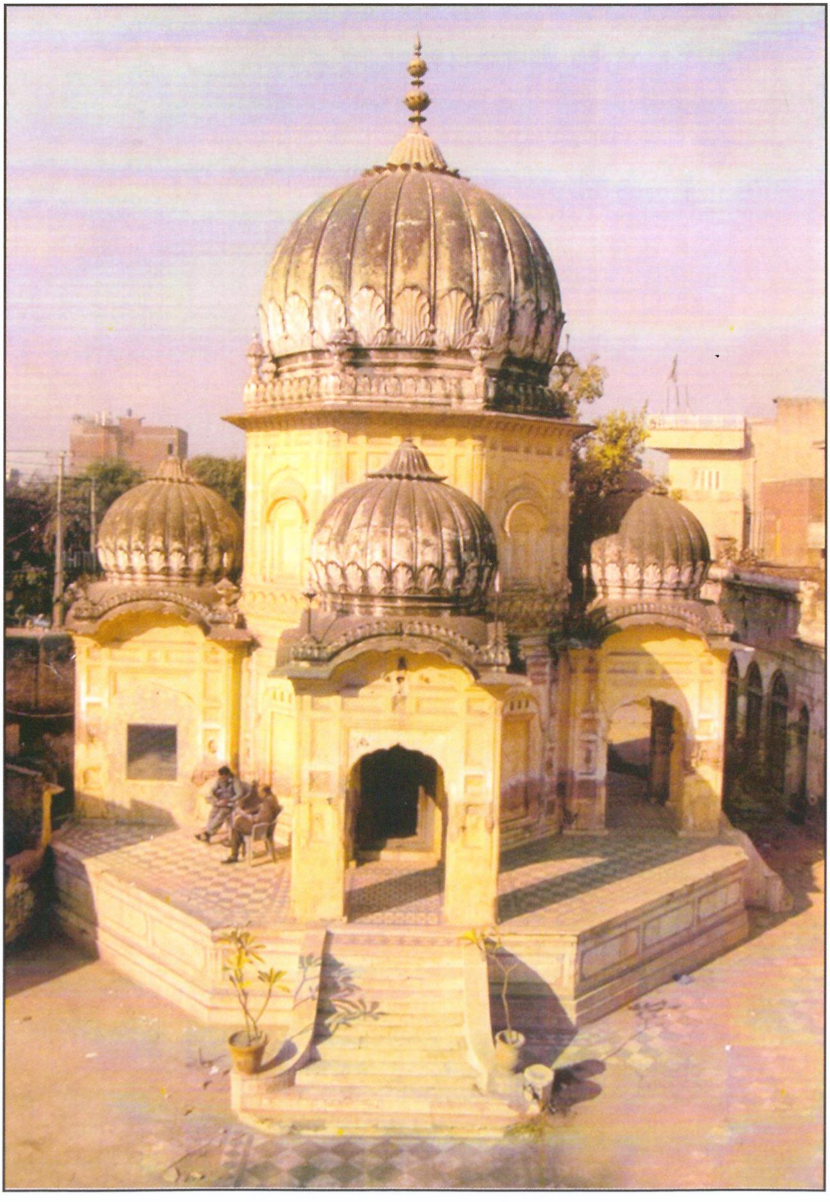

श्री गुरु आत्म समाधि मंदिर
गुजराँवाला

श्री आत्माराम (विजयानंद सूरि) जी महाराज
(समाधि तथा पावन चरण पादुका)

श्री गुरु आत्म समाधि मंदिर - गुजराँवाला

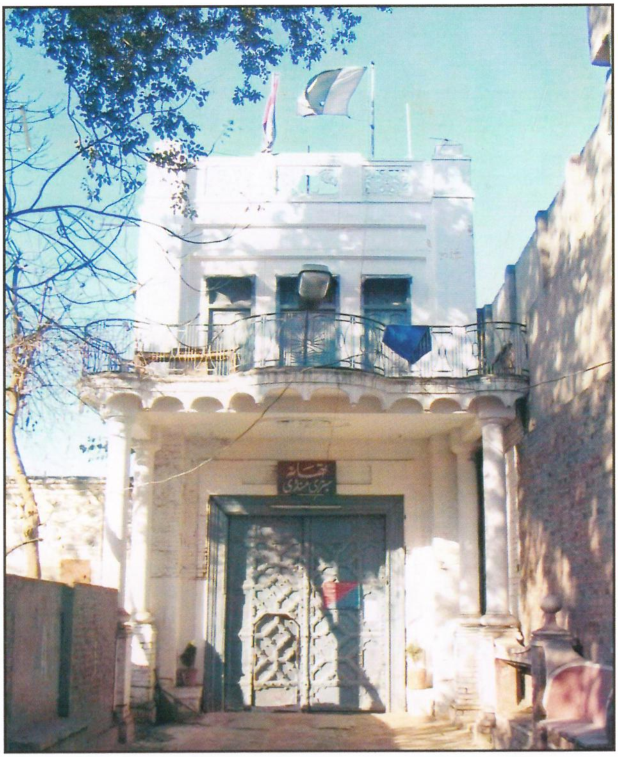

समाधि परिसर का प्रवेशद्वार

समाधि-परिसर में भगवान वासुपूज्य का पूजा स्थान

श्री गुरु आत्म समाधि मंदिर - गुजराँवाला

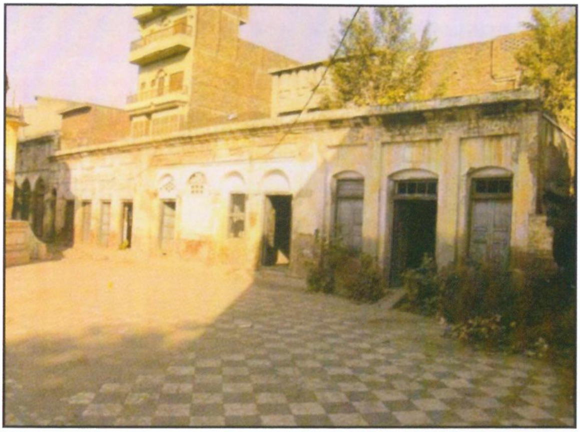

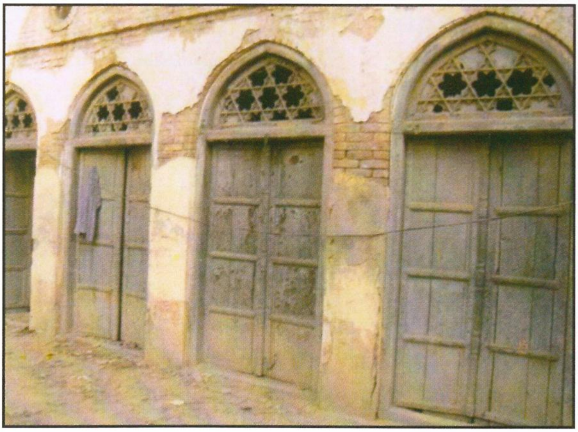

समाधि परिसर
के
भीतरी दृश्य

श्री गुरु आत्म समाधि मंदिर - गुजराँवाला

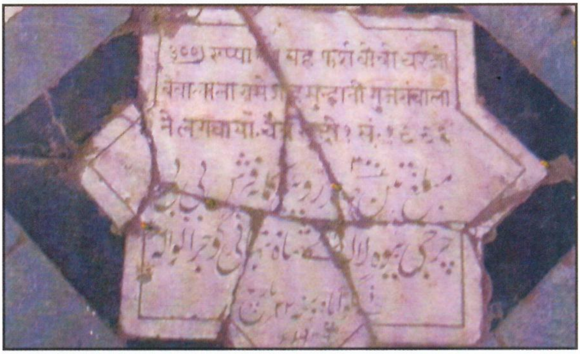

समाधि परिसर में लगी स्मृति शिलाएँ

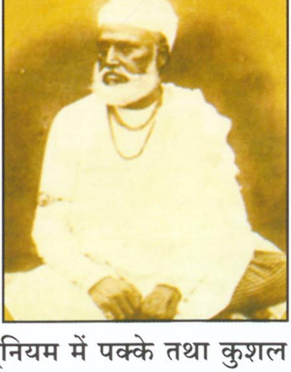

धर्म-कर्म, मर्यादा व नितनियम में पक्के तथा कुशल व्यापारी जैन ओसवाल-भावड़ा लोग दसवीं से अठारहवीं सदी के बीच पंजाब, सिंध व फ्रंटियर के नगरों में बसे व फले फूले। - जैन ओसवाल भावड़ों की पारम्परिक मुद्रा व वेशभूषा

जेहलम (पं.)

कलात्मक प्रवेश द्वार, पूरा फ्रंट मार्बल का (जेहलम)

जेहलम

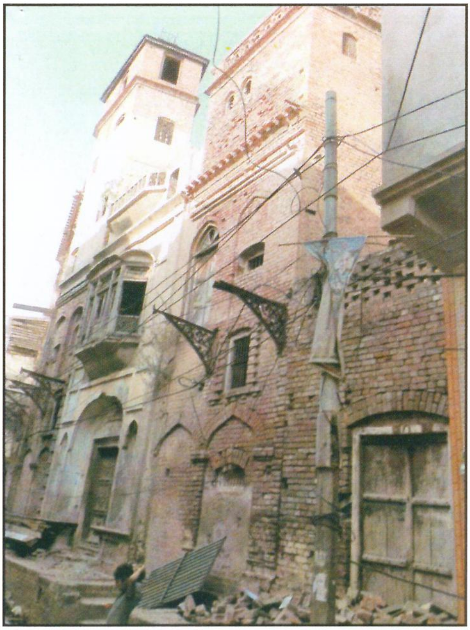

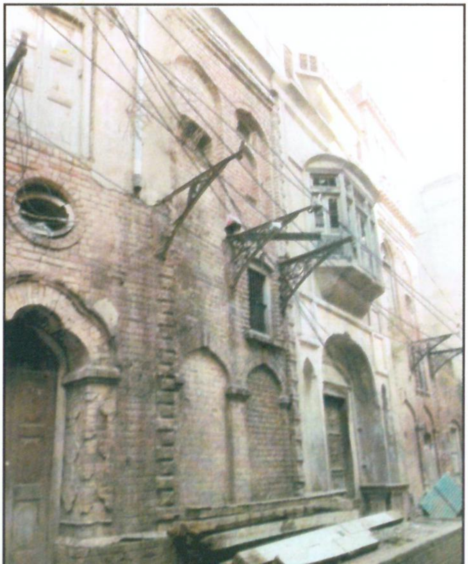

दो मंज़िला मंदिर
की श्वेत इमारत
(दोनों ओर से)
(जेहलम)

झँग (पं.) पाकिस्तान

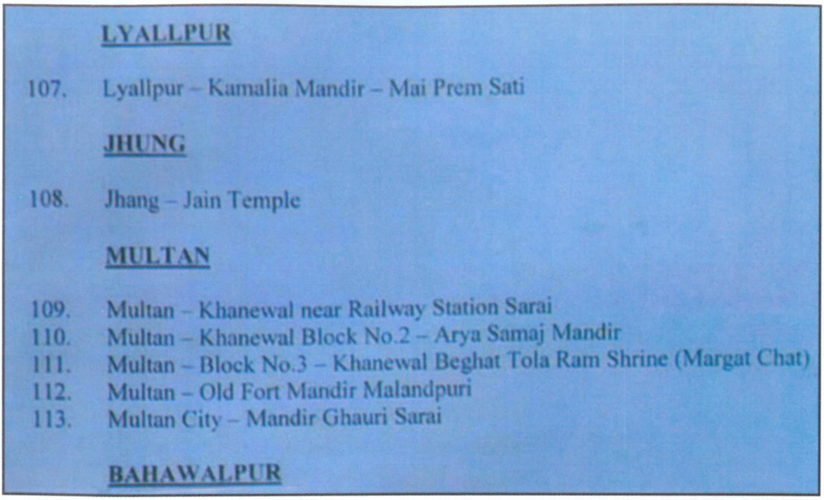

LYALLPUR

107. Lyallpur – Kamalia Mandir – Mai Prem Sati

JHUNG

108. Jhang – Jain Temple

MULTAN

109. Multan – Khanewal near Railway Station Sarai
110. Multan – Khanewal Block No.2 – Arya Samaj Mandir
111. Multan – Block No.3 – Khanewal Beghat Tola Ram Shrine (Margat Chat)
112. Multan – Old Fort Mandir Malandpuri
113. Multan City – Mandir Ghauri Sarai

BAHAWALPUR

पाकिस्तान के सरकारी नोटिफिकेशन में (नम्बर 108 पर)
झंग के जैन टैम्पल का उल्लेख (अब वहाँ नहीं है)

19वीं सदी के अन्त में जैनों के पलायन के बाद
झंग का यह जैन मन्दिर एक हिन्दू मन्दिर में तब्दील हो गया

खानका डोगरा (पं.)

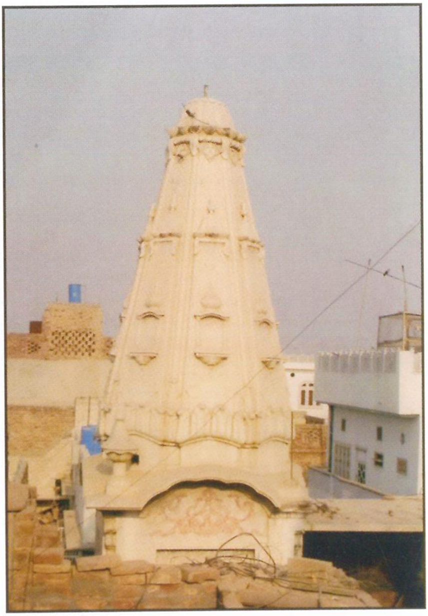

श्री शांतिनाथ मंदिर का शिखर (खानका डोगरा)

मंदिर का शिखर व प्रवेशद्वार (खानका डोगरा)

खानका डोगरा

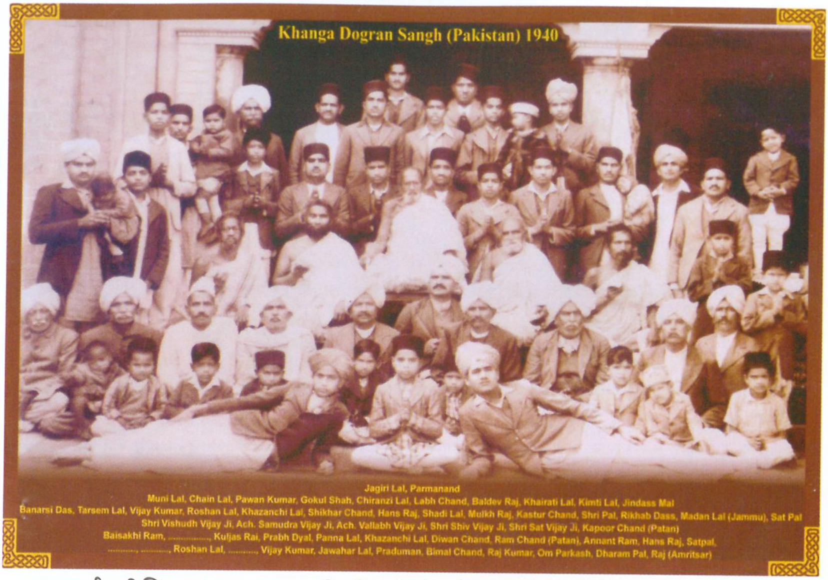

आचार्य श्रीविजय वल्लभ सूरिजी श्रीसंघ के साथ (1940 खानका डोगरा)

मंदिर प्रतिष्ठा का जुलूस (1940) खानका डोगरा

कसूर (पंजाब)

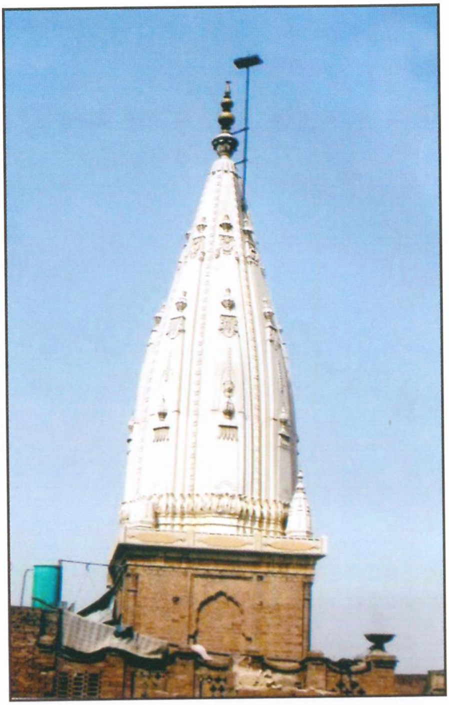

श्री आदिनाथ जैन मंदिर का शिखर (कसूर)

मंदिर का मूल गंभारा। देहरी का लेख :-
लाला नंदलाल दूगड़ की यादगार में बिहारीलाल दुर्गादास अमीचंद ने...

कसूर (पंजाब)

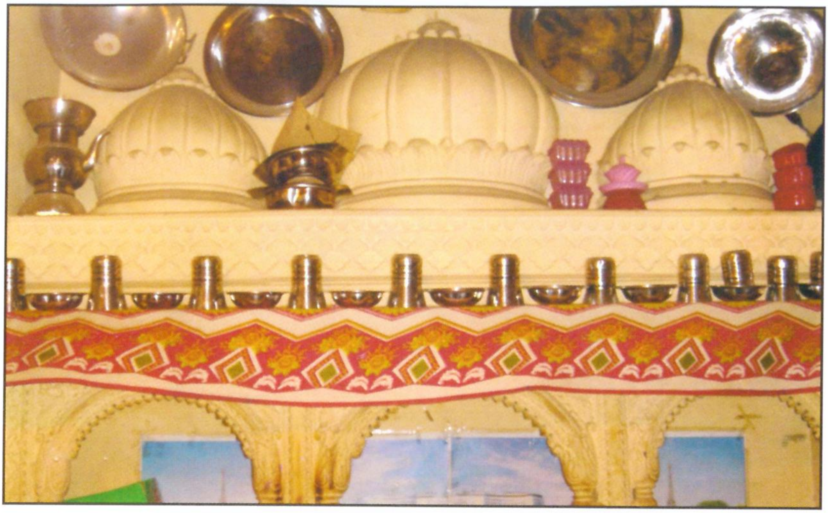

प्रभु आदिनाथ (मूलनायक) प्रभु की वेदी - कसूर

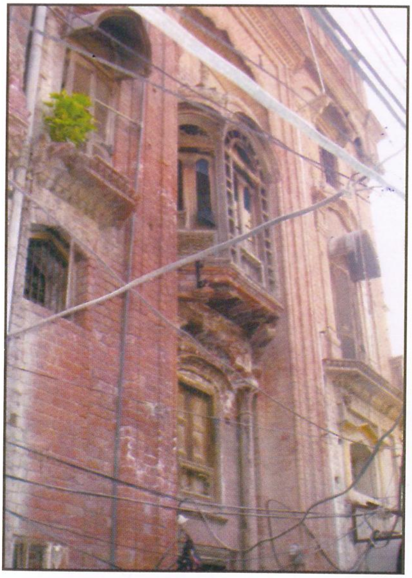

श्री जैन श्वेताम्बर-उपाश्रय, कसूर

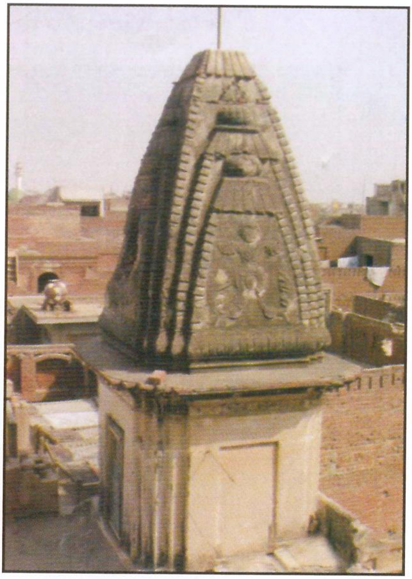

पूज (यति जी) का छोटा मंदिर, कसूर

कसूर (पंजाब)

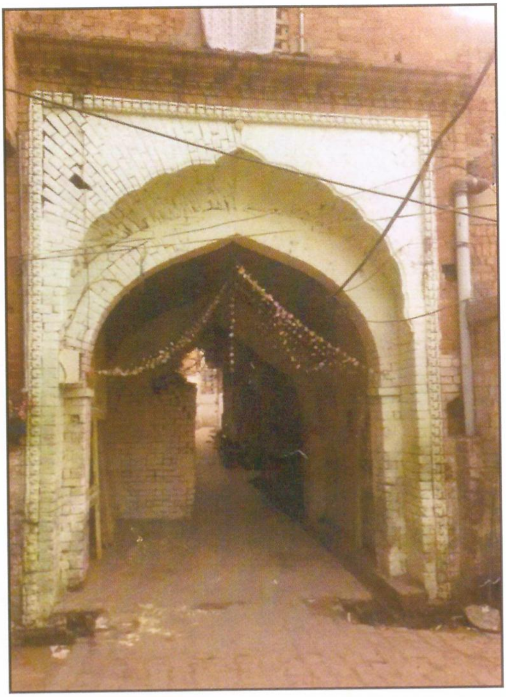

एस.एस. जैन स्थानक का प्रवेशद्वार

उपा. श्री मनोहर मुनि जी के पैतृक घर का गेट - कसूर

कसूर (पंजाब)

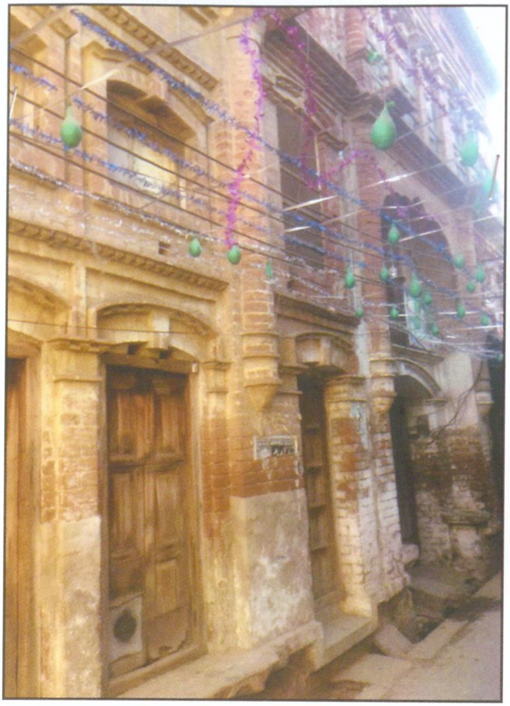

जैन जंजघर - कसूर

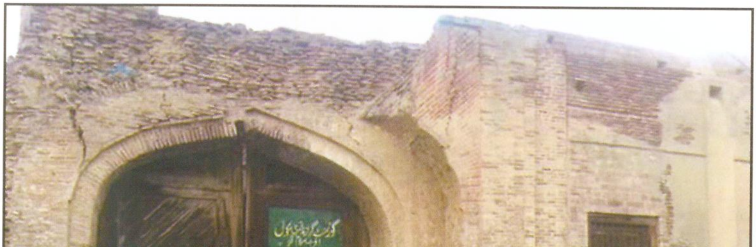

जैन कन्या स्कूल-कसूर (अब सरकारी गर्ल्स स्कूल)

करुँझर (थारपारकर-सिंध)

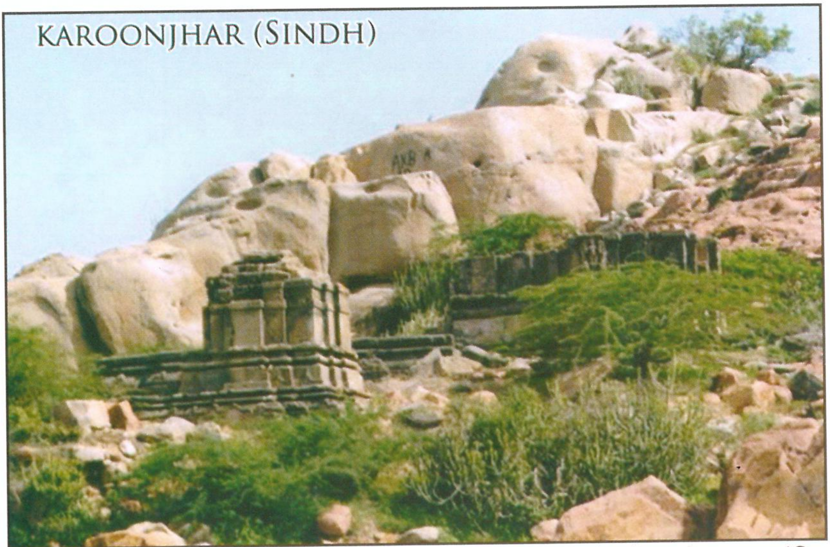

प्रकृति की गोद और रमणीय पहाड़ों के बीच, भग्न हो चुके जैन श्वेताम्बर मंदिर

खेड़ा मूर्ति (या मूर्ति) गाँव (जिला हसन अब्दाल) पं.

खेड़ा मूर्ति में 2000 साल प्राचीन जैन मंदिर की दीवार
कटासराज तीर्थ से 2-3 मील दूर 'मूर्ति' गाँव की खुदाई से
SIR AURAL STIEN ने 1889 में जैन, हिन्दू व बुद्ध मूर्तियों - अवशेषों
को 26 ऊँटों में लाद कर लाहौर पहुँचाया था।

काला बाग (फ्रंटियर) पाक.

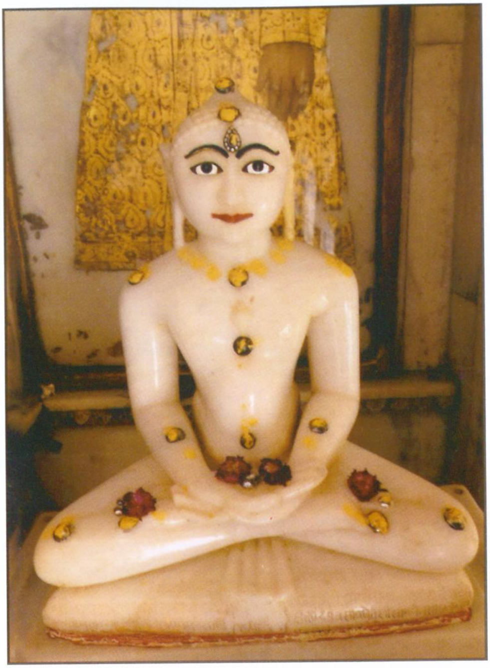

कालाबाग के मूलनायक प्रभु अभिनन्दन स्वामी
(वर्तमान में नौघरा दिल्ली मंदिर में विराजमान)

कालाबाग - श्री अभिनन्दन स्वामी जैन श्वेताम्बर मंदिर

क़िला सोभा सिंह (जि. गुजराँवाला)

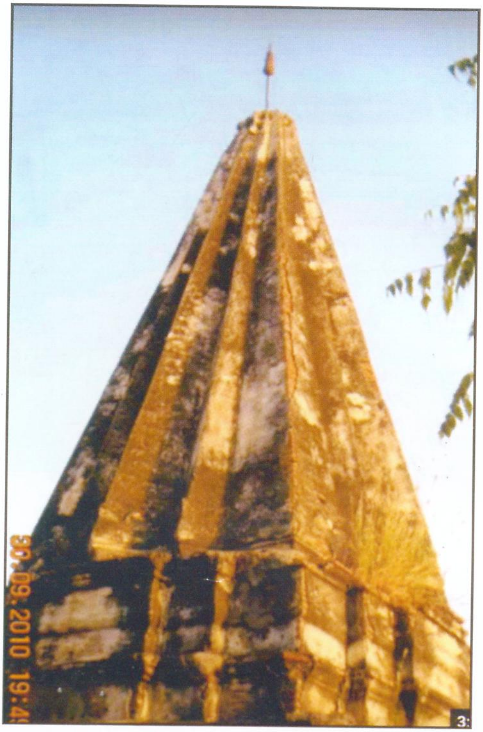

शीतलनाथ प्रभु जैन मंदिर का दर्शनीय शिखर, किला सोभासिंह

मूल गंभारा में प्रतिमा स्थान (ईंट व चूने का) किला सोभासिंह

क़िला सोभासिंह

गली की तरफ से प्रवेशद्वार, किला सोभासिंह

मंडप की गोल छत (ईंट व चूने से बनी)
किला सोभासिंह

क़िला दीदारसिंह (जि. गुजराँवाला)

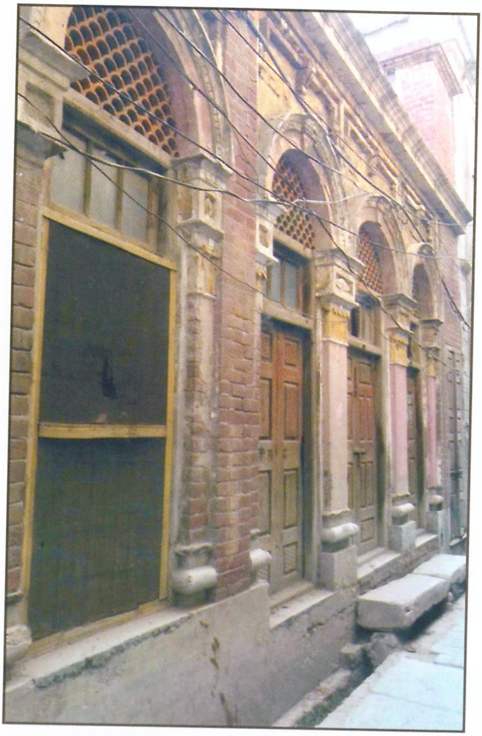

भ. वासुपूज्य जैन श्वे. मंदिर-किला दीदारसिंह

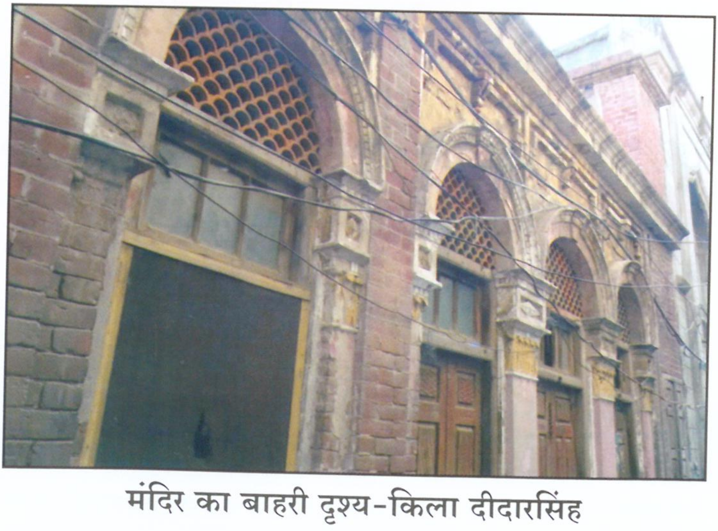

मंदिर का बाहरी दृश्य-किला दीदारसिंह

क़िला दीदार सिंह

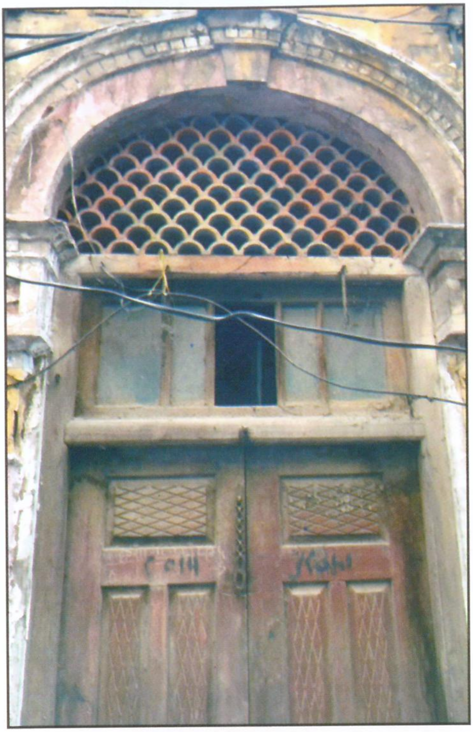

मंदिर का प्रवेश द्वार

मंदिर की बाहरी सजावट - किला दीदारसिंह

कराची

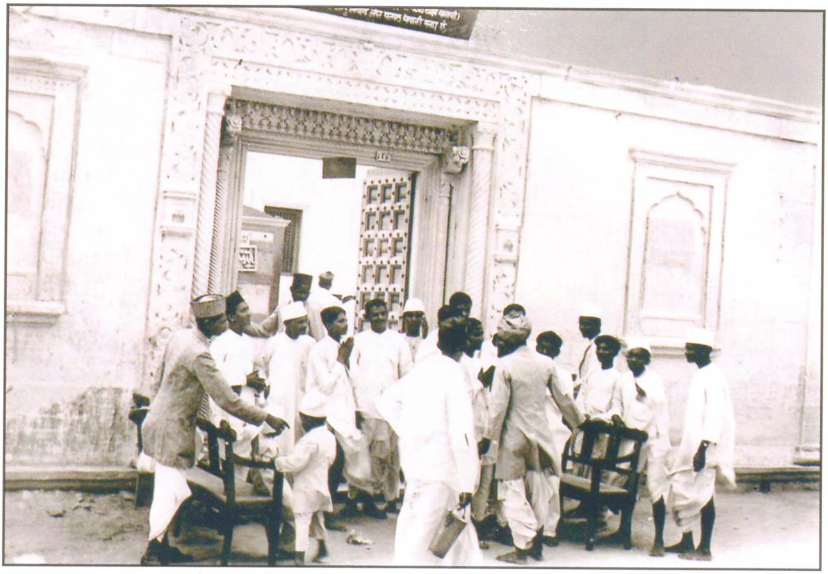

श्री पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर, कराची का भव्य प्रवेशद्वार

आचार्य श्री विजय धर्म सूरि जी के शिष्य मुनिराज श्री विद्याविजय जी के साथ कराची का श्रीसंघ (1938)

लाहौर

लाहौर के गवर्नमेंट म्यूज़ियम में गुजराँवाला की मूर्तियाँ व अवशेष

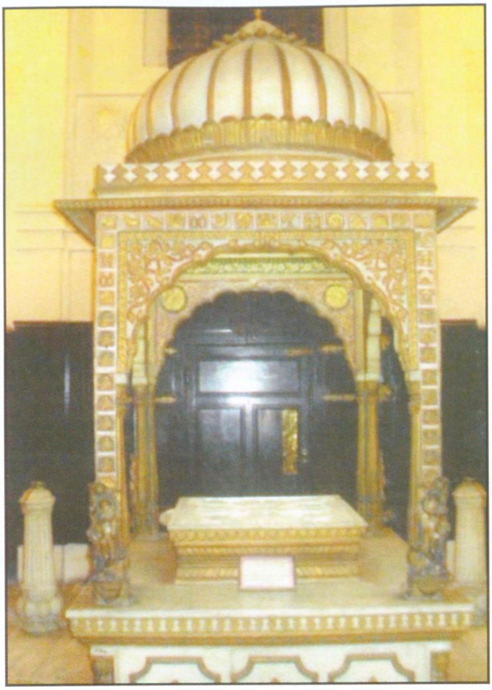

श्री गुरु आत्म समाधि मंदिर, गुजराँवाला की सम्पूर्ण वेदी व पावन चरण पादुका

श्री विजयानन्द सूरि (आत्माराम) जी की पावन चरण पादुका

लाहौर का गवर्नमेंट म्यूज़ियम

समाधि मंदिर की वेदी का क्लोज़-अप

श्री गुरु आत्म की एक अन्य चरण पादुका

लाहौर का गवर्नमेंट म्यूज़ियम

श्री शत्रुँजय महातीर्थ का पट्ट

श्री समेत शिखर महातीर्थ का पट्ट

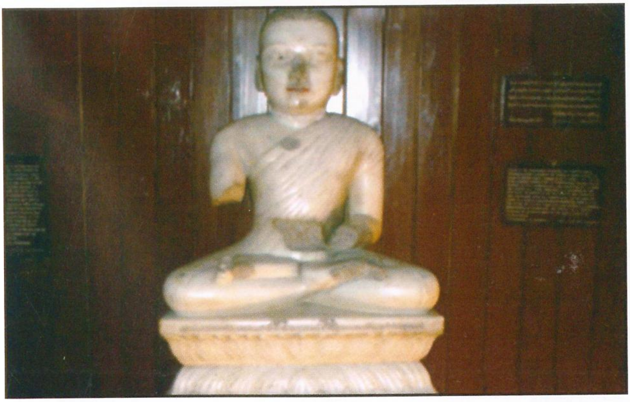

गणधर श्री गौतम स्वामी जी

लाहौर के गवर्नमेंट म्यूज़ियम में तीर्थंकर प्रतिमाएँ

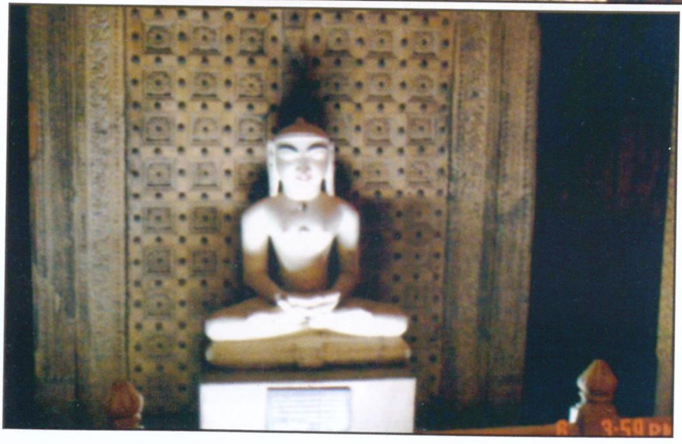

लाहौर का मुहल्ला 'थड़ियाँ भावड़ियाँ'

जैन श्वेताम्बर मंदिर का प्रवेश द्वार (थड़ियाँ भावड़ियाँ-लाहौर)
(देहरी की पादान और आगे लगी मार्बल-शिला घिस चुकी है)
(ऊपर तमाम पत्थर का काम है।)

लाहौर का मुहल्ला थड़ियाँ भावड़ियाँ

श्री दिगम्बर जैन मंदिर - थड़ियाँ भावड़ियाँ, लाहौर

लाहौर का मुहल्ला थड़ियाँ भावड़ियाँ

श्वेताम्बर जैन उपाश्रय
थड़ियाँ भावड़ियाँ, लाहौर

लाहौर - अनारकली बाज़ार

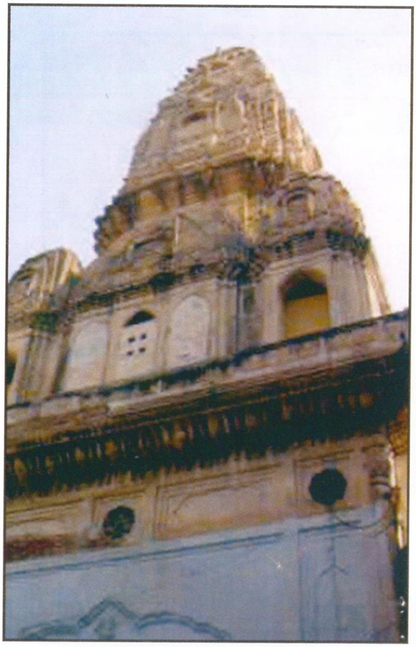

अनारकली, लाहौर
में श्री दिगम्बर जैन मंदिर
(मंदिर ढहाये जाने से पूर्व का चित्र)

अनारकली-लाहौर का
दिगम्बर जैन मंदिर क्रेनों की
मदद से गिराया जा रहा है।
लोग छतों से देख रहे हैं।

ध्वंसित हुआ श्री दिगम्बर जैन मंदिर, पुरानी अनारकली, लाहौर

लाहौर

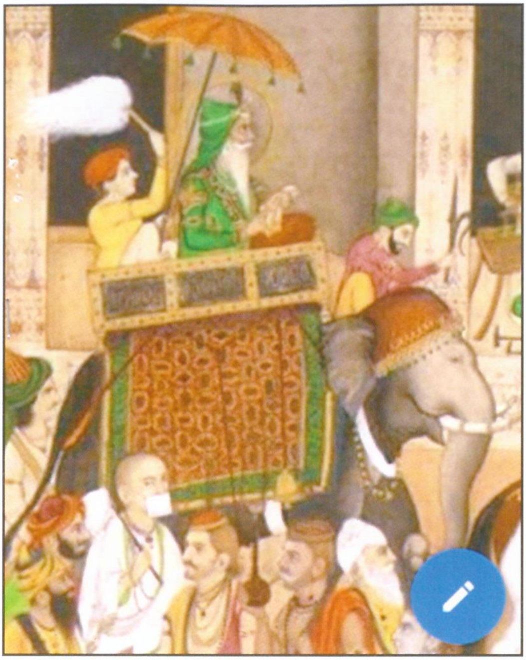

लाहौर में महाराजा रणजीतसिंह की गद्दी-नशीनी का शाही जुलूस
(सभी धर्मों के लोगों में लौंकागच्छीय जैन यति जी भी) 13.4.1801
(मूल पेंटिंग-ब्रिटिश म्यूज़ियम, लंदन में)

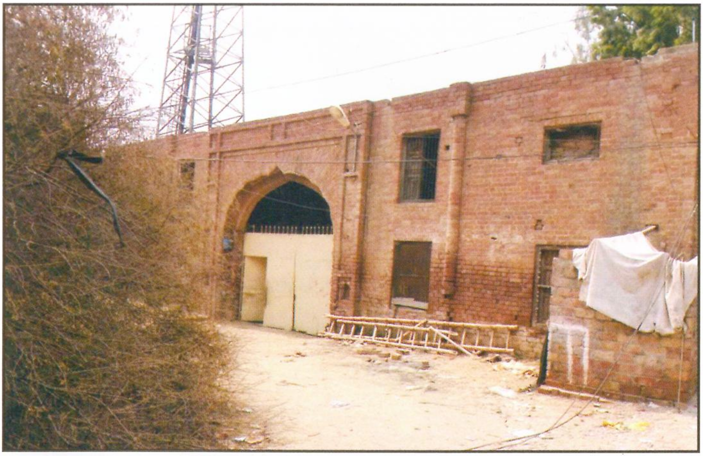

दादागुरु जिनचंद्र सूरि जी की दादावाड़ी
(लाहौर के पास 'भावड़ा-गुरु माँगट' गाँव में)

लाहौर

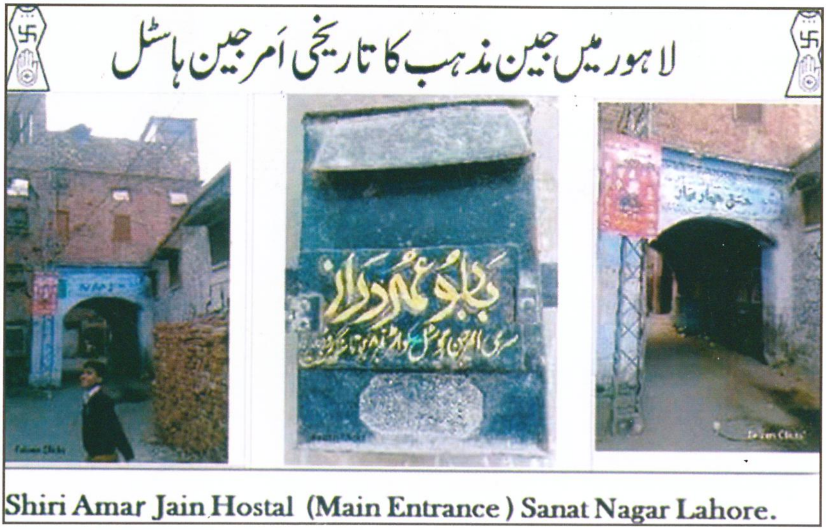

श्री अमर जैन हॉस्टल-लाहौर

एस.एस. जैन हॉल
लाहौर

श्री स्थानकवासी जैन हॉल
लाहौर की नींव शिला
(सन् 1940)

मुलतान (पं.)

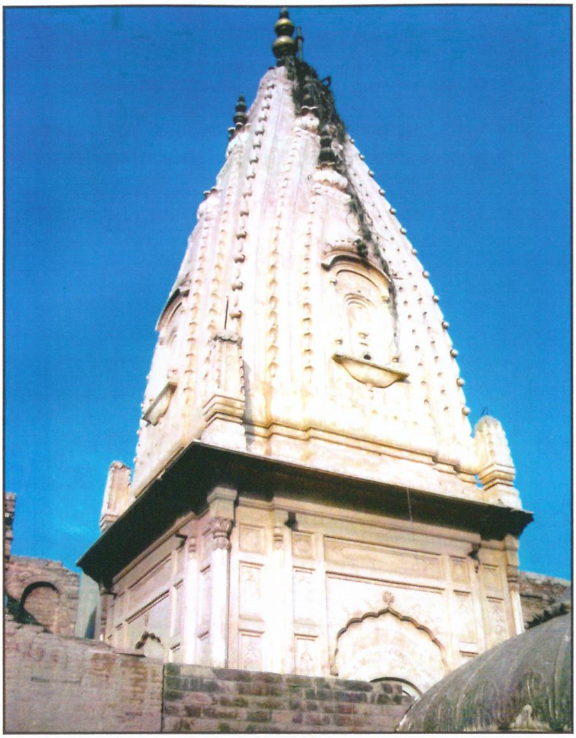

. श्री पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर मुलतान का श्वेत धवल शिखर

मंदिर का प्रवेशद्वार

श्री पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर-मुलतान

मूलगंभारा में प्रभु का सिंहासन (गादी)

मूल गंभारा का प्रवेशद्वार (मुलतान)

श्री पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर-मुलतान

दीवारों (गोखलों) में प्रभु नेमिनाथ का चित्र

लकड़ी के सुन्दर गेट पर लिखा-'श्री पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर'

श्री पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर-मुलतान

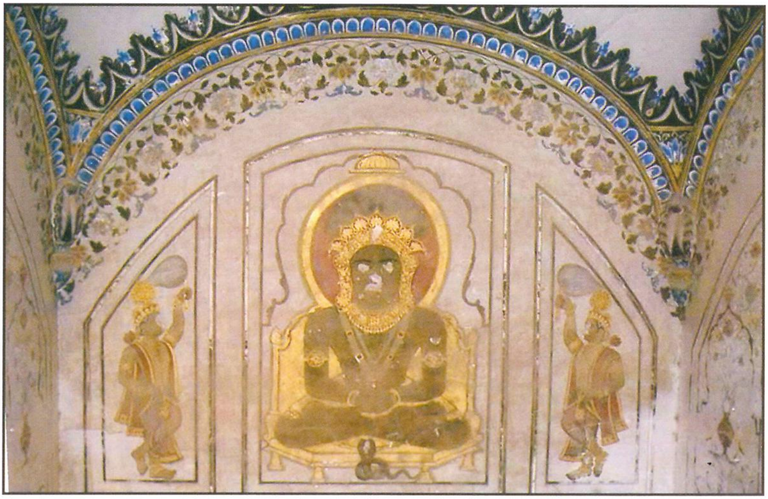

एक मेहराब में भ. पार्श्वनाथ का चित्र

दादागुरु जी की देहरी (मुलतान)

श्री पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर-मुलतान

छत पर शीशे की सुन्दर मीनाकारी के चित्र
(मुलतान)

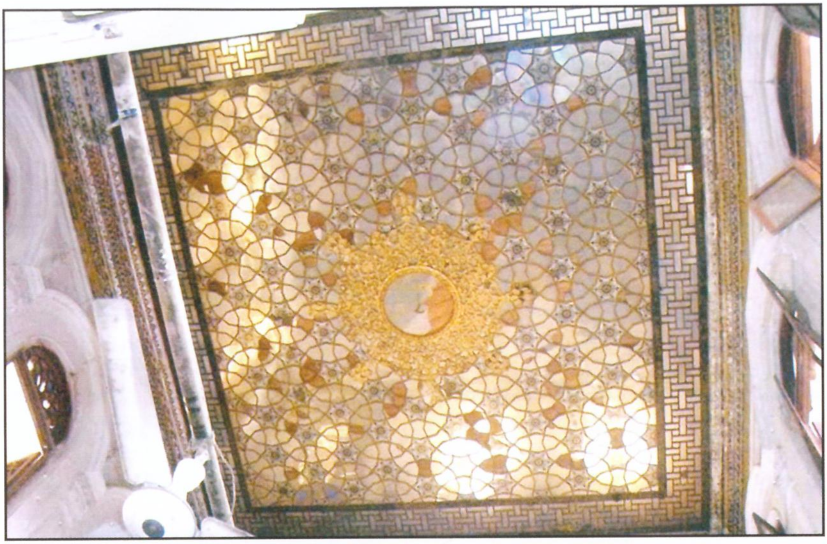

श्री दिगम्बर जैन मंदिर, चूड़ी सराय, मुलतान

प्रवेशद्वार पर लिखा - 'दिगम्बर जैन मंदिर'

दिगम्बर जैन मंदिर की भव्य इमारत-मुलतान

मुलतान

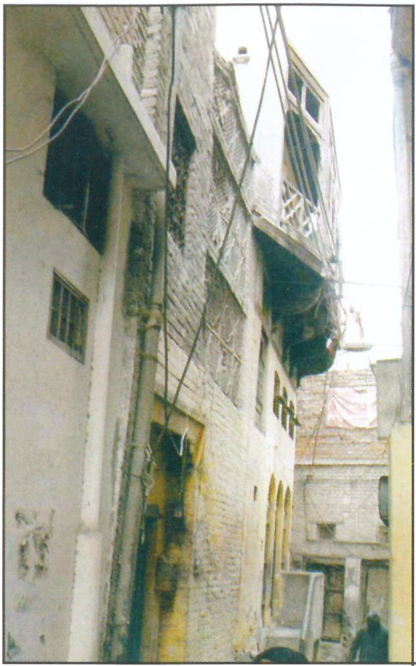

पुराना दिगम्बर जैन मंदिर
मुलतान

श्री दिगम्बर जैन मंदिर
मुलतान कैंट

मरोट - (बहावलपुर स्टेट)

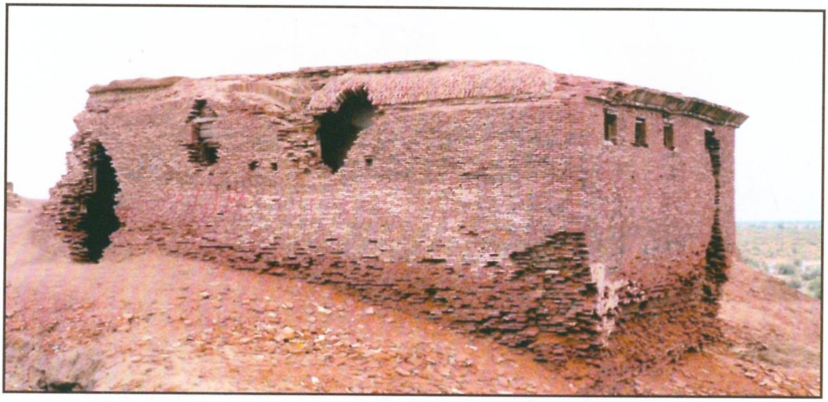

मरोट का श्वे. जैन (प्राचीन) मंदिर - जो अब केवल खंडहर है

मरोट से प्राप्त दादा गुरु जिनचंद्र सूरि की प्राचीन चरण पादुका
(अब बहावलपुर म्यूज़ियम में)

मरोट (बहावलपुर)

ज़ैन मंदिर-मरोट का कलात्मक स्तम्भ (बहावलपुर के म्यूज़ियम में)

मरोट मंदिर से कलात्मक नृत्याँगना (बहावलपुर म्युज़ियम)

नारोवाल
मुनिसुव्रत स्वामी जैन श्वे. मंदिर

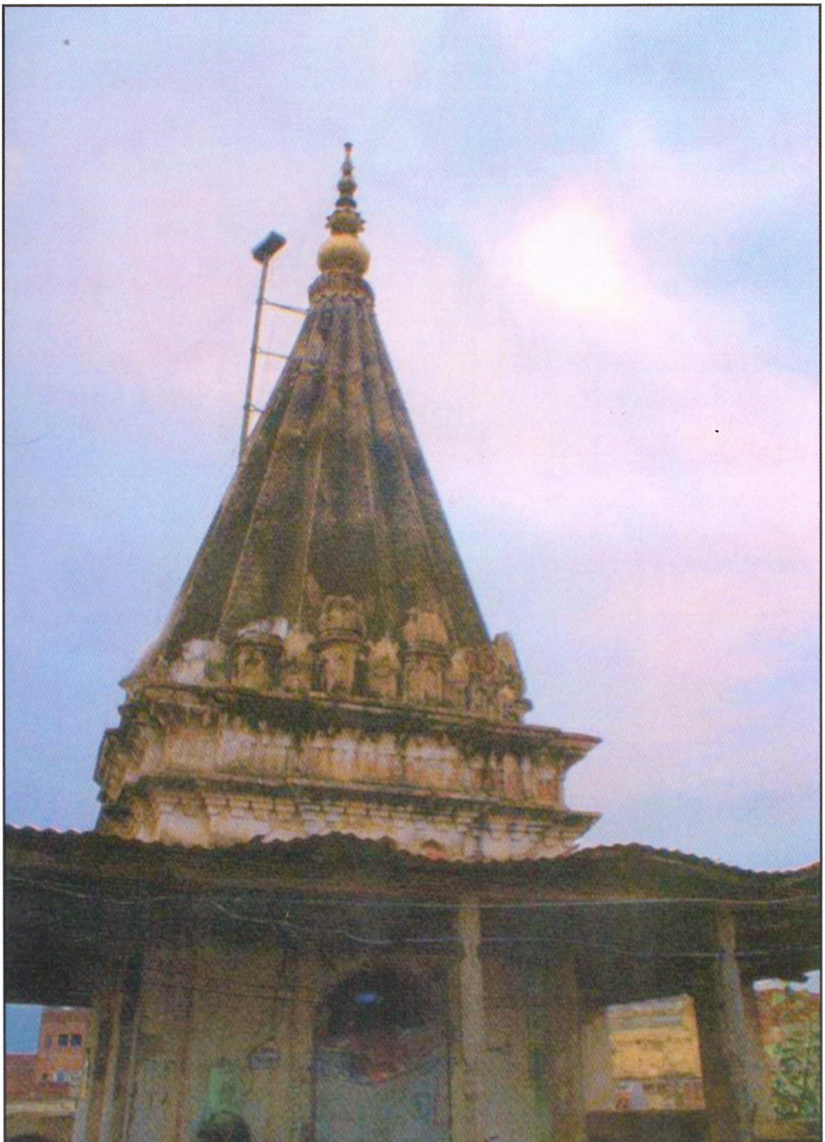

मंदिर का शिखर - नारोवाल

नगर पारकर (सिंध)

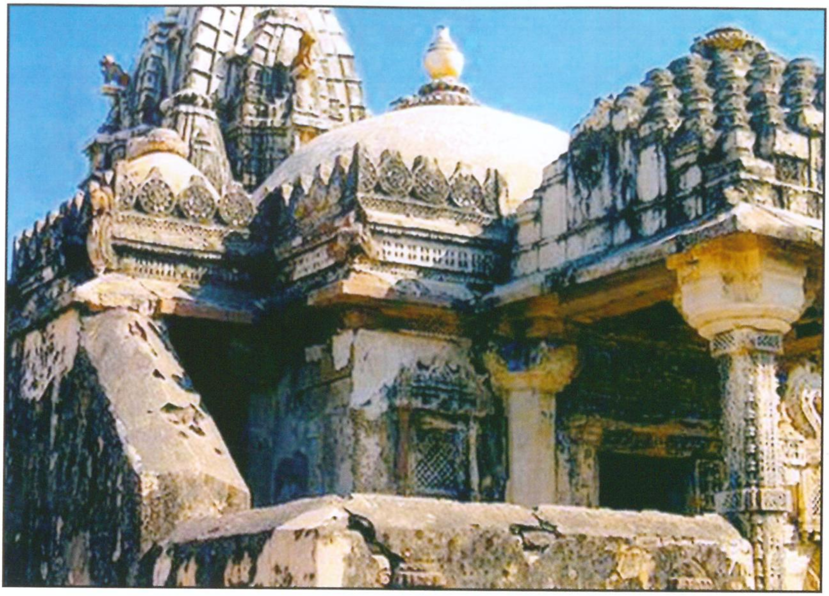

नगर पारकर का प्राचीन मंदिर

शिखर का नज़दीक से लिया गया चित्र - नगर पारकर

नगर पारकर (सिंध)

मंदिर का कलात्मक प्रवेशद्वार

मंदिर का मूल गंभारा - नगर पारकर

नगर पारकर (सिंध)

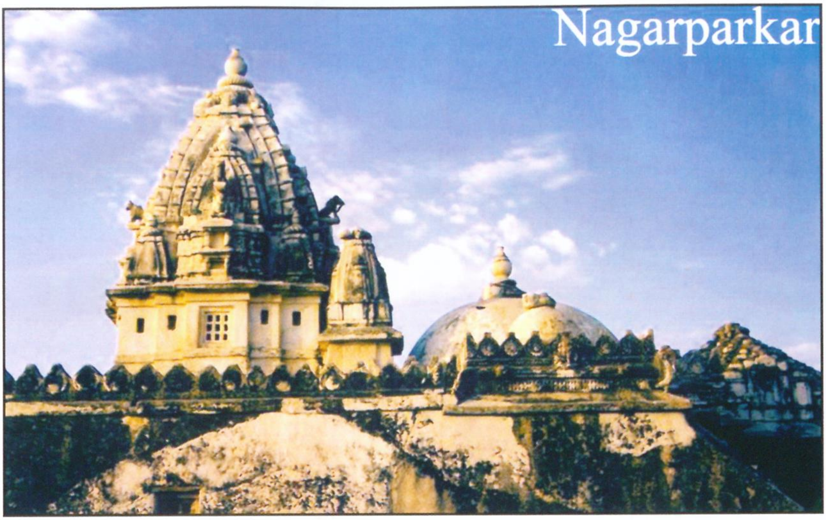

नगर पारकर का अन्य मंदिर

साईड-व्यु (क्लोज़ अप) - नगर पारकर

नगर पारकर (सिंध)

नगर पारकर का मंदिर

पाकिस्तान के सुविख्यात अंग्रेज़ी अखबार (डॉन) (DAWN) के अनुसार 'नगर पारकर क्षेत्र की ऐतिहासिक विशिष्टता है वहाँ के प्राचीन जैन मंदिर, जिनमें से कई 2000 साल प्राचीन हैं'

नगर पारकर (सिंध)

नगर के दो जैन मंदिरों के लिए पाकिस्तान के
पुरातत्त्व विभाग द्वारा सुरक्षा के बोर्ड लगाए गए

Nagarparkar

नगर पारकर (सिंध)

आराधकों द्वारा पूजित तीर्थंकर (मंदिर का परकोटा)

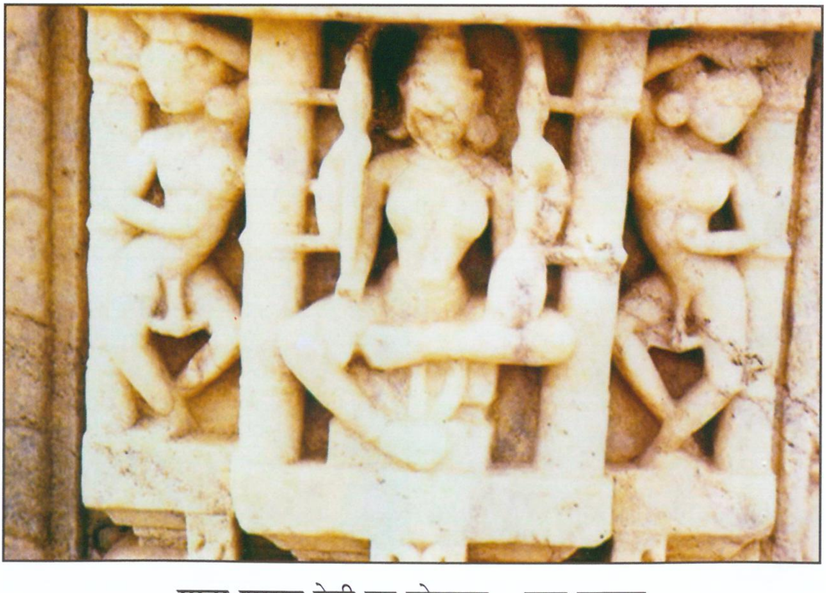

माता शासन देवी का गोखला - नगर पारकर

पपनाखा (ज़ि. गुजराँवाला)

भगवान सुविधिनाथ जैन श्वे. मंदिर

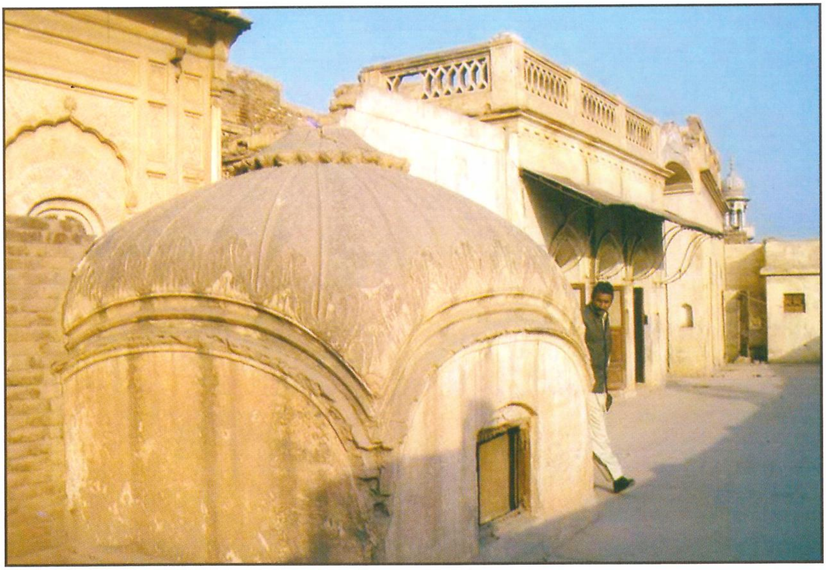

पपनाखा के मंदिर के बाहर (फ्रंट)

भ. सुमतिनाथ जैन श्वे. मंदिर, पिण्डदादनखाँ

पिण्ड दादन खाँ (ज़ि. जेहलम)

पसरुर (पं.)

मुनिश्री खज़ानचंद जी की भावड़ा मुहल्ले, पसरुर में समाधि, जो अब 'हज़रत बाबा (पीर) खजाँची सरकार' के तौर पर मानी जाती है।

पसरुर में समाधि पर लगी परिचय प्लेट 'खज़ाँची सरकार'

पसरुर (पं.)

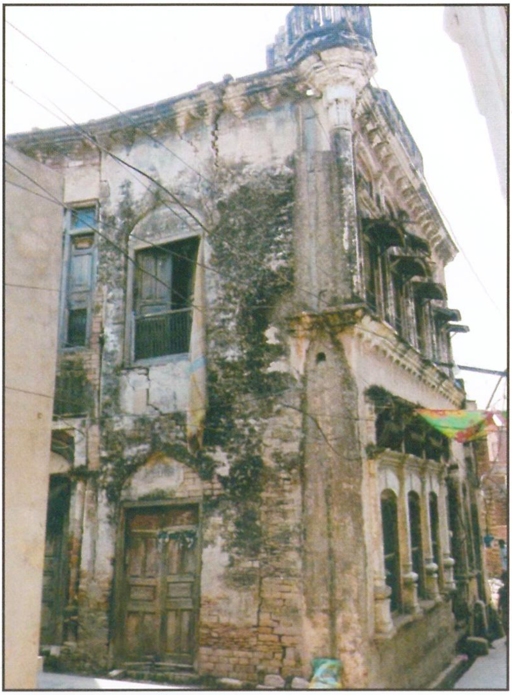

एस.एस. जैन स्थानक व सभा - पसरुर

एस.एस. जैन कन्या स्कूल, पसरुर

राम नगर (जो अब है रसूल नगर)
जि. गुजराँवाला

चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर, रामनगर

मंदिर का मुख्य प्रवेश द्वार-रामनगर

चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर
राम नगर

मूल गंभारा में मूर्ति-स्थान के ऊपर, रामनगर

मूल गंभारा में मूर्ति-स्थान, रामनगर

चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर
राम नगर

मंडप के एक द्वार पर बना तीर्थ समेत शिखर का रंगीन चित्र (रामनगर)

एक स्तम्भ पर मार्बल-फिलिंग से की गई चित्रकारी (रामनगर)

चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर
रामनगर

एक आर्च में चित्रित माता के चौदह स्वप्न - रामनगर

आर्च में चित्रित श्री सिद्धचक्र - रामनगर

रहीम-यार खाँ
(बहावलपुर)

रहीम यार खाँ शहर के भग्न जैन मंदिर की एक दीवार

रहीम यार खाँ नगर के बाहर 2500 वर्ष प्राचीन स्तम्भ (ऊपर का भाग टूट चुका है)
(पत्तन मीनारा)

रावलपिण्डी (पं.)

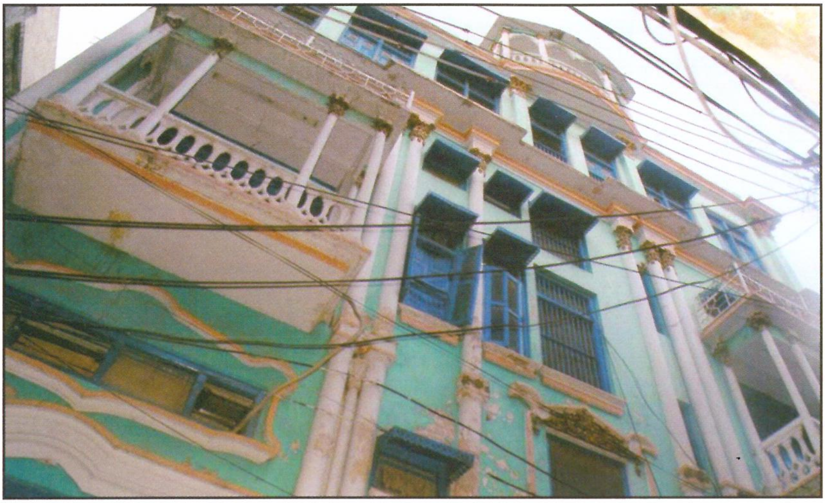

एस.एस. जैन स्थानक-रावलपिण्डी

एस.एस. जैन (साध्वीजी) स्थानक - रावलपिण्डी

रावलपिण्डी

स्थानक की बिल्डिंग पर शब्द 'जय जिनेन्द्र'

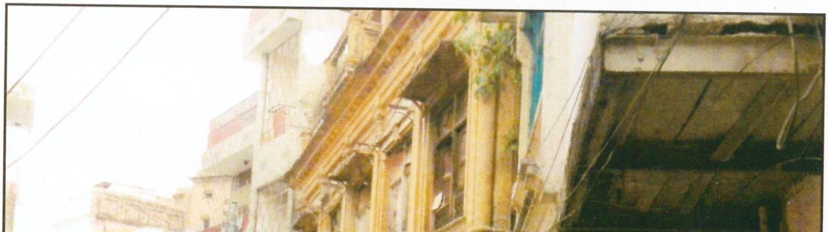

एस.एस. जैन फ्री कन्या स्कूल, रावलपिण्डी

रावलपिण्डी - कैंट

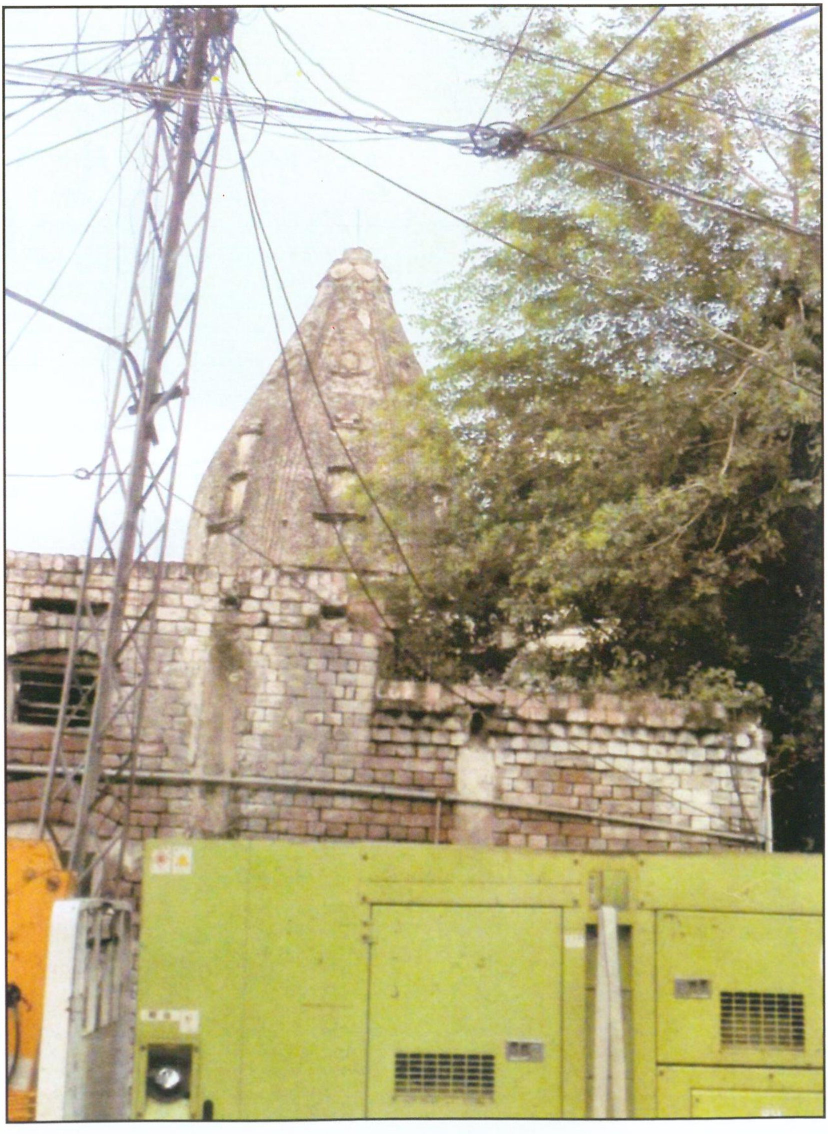

रावलपिण्डी कैण्ट में श्री दिगम्बर जैन मंदिर

सनखतरा (जि. सियालकोट) पं.

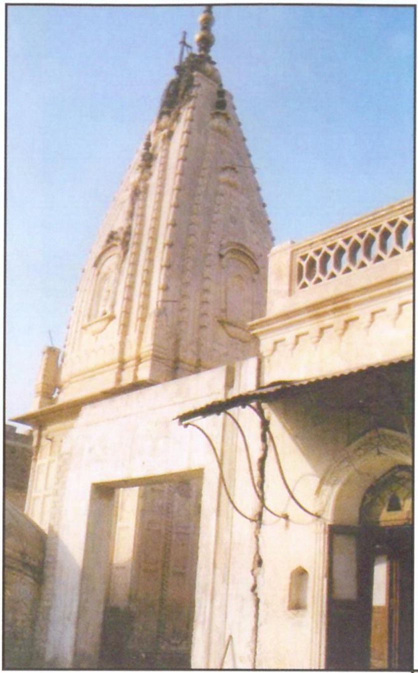

श्री धर्मनाथ जैन श्वे. मंदिर
सनखतरा

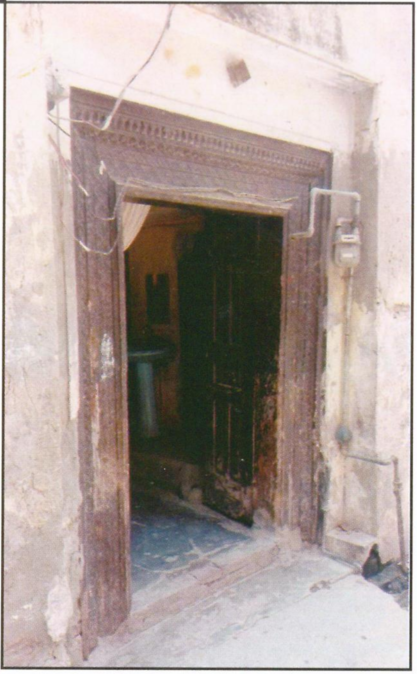

मंदिर का मुख्य प्रवेश द्वार
सनखतरा

सनखतरा
श्री धर्मनाथ जैन श्वे. मंदिर

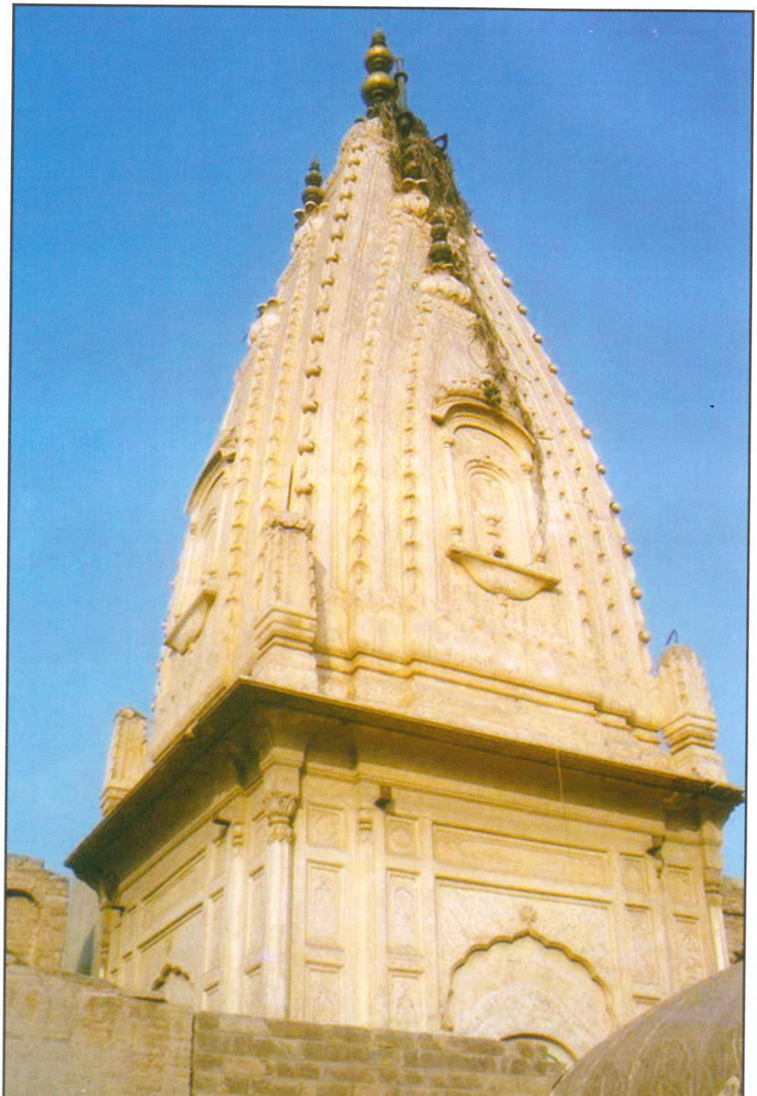

शिखर व कलश का चित्र - सनखतरा
(जो छत पर जाकर लिया गया)

सियालकोट

श्री शश्वत जिन मंदिर - सियालकोट

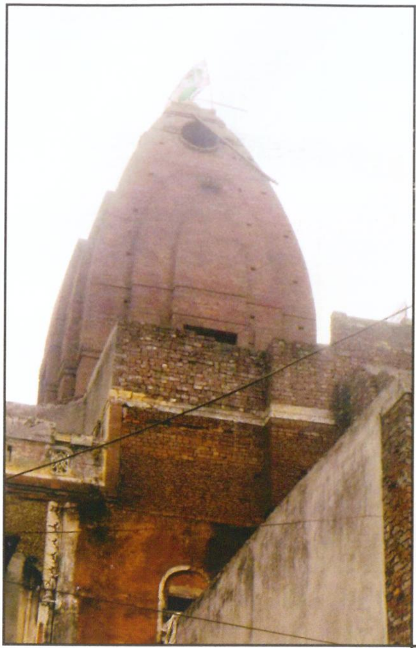

सियालकोट मंदिर का शिखर

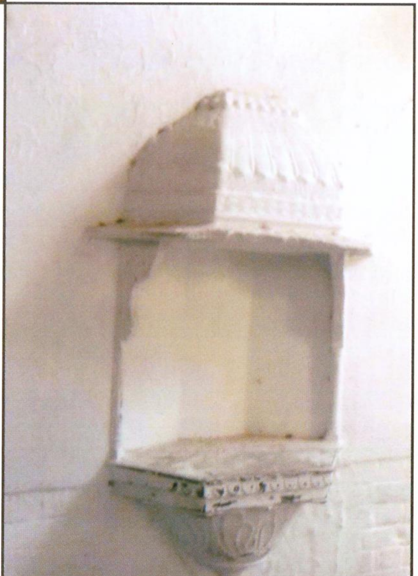

श्री मूलचंद (मुक्तिविजय) महाराज
की देहरी, सियालकोट

सियालकोट

चौमुखी प्रतिमाओं का स्थान गादी (सियालकोट)

लाभार्थी-मानसा (उ. गुजरात) के सेठ वाडीलाल के सुपुत्र शाह चमनलाल मोहनलाल

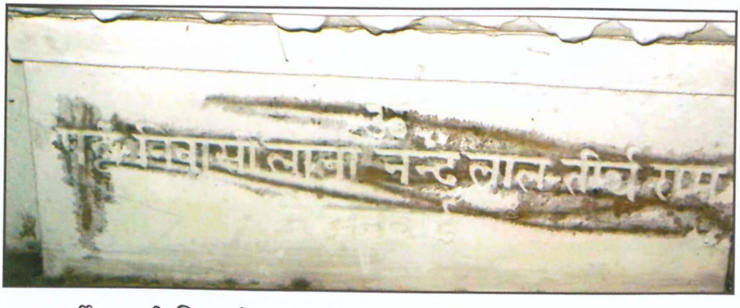

लाभार्थी - पट्टी निवासी लाला नंदलाल तीर्थराम जैन - (सियालकोट)

सियालकोट

सियालकोट मंदिर के बाहर पड़ी हुई, मंदिर की खंडित प्रतिमाएँ

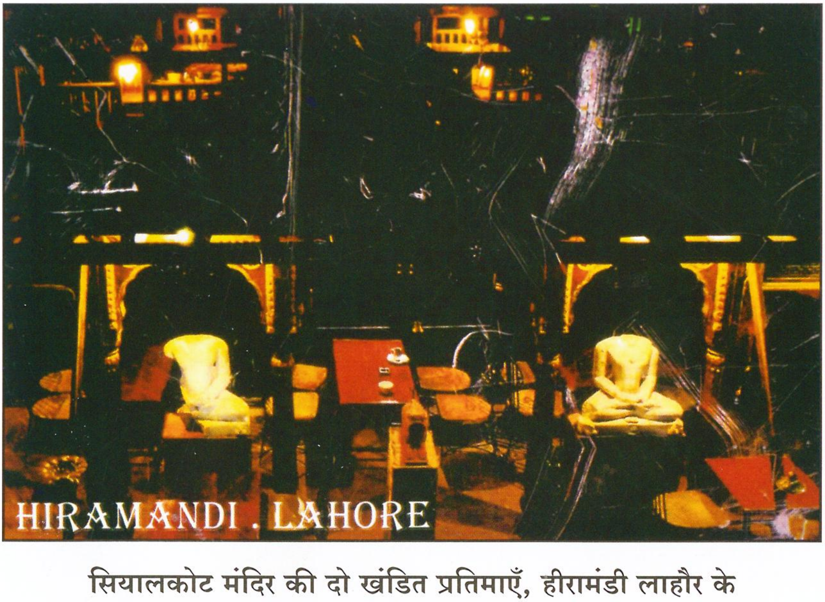

सियालकोट मंदिर की दो खंडित प्रतिमाएँ, हीरामंडी लाहौर के
एक होटल में डैकोरेशन - पीस के तौर पर

सियालकोट

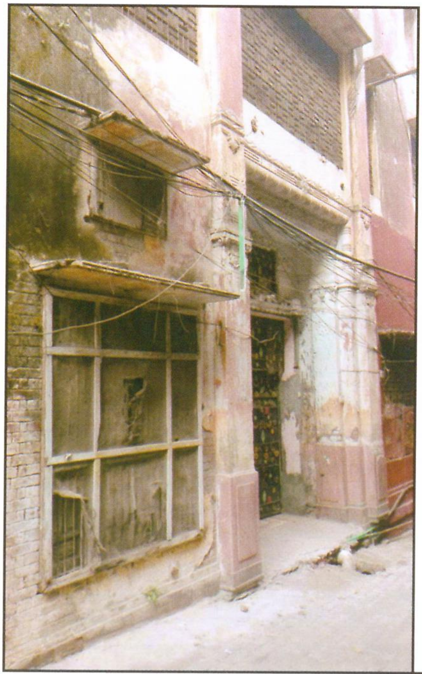

एस.एस. जैन स्थानक
सियालकोट

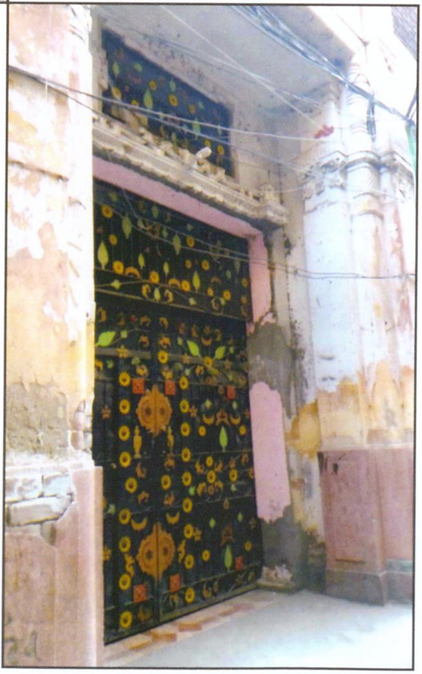

स्थानक का प्रवेश द्वार
सियालकोट

टैक्सिला (पुरातन तक्षशिला)

जैनों का सबसे प्राचीन मंदिर -

(भगवान बाहुबली जी का राज्य क्षेत्र-टैक्सिला)

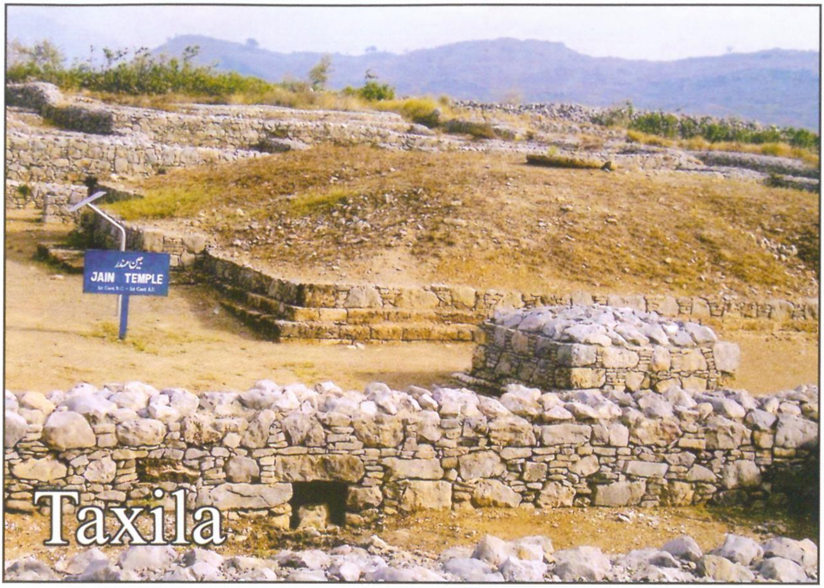

प्राचीन विशाल जैन मंदिर के भग्नावशेष-खण्डहर - टैक्सिला

पुरातन टैक्सिला के खंडहरों में जैन मंदिर के ध्वंसित ढेर

टैक्सिला

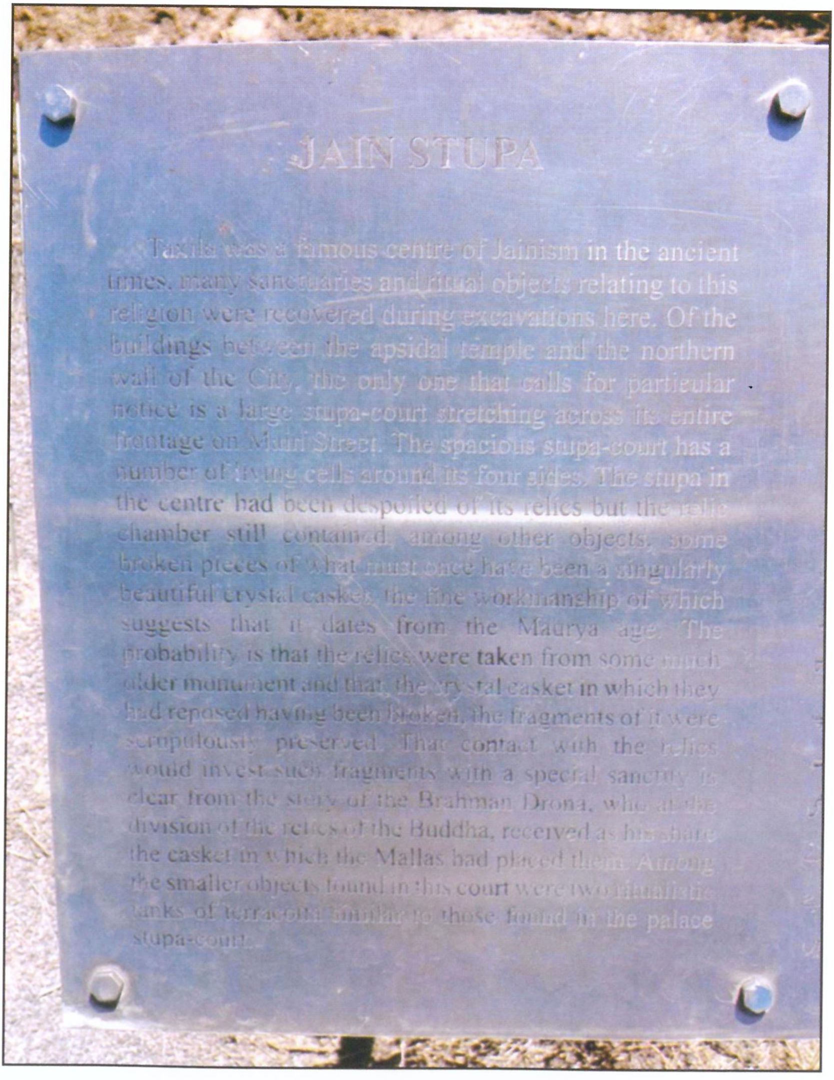

टैक्सिला के भग्न जैन मंदिर के इतिहास का वर्णन
(सरकारी सूचना-बोर्ड)

उच्चनगरी (जि. हसन अब्दाल) पं.

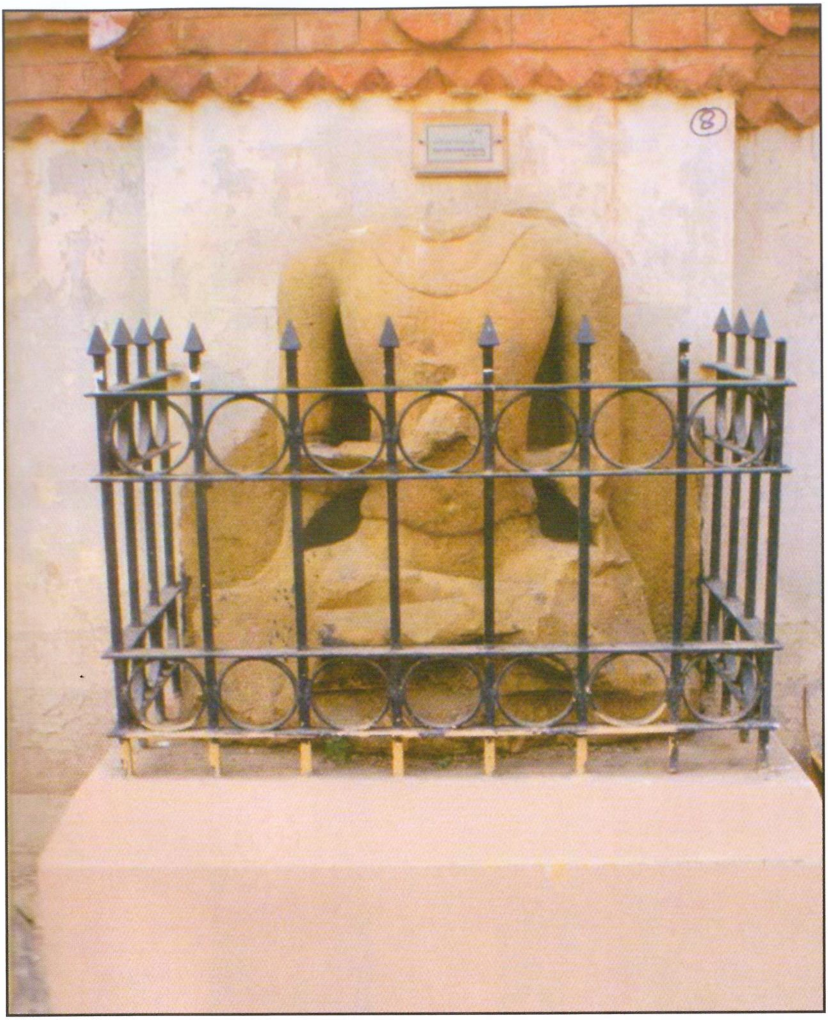

कटासराज से 25 कि.मी. पर उच्चनगरी से प्राप्त
इस मूर्ति को लाहौर म्यूज़ियम की परिचय प्लेट
में पहली/दूसरी सदी की भगवान महावीर
की मूर्ति दर्शाया गया है।

वीरवाह व पारी नगर (सिंध)

वीरवाह का भव्य कलात्मक प्राचीन मंदिर

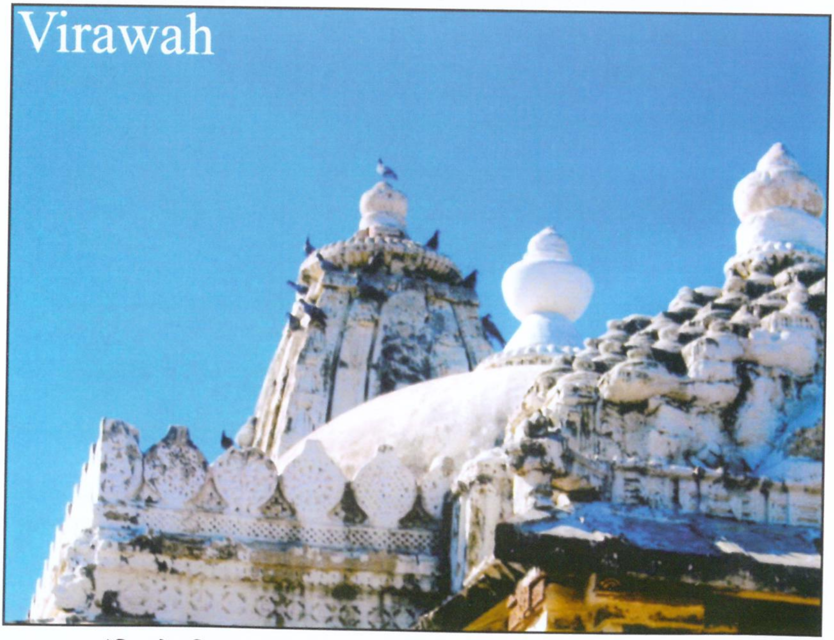

मंदिर के शिखर का शिल्प व बारी की - वीरवाह - पारीनगर

वीरवाह व पारीनगर (सिंध)

पहाड़ और नदी के बहाव के साथ जैन मंदिर-वीरवाह

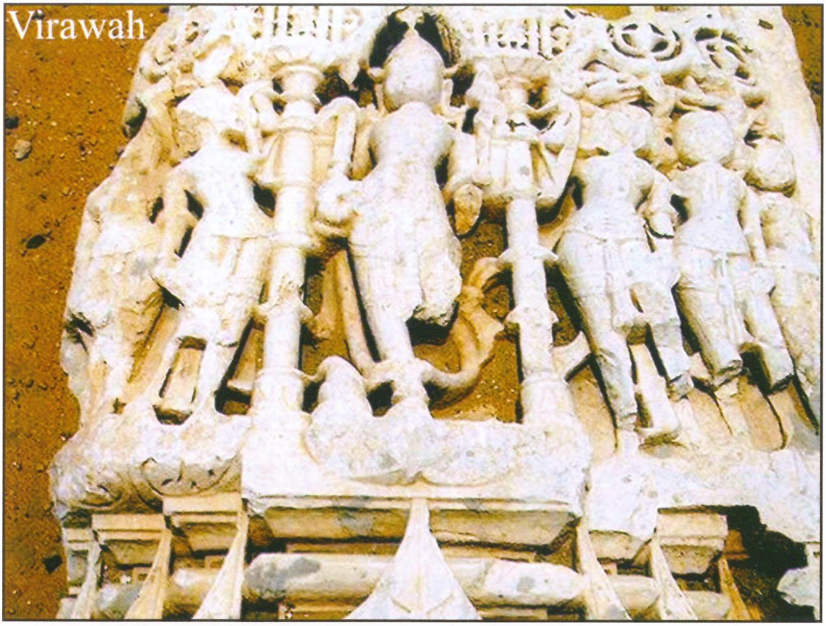

मंदिरों में मुखरित शिल्प कला (वीरवाह)

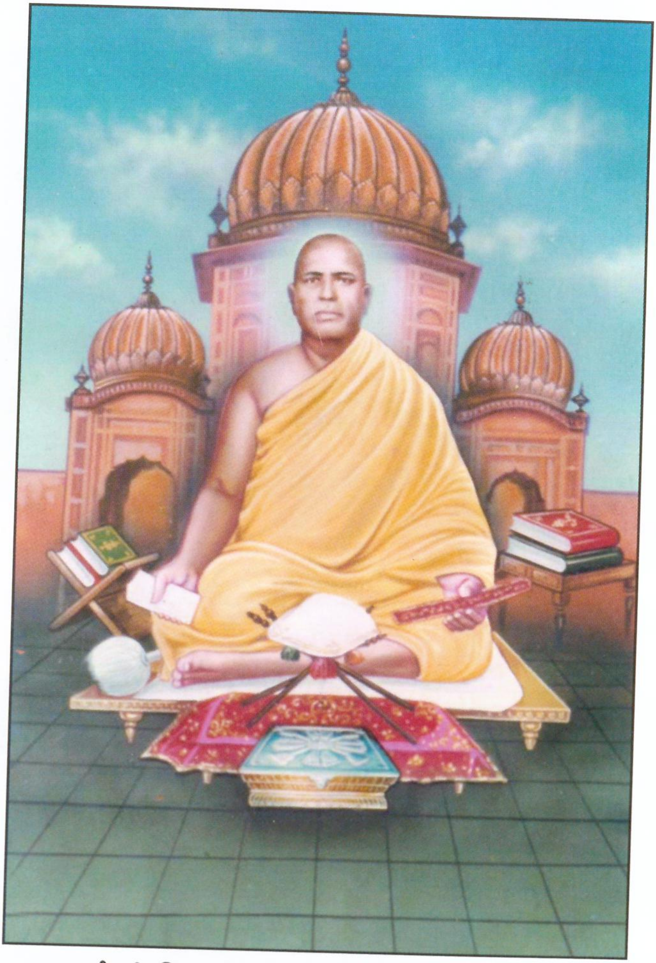

आचार्य श्री विजयानंद सूरि (आत्माराम जी) महाराज
(1837-1896 ई.)
स्वर्गवास गुजराँवाला - 19.5.1896

卐 उपकारी दादागुरु 卐

(तीसरे) दादागुरु श्री जिनकुशल सूरि जी - स्वर्गवास देराउर (बहावलपुर स्टेट-पाक.)

(चौथे) दादागुरु श्री जिनचन्द्र सूरि जी - सम्राट अकबर के निमंत्रण पर लाहौर में चौमासा किया।

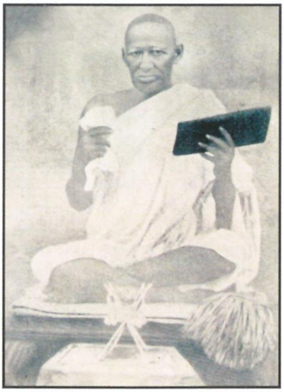

श्री बुद्धि विजय (बूटेराय जी) महा.
(वर्तमान पाकिस्तान में 6 मंदिरों की प्रतिष्ठा कराई)

श्री वृद्धिविजय (वृद्धिचंदजी)
(जन्म-रामनगर)

श्री मुक्ति विजय (मूलचंदजी)
(जन्म-स्यालकोट)

आचार्य विजयललित सूरि जी
जन्म-भाखड़ियाँ गाँव (गुजराँवाला)

उपाध्याय श्री सोहनविजयजी
(स्वर्गवास-गुजराँवाला)

तथा - 1. आचार्य विजय उमंग सूरि जी (जन्म-रामनगर)
2. आचार्य विजय विवेक सूरि जी (जन्म-रामनगर)
3. मुनिश्री शिवविजय जी (जन्म-गुजराँवाला)

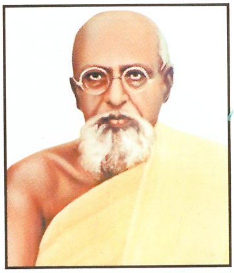

पंजाब केसरी विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महा.

आचार्य विजय समुद्र सूरि जी

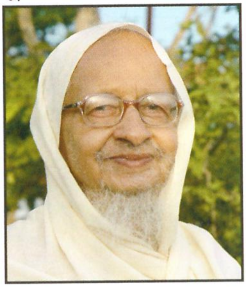

आचार्य विजय जनकचंद्र सूरि जी

प्रवर्तिनी साध्वी देवश्री जी महाराज

तथा :- व्याकरणाचार्य पं. रामकिशोरजी पाण्डेय

उपरोक्त महान् विभूतियाँ, देश विभाजन के 45 दिन पश्चात् गुजराँवाला-पाकिस्तान से भारत आए।

आ. विजयधर्मसूरि जी के शिष्य
आचार्य विजयेन्द्र सूरि जी महा.
(जन्म-सनखतरा)

आ. विजयधर्म सूरि जी के शिष्य
मुनिराज श्री विद्याविजय जी महा.
(1937-39 में पूरे सिंध प्राँत में विचरे)

आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज - श्रीसंघ के साथ (रोपड़ पं. - 1945)

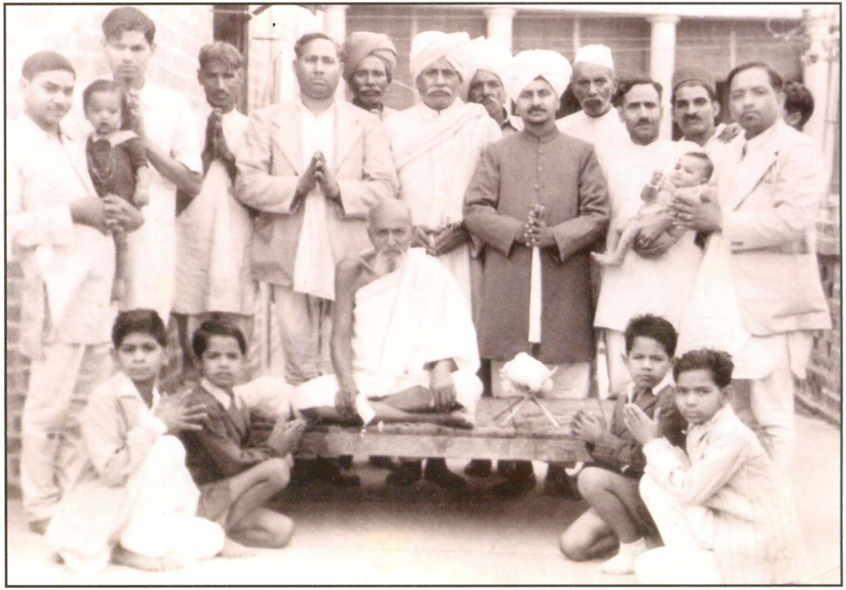

खड़े हुए : ज्ञानचंद (मल्ले वाले), बच्चा दमनकुमार, बैसाखीराम, रामजीदास, बाबूराम, (पीछे अज्ञात), हंसराज पूर्णचन्द, लछमनदास, (अज्ञात), बनारसीदास बेटे के साथ, (अज्ञात), सागरचंद (सामाना वाले)

पाट पर : गुरुदेव आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरि जी

बैठे हुए : बचनलाल (12 वर्ष), सुरेन्द्रकुमार (सामाना) (11 वर्ष), महेन्द्रकुमार मस्त (सामाना) (9½ वर्ष), बद्रीप्रकाश (12 वर्ष)

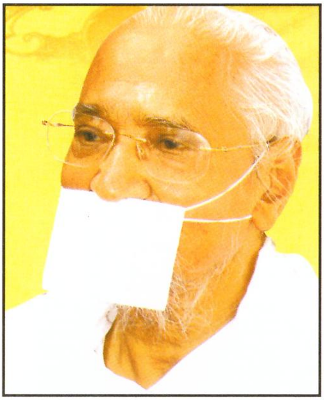

उपाध्याय श्री मनोहर मुनि जी महाराज
(जन्म-कसूर-पाक.)

मुनिराज श्री खज़ानचंदजी महाराज
(स्वर्गवास-पसरुर-पाक.)

तथा - पूज जी श्री सोहनलाल जी महाराज - (जन्म-सियालकोट)
पूज जी श्री काँशीराम जी महाराज - (जन्म-पसरुर)
मुनि श्री अमरमुनि जी महाराज - (जन्म-कौहाट)

पू. साध्वी श्री स्वर्णकान्ताजी महाराज
(जन्म-लाहौर)

नोट - साध्वी श्री राजकुमारी जी - (जन्म-गुजराँवाला)
साध्वी श्री स्वर्णकुमारी जी - (जन्म-लाहौर)
साध्वी श्री कौशलया जी - (जन्म-लाहौर)
साध्वी श्री वीरकान्ता जी - (जन्म-लाहौर)
प्रवर्तिनी साध्वी श्री सुधाजी महाराज - (जन्म-लाहौर)
साध्वी श्री राजमती जी (जन्म-सियालकोट)
साध्वी श्री ईसरो जी (जन्म-सियालकोट)

पू. साध्वी श्री जसवंतश्री जी महाराज
(जन्म-गुजराँवाला)

पू. साध्वी श्री सुव्रताश्री जी महाराज
(जन्म-कसूर)

पू. साध्वी प्रियदर्शना श्री महाराज
(जन्म-गुजराँवाला)

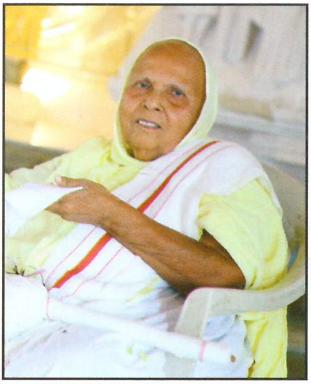

पू. साध्वी अमितगुणा श्रीजी महाराज
(जन्म-सनखतरा)

नोट - साध्वी आनंदश्री जी महा. - (जन्म - मुलतान)
साध्वी पुष्पश्री जी महा. - (जन्म - कसूर)
साध्वी पुण्यश्री जी महा. - (जन्म - लाहौर)
साध्वी दक्षश्री जी महा. - (जन्म - लाहौर)
साध्वी प्रकाशश्री जी महा. - (जन्म - गुजराँवाला)
साध्वी महेन्द्रप्रभा श्रीजी महा. - (जन्म-कोहाट)

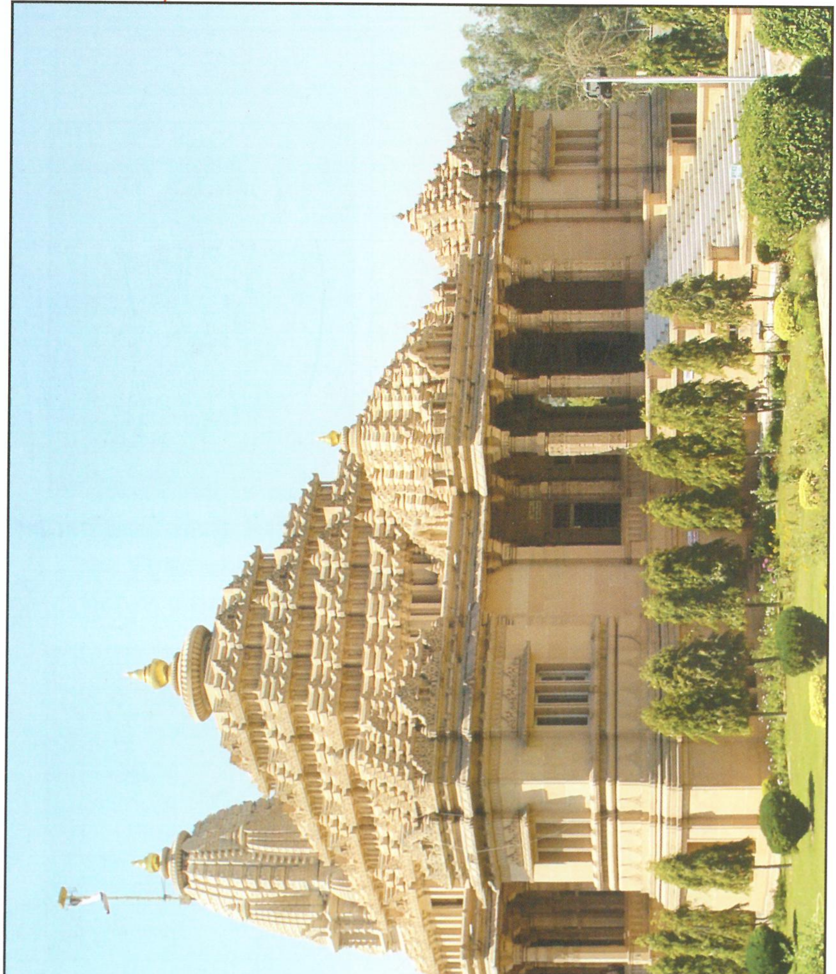

श्री विजय वल्लभ स्मारक
जैन मंदिर तीर्थ, दिल्ली

श्री महेन्द्रकुमार मस्त

मानव जीवन की नियति चिन्मय चेतना है। यही चेतना शब्द और अर्थ के माध्यम से चिन्तन का चित्रण करती है। प्राचीन काल में कवियों ने शब्दार्थ की महत्ता को समझते हुए 'जगत: पितरौ' का दर्जा दे दिया था अर्थात् शब्द और अर्थ तो माता-पिता हैं। प्रयोगधर्मिता का यह अजस्र प्रवाह प्रत्येक काल व परिस्थिति में गद्य-पद्य में मुखर रहा। इसमें प्रतीक, दृष्टिकोण व आयाम बदले पर अध्यात्म का वागर्थ शाश्वत सत्य तथा सम्माननीय रहा। अत्यन्त हर्ष का विषय है कि प्राचीन कालीन लेखकों की भाँति विगत 60 वर्षों से भी अधिक समय से श्री महेन्द्रकुमार जी मस्त जैन साहित्य, संस्कृति व इतिहास का अहर्निश लेखन सम्पादन व संवर्धन कर जैन समाज को गौरवान्वित कर रहे हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रख्यात मौलिक ग्रन्थ गाँधी बिफोर गाँधी, आत्म अमृतसार, प्रवर्तिनी साध्वी देवीश्रीजी, उपाध्याय सोहन विजय जी व विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित 1500 लेख व निबन्ध श्री मस्तजी की साहित्य साधना के अमरफल हैं। पंजाबकेसरी युगवीर आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरि जी म.सा. के कृपापात्र श्री मस्तजी पर गुरु समुद्र, गुरु इन्द्र तथा वर्तमान गच्छाधिपति इतिहासमर्मज्ञ आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरीश्वरजी म.सा. की अमोघ कृपा रही है। पूज्य गुरुदेवों ने श्रीमस्तजी की विलक्षण साहित्य प्रतिभा को सदैव सराहा है व सम्मानित किया है।

श्री मस्तजी द्वारा संवर्धित सम्पादित प्रस्तुत उपक्रम **'वीरान विरासतें'** प.पू. गच्छाधिपतिजी की प्रेरणा व आशीर्वाद से प्रकाशित हो रहा है जिसमें पाकिस्तान में रहे तमाम जैनमन्दिरों, स्थानक व दादावाड़ी की प्रामाणिक डॉक्यूमेन्टेशन है। श्री मस्तजी ने जैनसमाज के विस्मृत हो रहे इतिहास की कड़ियों को जोड़ने का अभूतपूर्व कार्य किया है।

सन् 1936 में सामाना (पंजाब) में श्री सागरचंदजी-ज्ञानवंती के घर जन्मे तथा वर्तमान में पंचकूला (हरियाणा) में रह रहे श्री मस्तजी नवम्बर 2018 तक अपने जीवन की 1008 पूर्णमासी पूर्ण कर रहे हैं। 82 वर्ष की आयु में भी आप लेखन/संशोधन के कार्य में सदा व्यस्त रहते हैं। इस कार्य में आपको पुत्र श्री गौतम जैन-सीमा जैन का पूरा सहयोग मिला है।

आशा व विश्वास है कि श्री मस्तजी पूर्ण स्वस्थ रह कर सतत लेखन से जैन साहित्य की अमिट अमूल्य सेवा करते रहेंगे।

श्री महावीर शिक्षण संस्थान **- राघवप्रसाद पाण्डेय**
रानी स्टेशन, जि. पाली (राज.)

जनाब इक़बाल क़ैसर

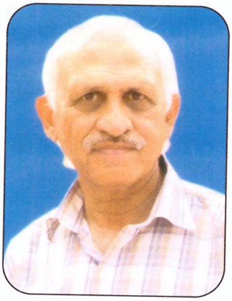

पाकिस्तान में जैन मन्दिरों के ऐतिहासिक विवरण व चित्रण दर्शाने वाली शाहमुखी में लिखी किताब **'उजड़े दराँ दे दर्शन'** के सुविख्यात लेखक, 61 वर्षीय जनाब इक़बाल क़ैसर अत्यंत जिज्ञासु, कवि-हृदय व विनम्र व्यक्ति हैं, जो वहाँ की अनेक साहित्यिक संस्थाओं से जुड़े और सम्मानित हो चुके हैं।

अपने बहु-आयामी जीवन में उन्होंने अनेक मौलिक पुस्तकों को कलमबंद किया है। उनकी पुस्तक 'सिख श्राईनज़ इन पाकिस्तान' पर वे पाकिस्तान और अमेरिका में सम्मानित हो चुके हैं।

कैमरा और कलम के साथ लंबे-लंबे सफर, जिज्ञासा की दिली तड़प और अनेक वर्षों के परिश्रम का सफल परिणाम पुस्तक **'उजड़े दराँ दे दर्शन'** को वहाँ के अखबार डॉन और दि न्यूज़ ने भी सराहा और प्रशंसात्मक रिव्यू लिखे।

इक़बाल साहिब के परिवार में धर्मपत्नी आदरणीय जमीला बेगम और योग्य सुपुत्र अली रज़ा उनके लेखन कार्यों व अन्य सरोकारों में पूरा हाथ बँटाते हैं।

हमारी पंजाबी पुस्तक (1985) - 'पुरातन पंजाब विच जैन धर्म' के अनेक संदर्भों का भी इक़बाल साहिब ने बखूबी व सार्थक उपयोग किया है।

विद्वान लेखक श्री महेन्द्रकुमार मस्त को अपनी उपरोक्त पुस्तक के हिन्दी अनुवाद/संशोधन व प्रकाशन की स्वीकृति देकर जनाब इक़बाल क़ैसर ने विस्मृत इतिहास की कड़ियों को जोड़ने और कमियों को पूरा करने का श्लाघनीय कार्य किया है।

पुरुषोत्तम जैन, रविन्द्र जैन
(मालेरकोटला)

Jain Temple at Gori

Whipped by desert sands for over 300 years, the Gori jo Mandar or Temple of Gori stands alone and abandoned in Tharparkar, a relic of a time and a culture long forgotten. No supplicant lights a candle to dispel the darkness, no devdasi (female devotee) perfumes the corridors with fragrant sticks, and the lilting melodies of sacred songs are no longer heard in this desolation. Only the screeching cries of bats echo in this once-glorious shrine.

Situated between Islamkot and Nagarparkar, Gori jo Mandar is shrouded in mystery. Even its original name is lost in antiquity, having changed many times in the course of the centuries. With no written history of the temple having survived, the only story as to its origin is a legend that it was built by Goricho, a Jain worshiper, in 300 AD.

This legend is supported by historian Raichand Rathore, who, in his book Old Tharparkar, writes that this temple was built by Goricho, a saint of the Jain religion and follower of Mahavira (599-527 BC). Built with intricately carved stones, the building has 52 steeples and several small rooms, some of which can accommodate only one solitary worshipper. While the purpose of the temple was undoubtedly religious, politics may have played part in its downfall. "The British military destroyed some parts of this temple because they found out that conspiracies against British rule were being hatched here," writes Rathore.

At the center of Nangarparkar city stands another Jain temple; this too is damaged and its walls are crumbling Five centuries old, its faded wall paintings depict the local flora and fauna. Jains made offerings of water, sandalwood, flowers, incense, oil, rice and fruits

over here. The Veeravah temple is also an architectural landmark of Thar, comprising of both cylindrical or conical and dome architecture. All this ancient Sindhi cultural and historical heritage is in a terrible state of ruin and the only sign of the government's presence is a solitary sign asking visitors not to damage the buildings. Despite this sign. not a single temple is whole and complete - and it is obvious that not all of the damage has been caused by the elements.

Dedicated to the Jain God Parasanth, Gori temple lies outside of the village of Gori between Islamkot and Nagarparkar. The various legends point to its foundations by a rich Hindu merchant six hundered years ago. A more likely date is the middle of the 16th century. Though the impressive spire that typifies Jain temples fell in the earthquake of 1898, the rich frescoes in the main dome are still intact. Here can be seen princesses in royal coaches and elegant palanquins, equestrian processions and bevies of dark-skinned beauties in flowing Rajasthani robes at their household chores. The pillar interior is marble of the purest white and masterfully crafted stucco plaster. But the sanctum sanctorum is empty.

Jain Temple at Nagarparkar

Thar desert has a splendid collection of ancient Jain Temples, testimony to the presence of colourful Hindu and Jain kingdoms in the past. One of these temples is situated at the western end of the main bazaar of the village Nagarparkar, Sindh province of Pakistan. The original name of the temple is unknown, but because of its place near the bazaar it is called 'Bazaar Temple" by the locals. Like the Jain Temple at Gori the site of Nagarparkar is assumed to be a prosperous center of Jain religion in the past.

No date of construction could be ascertained but the temple building is at least 500 years old and may date into the 14th century CE. The figurative program of the mandir as well as its elaborate architecture and fine ornaments are quite similar to other Jain temples in the Thar desert. The courtyard of the temple, save one odd pillar, has completely vanished. The outer walls still retain some of its charisma. The main icon of the temple. probably the image of a Tirthankara, must once have stood in the main hall but is now long gone, either stolen or broken by some fanatic. The entrance still have few smaller statuettes but most of them are desecrated and chipped. The condition of the rooms inside of the temple seem not better than the outside; at least some of the original wall paintings, which probably adorned once the whole interior of the temple, remained partially damaged.

नगर पारकर के मंदिरों के बारे पाकिस्तान के विख्यात अंग्रेज़ी अखबार DAW N.Com के मुताबिक - "Ancient jain Temples are another historic hall-mark of Nagarparkar area and some of them happen to be 2000 years old."

Pari Nagar Jain Temple at Virawah

The Neglected Temple

The reason why a Jain Temple in Tharparkar is in shambles is because the masses are becoming increasingly apathetic towards heritage, and also because of the scarce resources available with the government

The Jain Temple of Pari Nagar, situated at Virawah, some four miles from Nagarparkar in district Tharparkar is in shambles. This is because of the general apathy of our people towards heritage and scarce resources available with the Department of Archeoogy, Sindh. It has also been an eyesore to religious bigots who reportedly disfigured two idols, which were in an intimate embrace.

Similarly, while the road network in Tharparkar has connected the impoverished land with urban centres, including Karachi, it has also been a bad omen for heritage sites. Picnickers who frequent the desert after monsoon when it becomes lush green visit Tharparkar and feel no qualms in taking away statues from the temples just for fun. The more enterprising amongst them indulge in such acts in the hope that they will make a fortune by selling the artefacts to foreign buyers.

"It is presumed that the Temple is a part of the city of Pari Nagar. If the area is property excavated we can find a lot about the history and layout of the lost city besides precious artefacts of that unique period," Qasim Ali Qasim, Director, Department of Archaeology & Museums, government of Pakistan, told TNS.

Captain Stanley Napier Raikes, author of 'Memoir on the Thurr and Parkur' traces the history of Jain temples as under: "They (the temples) clearly demonstrate that at the time of their construction and which, from dates engraved on some of the slabs, was probably in the middle of the eleventh century the artisans were by no means behind those of after-times in the art of sculpture. The figures and

ornamental sculpture and designs in various parts of the buildings are beautifully executed, particularly the figures, which are better proportioned and executed than almost any I have seen in the East."

According to Qasim, the Ran of Kutch happened to be a sea and Pari Nagar was established as a seaport in 500B.C. It was a busy port of the area, had international significance and enjoyed trade links with Kutch Buj, Peer Bandar, Mandlay, Lanka and Sumatra.

It is said that Pari Nagar seaport was destroyed by an earthquake. According to Tarikh Farishta, Abne-Batuta also passed from here and it was destroyed by Jalaluddin Khawariza Shah in 1223 A.D.

Initially there were six Jain temples in the area. The Verawah temple consists of two rooms having a large hall called mandapa besides a small, dark chamber called vehana. These rooms have lost their glory with the passage of time and most of the sculptures and paintings have been defaced or usurped.

Despite the fact that the temple is in bad shape due to a host of factors, it is a finished example of building art. Its masonry is orderly and the architectural treatment of the parts is still in a position to show how knowledgeable its builders were.

"As many as 21 sculptures of Jain period were recovered in January 2006 during the construction of Virawah-Nagarparkar road from local people and Rangers posted nearby. Initially, Rangers did not allow us to enter their camps but we were able to inspect them when their high-ups were contacted," says Quasim.

"We found 35 carved architectural elements on marble. On January 24, 2006, these were staked at Veriwah temple while small items were shifted to Umerkot Museum," he adds.

Today, the white marble temple looks deserted and without any guard despite the fact that it's a site of immense heritage value. Around the temple have cropped up thick bushes while a green solitary tree stands on the left side of the temple as if silently registering the plunder of precious artefacts. Pieces of red bricks are scattered everywhere.

A notice at the site placed by the Department of Archeology & Museums, Pakistan, warns : "Under the provision of Section 19 of the Antiquities Act 1975 (VII of 1976), any person who destroys,

damages, alters, disfigures or scribbles, writes or engages any inscription or sign on the place shall be punishable with rigorous imprisonment for a term which may extend to three years, or with fine or with both."

However, the thieves and robbers of artefacts are seldom apprehended because the guard posted there is never present. In 2006, It was reported that two operators of an excavator digging the Virwaha-Nagarparkar road found a very old pitcher filled with gold jewellery and simply disappeared with the bounty.

But, Qasim believes, the remains of Pari Nagar not only provide an opportunity to explore history but could also become a site of religious tourism.

"The pieces of iron found here are an indication of ship making industry in the old Pari Nagar dockyard," he says.

Qasim also points out that the Jains in India are pretty rich and could become a major source of attraction if "religious tourism" (in his words) is promoted well.

"Our department has prepared a master plan for the conservation and restoration of heritage sites and to make them a tourist attraction. With the advent of Thar Express we can attract the Jain population in India and promote religious tourism," he says.

The pilgrimage would also provide job opportunities to the local people and boost relations between Pakistan and India, he says.

"Two pillars of Virawah Temple have also been preserved in the Karachi National Musuem during the colonial period."

He says that the government has earmarked Rs. 500 million for conservation work in Sindh and an additonal Rs. 500 million for survey and documentation under a 10-year plan that extends up to 2011.

Chacha Ali Nawaz, 81, a respected figure of Nagarparkar declares that he is a witness to the fact that the people of Jain religion lived in Tharparkar prior to Partiton, but after Pakistan achieved independence in 1947 they migrated to India and took many statues with them.

"There were about 800 Jain families in Pari Nagar Prior to Partition but they were looted by Thakurs and they shifted to India," he says.

Jain Temple at Bhodesar

Thar desert has a splendid collection of ancient temples, testimony to the presence of colourful Hindu and Jain kingdoms in the past. Among these ancient sites the heritage of Bhodesar must be mentioned; in particular the decayed Jain temple is of special art historical interest.

Bhodesar is situated north-west of Nagarparkar beneath the Karoonjhar Hills, and is popular due to its small mosque, built by one Mahmud Shah bin Muzaffar in 1505 AD with marble brought all the way from Gujarat. The place was formerly known as Bhodesar Nagry (*Nagry* is probably derived from the Sanskrit word *nagara* "city") and is said to be a prosperous and affluent city of those days, when the buildings still found there had been constructed. The foundation of Bhodesar is supposed to be in 515 CE.

According to some local traditions that name of the city is derived from a queen, named Bhodi, who formerly ruled the country. Furthermore it is said, that queen Bhodi constructed a beautiful pond with a metallic base. Much later, in 1025 or 1026 CE, this pond was visited by Sultan Mahmud of Ghaẓni, who, to avoid a confict with the armies of Ajmer after his campaign to Somnath, made a detour across the Thar desert on his return to Ghazni. During his journey he lost the track and in search of water he arrived at this pond. Subsequently he constructed a memorial at this place which was later converted into Mosque by Sultan Mehmood Begra.

Nearby the mosque the ruined Jain temple is located. The temple is built on a high platform and reached by a series of steps carved into the rock. Huge stone slabs constitute grand columns carved with objects of Jain worship. These stone carvings display a high level of expertise and dedication, carved as they were at the apex of Jain culture. The building is in a dilapidated condition: the remaining walls are instable and partially collapsed, the formerly installed idols vanished long time ago and some parts of the building had been dismantled brick by frick by the locals who used the bricks to construct and repair their homes.

There are two other Jain temples in Bhodesar supposed to have been built in 1375 CE and 1449 CE built of kanjur and redstone, finely carved and adorned with corbelled domes. The date of construction of the ruined Jain temple is controversial. According to some local traditions the temple was

founded in the 9th century CE but a more likely date is the 14th or 15th century CE.

The city of Bhodesar was once inhabited by Sodhas and Khosas, who were dreaded bandits and the people of the country were scared of them. The repeated complaints by these scared people reached finally the administration of the Tughlaque rulers in Delhi. Thus, Sultan Mehmood Bogra led an expedition to Parkar in 1504 CE to capture the bandits, but he remained unsuccessful and went back to Delhi.

Later his mother was attacked at the same place along with other travellers, so Sultan Mehmood Bogra started a second punitive expedition against the Sodhas and Khosas. He arrived Bhodesar in 1505 CE and defeated the bandits this time. As a symbol of triumph over the Sodhas and Khosas of Bhodesar he constructed a mosque at this place, not far away from the ancient Jain temple. Close to the foot of the karoonjhar hills and south of the Bodesar mosque are situated three Jain temples, separated from each other by small though furrowed plain. These structures are supposed to have been built in 1375 and 1449.

Temple No. 1 : It is a small temple. It measures 8.5m in width at the front on the eastern side and 7.8m in length along the sidewalls on the north and south. It stands within a compound wall, a little less than a metre in height. and built in rubble masonry in local granite stone. The main building of the temple consists of a single but long cell. The main chamber which appears from outside to have three cells actually has only one long room with three compartments and is roofed with three corbelled low domes.

Temple No. 2 : The temple No. II, it is the largest of the Bodhesar group. It stands on a platform about a metre high and 120 wide on the front side. This temple is a centrally planned structure with nave and a square aisle around it. The Nave is colonnaded with 4 columns on each side and roofed with corbelled low dome of the shape of an inverted bowl supported on octagonal base of beams resting on eight columns.

All the stone used in the temple is kanjur and red sandstone, which are not available locally. However, the stone used in the platform and the attached compound wall is local sand stone or granite of red tint.

Temple No. 3 : The third temple at Bodhesar consists of open hall called Mandapa with an intermediate chamber known as Arthi mandapa, connected with cells. In plan and construction excepting enclosure wall, it is like Temple No. I, mentioned earlier.

An Exploratory Survey of the Jaina Heritage in Pakistan

- Dr. Peter Flugel and Muzaffar Ahmad

1 The work was sponsored through a generous gift of Baron Dilip Mehta of Antwerp. Key contributors were PI Peter Flugel (SOAS), Mirza Naseer Ahmed (NJC), coordinator of work in Pakistan, and RO Muzaffar Ahmad, who analysed data from published sources in Urdu and English and from museums in Pakistan and planned the field research. Fieldwork was conducted and written up by Asif Rana, and maps were produced by Naeem Ahmad and Tahira Siddiqa (all NJC). Ravinder Jain of Maler Kotla and Purushottam Jain of Mandi Gobindgarh in India provided invaluable background information about locations of Jaina sites in Pakistan, based on prior research (Jain & Jain 1985) and communications from Sadhvi Svarnakanta (1929-2001) (born in Lahore), Sadhvi Arcana (family from Rawalpindi), Mahindra Kumar Jain (Co-researcher of the late Hiralal Duggar in Panch-Kula), and others, and from Iqbal Qaiser in Lahore, who conducted independent research on the same subject. See Qaisar (2018). Valuable information was also supplied by Noel Q. King (1922-2009) of Corralitos in California (born in Taxila), who in 2003 researched the Jain temples and institutions in Pakistan but had his notes stolen on a train, and Raj Kumar Jain (born in Jhelum), the principal stalwart of the Svetambara refugee community in Delhi. They were interviewed by PI on 8.6.2005 and 23.2.2017 respectively. Further interviews were conducted with informants in Meerut. Jaipur, Bikaner.

2 For an overview, see Duggar (1979). Fresh archaeological discoveries continuously increase our understanding of the Jaina past in Pakistan. Members of the research team located carana-padukas of uncertain date in Chakwal (Ahmad 2015), and in Nagarparkar recorded on site sculptures, of relatively recent origin, being excavated by the Department of Archaeology Sindh.

The neglected field of the Jaina heritage in Pakistan was revived in 2015-17 through a pilot study conducted by the CoJS of SOAS in collaboration with a research team of the Nusrat Jahan College (NJC) in Rabwah, with additional help of local historians of Jainism in North India. In view of the long-term neglect of Jaina sites in Pakistan, and the pressing need of preserving key religious monuments, the project focused on the documentation of the surviving infrastructure, Jaina temples, halls, community buildings, art and writings, along with a historical and demographic study of the Jaina sectarian traditions in the region. Our report summarizes key findings.

Background

Jainism has a long history in Pakistan, going back to the early

historical period, and ending with the partition of British India in 1947. The extent of the Jaina presence in the region in ancient times is yet to be fully assessed. Early Muslim, Sultanate and Mughal periods show only little Jaina activity, predominately in Sindh. Many of the Jain merchants that had settled west of the Rann of Kutch and the Thar desert came under the influence of the Kharataragaccha, which became the dominant Jaina tradition in the region. This was mainly due to the influence of its third "miracle producing" *dadaguru* Jinakusalasuri (1280-1332), who toured the small towns and villages of the Indus valley south of Multan for five years between V.S. 1384 and 1389, until his death in Derawar (Devarajapura, Deraur), where a *stupa (samadhi)* was erected over his ashes and a *"dadabari"* surrounding it (Fig. 1). The *samadhi* was regarded as a miracle working shrine, and became the center of a network of *dadabaris* dedicated to Jinakusalasuri, in Halla, Multan, Dera Ghazi Khan, Lahore, Narowal, etc.

Some Jaina presence is notable in Lahore, Sialkot, Gujraṇwala and Multan during the Mughal rule. The *dadabari* in Lahore was constructed by Akbar's Osavala minister Karmacand Bacchavat (1542-1607) from Bikaner, a disciple of the fourth *dadaguru,* "Akbara pratibodhaka" Jinacandrasuri VI (1541-1613), who, through Karmacand's intercession, met the Emperor Akbar in Lahore at various occasions in 1592, 1593, and 1594. In 1595 Jinacandra walked, via Multan (Mulasthana) and Uch (Uccapuri), to the *samadhi* at Derawar, to pay his respects, and then back to Rajasthan. Under the reign of Muslim rulers who vigorously opposed image veneration, the influence of the Kharataragaccha declined due to the impact of non-image-venerating (*amurtipujaka*) Jaina mendicant traditions,whose followers took control of most religious properties of the Kharataragaccha in the Punjab at the time of the Partition. Yet, the Kharataragaccha marintained its presence in the desert region of Tharparkar in Sindh, where it still has a few followers today.

The new religious developments in the Punjab were initiated between 1503 and 1551 by the monks Rayamalla and Bhallo, two diciples of Yati Sarava, sixth leader of the recently formed *amuritipujaka* Gujarati Lonkagaccha, who wandered from Gujarat to Lahore, and founded the Lahauri or Uttarardha Lonkagaccha, which became the most popular tradition amongst the Jainas in the northern Punjab in the 17th and 18th centuries, It established permanent seats (gaddi), first in Lahore, and later in Jandiyala Guru, Phagvara, Nakodar, Ludhiana, Patti, Samana, Maler Kotla, Patiala, Sunam, Ambala, Kasur, etc. After a while, image-veneration was re-introduced by the *yatis* and temples erected in places such as Ramanagar (Rasulanagar), Gujranwala, Sialkot, Pinda Dadan Khan, or Papanakha. Hence, between 1673 and 1693, the orthodox monk Haridasa split from the Uttarardha Lonkagaccha, joined the Dhundhaka

(Sthanakavasi) tradition of Lavaji in Gujarat, and finally founded his own reformist *amurtipujaka* tradition in Lahore. The tradition became known under the name Panjab Lavaji Rsi Sampradaya, Under Acarya Amarasimha (1805-1881) it gradually absorbed the Uttarardha Lonkagaccha, and became the dominant Jaina tradition in the Punjab.

At the time of Sikh expansion individual Jainas played important economic and political roles. And significant mercantile communities established themselves in the Punjab, mainly dealing in cloth, grains, general merchandise, jewelry, and banking. The British period brought in a new system of roads and railways, and Jaina merchant communities took full advantage of it. New settlements emerged alongside these trade routes in Sindh and in the Punjab. In this period, between 1855 and 1875. sixteen mendicants split off the Sthanakavasi Gangarama Jivaraja Sampradaya, a small mendicant tradition that was popular in the southwest of Ludhiana, and joined the *murtipujaka* Tapagaccha in Gujarat. The main leaders until 1947 were Buddhivijaya (Sthanakavast name: Buteraya) (1806-1882), Vijayanandasuri or Atmananda (Sthanakavasi name: Atmarama) (1836-1896), and the Gujarati monk 'Panjab Kesari' Vijayavallabhasuri (1870-1954), whose Lineage, the Vallabha Samudya, was and still is the most active branch of the Tapagaccha in the Punjab. They regarded temple construction as a necessity for the survival of the Jaina Tradition in the Punjab, where Christian missions and Dayananda's Arya Samaj had gained support, and inspired their lay-followers to take possession of buildings vacated by the slowly vanishing Lonka tradition, and to erect new temples, with adjacent upasraya for visiting mendicants.

The Sthanakavasi medicants were very orthodox at the time. They rejected all 'violent' construction work, not only of temples, but also of halls (*sthanaka=upasraya*) as "non- or "anti-religious." Generally, they resided in empty rooms of private houses or in empty buildings judged to be acceptable in terms of monastic codes of conduct. By the end of the 19th century, however, empty buildings of the Lonkagaccha *yatis* were also taken over by the Sthanakavasis. The first mendicant in the Punjab who, against internal opposition, advocated the construction of *sthankas,* religious schools and libraries, was Muni Khazancand (1884-1945) of the Panjab Sampradaya, With permission of "Punjab Kesari" Acarya Kasiram (1884-1945), he started in the 1930s in his birth place Rawalpindi, a city dominated by the Sthanakavast community, located at the very edge of the realms of movement of Jaina mendicants, and later in towns such as Gujranwala, Jhelum Kasur, Lahore, Sialkot.

Due to the influence of the charismatic Vijayanandasuri, many

Sthanakavasi sravakas had converted to the Tapagaccha between 1855 and 1945. In turn, the leaders of the Panjab Lavaji Rsi Sampradaya prohibited intersectarian marriage, and occasionally commensality. As a consequence, the members of the local Osavala caste were split along sectarian lines for almost a century. With the exception of Sindh, where Poravala and Srimali castes prevailed, almost all Svetambaras in the region of modern Pakistan were Osavalas. They were migrants, who had lost contact with their native Rajasthan, stopped intermarrying with Rajasthani Osavalas, adopted Urdu as their first language, and persian as their second. Their "Mother tongue" Punjabi was only used as a spoken language. Maybe for these reasons the Punjabi Osavalas referred to themselves not as "Osavala," or "Bisa / Dasa Osavala," but as "Bhabaras."

In the British period, the Bhavara communitites, became the leading mercantile class in the Punjab, and many villages, *bazars* and *mohallas* in Pakistan still retain this name. Bhavara Jains distinguished themselves in the fields of finance, education and publishing early on. Most Jaina heritage sites in the Punjab were once owned by Bhavara associations. Yet, not all Jains in the Punjab were Bhavaras. Almost as many mendicants of the Panjab Lavaji Rsi Sampradaya were and are recruited from Brahmana, Ksatriya (Rajput), Agravala, and Jat families as from Bhavara families, not to speak of mendicants from low castes. Generally, northwest of Ambala no Digambara communities can be found. The small minority of Terapanth Digambara Agarvalas, who established small communities and settled in towns such as Rawalpindi, Sialkot, Lahore and Karachi were suppliers of the British military, Their temples were located in the cantonment areas. Most, if not all of them have been demolished after 1947. Only few towns such as Multan (which once had a bhattaraka seat) featured old Digambara temples in the bazar areas of the walled city.

Before Partition, the Jaina community was less than one percent of the total population in areas which were included into Pakistan. At the eve of partition almost the entire Jain population migrated to India, except for a few households in Nagarparker. Some Jainas are said to have converted to Islam. But most left in the protective presence of the British Army and, in exceptional case, of monks, such as Vijayavallabhasuri, who were forced to break their monastic rules and to use trucks, trains or planes, to save their lives. The refugees mostly settled in the Indian Punjab, Hariyana, Rajasthan, U.P., and in Delhi. They took with them their portable religious art and libraries, leaving behind empty buildings, shelves, and niches.

In·1960, the Government of Pakistan established the Evacuee Trust Property Board (Awqaf) for the protection and administration of properties

attached to educational, charitable or religious trusts of migarted Hindu and Sikh communities, For the Muslims in Pakistan the Jainas were 'Hindus.' and the Jaina religious heritage is therefore also generally being considered as "Hindu."

Only with prior information at hand can one hope to find a mention of Jaina sites in Awqaf's records, and this is not always the case. Non-religious heritage buildings have long been occupied by locals. In some case Muslim migrants from India exchanged properties with migrant Jain communities from Pakistan, as in the case of the Shri Amar Jain Hostel Lahore, now located in Chandigarh.

After Partition, no research on the Jaina heritage in Pakistan has been conducted. Hiralal Duggar (1979 : 354) hence noted that 'at the present time there is no information on the condition of all the temples and institutions in Pakistan.' Similar observations were made by R.K. Jain (2003 : 2) : 'The present status of Jain Temples, Upashrayas and Sthanaks is generally not known. Whereas Ghar-Mandirs, Upashrayas and Sthanaks have by and large been usurped and put to different uses by the Pakistan Authorities and Public, the Sikhar Band Mandirs still seem to exist. Since there are no Jains left in Pakistan, these Temples are not being worshipped at all." Our research project tried to answer the question as to the current state of Jains temples and institutions.

Field Survey

In the first phase of project a thorough literary review was conducted and relevant information on pre-Partition demographics and sites of the Jaina community collected from available literary sources, and through interviews. Thus a list of about one hundred potential Jaina sites at thirty locations in the Punjab, North West Frontier (KPK) and Sindh was prepared. Subsequently it was modified and reduced to approximately ninety locations in the end. These sites include Digambara and Svetambara temples, dadabaris, sthanakas, samadhis, libraries, schools, hostels, as well as mohallas identifiable through their Jaina or caste names. etc. Most of these structures were built or renovated during the British period, between 1865 and 1947. During the literature review demographic trends of the in Jaina populace of Pakistan were traced through a study of available Gazetteers and some other research publications of the British era. Significant information is available in these sources about demography, caste background, and distribuion of the pre-dominately city-dwelling Jaina population, concentrated in particular quarters, from 1819 to 1947. The official data, suggesting the existence of some 12,861+Jains in the region in 1941, is incomplete, and not reliable. It also does not offer a breakdown of the religious affiliation of the Jaina population. A

tentative overview of the geographical distribution of the three main sectarian traditions in 1947: the Sthanakavasi traditions (especially the dominant Panjab Lavaji Rsi Sampradaya), Tapagaccha & Kharataragaccha, and Terapanth Digambara, is offered. A team of NJC researchers travelled thousands of kilometers in Punjab and Sindh, mapping and recording identifiable Jains sites in the disricts of Lahore, Qasur, Sialkot, Chakwal, Khoshab, Bhera, Gujranwala, Farooqabad, Jhang, Chiniot, Multan, Bahawalpur, Marot, Rahimyar Khan, Karachi, Nawab Shah, Kunri, Tharparkar, and Nagarparkar. Observable features, murals, inscriptions, icons and sculptures, street views, etc., were recorded as much as permitted access allowed. All structures were photographed, and a database of more than three thousand photographs was created, planned to be put online, together with a spreadsheet with descriptive, backgound, and interview data.

Inscriptions of the British era are found on some Jaina buildings in Punjab. They are mostly in Devanagari script, but also in Persian script. In some cases Urdu and Hindi bilingual or Urdu, English and Hindi trilingual inscriptions are found. Occasionally the words are in Rajasthani or Gujarati. In as few cases, local Landa scripts are also evident, along with above mentioned languages and scripts. Some Jaina edifices provide a glimpse into the art of religious painting popular in Sikh and British periods, presenting scenes from Jaina religious history, and sometimes explaining them with short inscriptions. Yet, with the notable exception of the temple in Gauri, most surviving inscriptions and mural paintings are reduced to small fragments of little historical or aesthetic value.

Since many investigated sites were found ruined, demolished, or could not be clearly identified, the interpretation of the collected data relies largely on background information available only in India in oral and written form, and to local historians, who were interviewed wherever possible. Ravinder K. Jain of Maler Kotla and Mahender K. Mast of Panchkula motivated migrant Jaina community members to help identifying further Jaina heritage sites in Pakistan, confirm or disconfirm colleced information, and to supply supplementary evidence. Additional interviews with migrants were conducted in India by the PI in Delhi, Meerut, and Jaipur. On the basis of the written and oral record, many of the surveyed sites could be re-connected to particular social groups, religious traditions, and historical events. Not all sites indicated on the map of investigated locations (facing page) still exist, or can be unequivocally linked to the Jaina tradition. The initial survey of the built heritage brought this fact to light that Jainism has lost its footing in modern Pakistani society decades ago. Many temples, under the administration of the Evacuee Trust Property Board, have been allotted to the local

families who reside there. Houses were assigned to new residents, and community buildings given on rent by the Evacuee Board without maintaining any separate record, and many temples and halls, many of them built shortly before Partition, were simply demolished. Most of the remainder are left to the process of natural decay.

Survey of Museums, Libraries, and Archives

The last stage of this pilot study was to survey museums, libraries and archives for Jaina heritage. The Umarkot museum in Tharparkar and the Bahawalpur museum yielded very little in this regard. The Lahore museum has the best collection of Jaina artifacts and structures anywhere in Pakistan. The artifacts from Murti are potentially important. They were brought into the museum right after the site was excavated by Stein. Yet, most of the collection is in storage and inaccessible. The other notable collection in the Lahore museum is of *carana-padukas.* The most impressive items belong to Gujranwala Jaina sites, and were transferred from there to the museum to prevent their destruction. There are also impressive Jains statues on display, but no record of their whereabouts exists.

Apart from one Jaina manuscript housed in the Lahore Museum Library, there is a big collection of Jaina manuscripts in Punjab University's Woolner Collection. Other than the old catalog published by the Punjab University, ther is a newly developed database produced by a joint project of the Punjab University and the University of Vienna, and Geumgang University. Most other Jaina Manuscripts and books held by Jaina institutions were transferred to India around 1947. Most of these sources are now preserved by the B.L. Institute in Delhi. Verbal accounts tell also of missing and destroyed materials which were never recovered.

Some pamphlets published in Urdu as part of the Jaina Tract series from Lahore, Delhi and Ambala are found in the Khilafat Library Rabwah and the Punjab Public Library Lahore. The Khilafat Library Rabwah, Punjab Public Libary, Punjab University Library, Iqbal Public Library Lyallpur, National Archives, National Docmentation Center and the Punjab Archives all have vast collections of books in Devanagari and Gurumukhi scripts. Since there are no catalogue records of these materials, nothing can be presently said of the Jaina books in these collections. The unorganized nature of these archives demands a full project of cataloguing or sifting through these archival materials to locate any material relevant to Jaina Studies.

Summary

This first systematic field survey and mapping of the Jaina heritage in Pakistan after 1947 brought to light a wealth of information about the current state of the built heritage, sacred art and literary contribution of the Jainas.

The picture is not rosy. The surviving structures are generally in miserable condition. The Temple at Multan is mostly intact as it was turned into a Madrasa and its management takes good care of the building and the paintings. One temple in Farooqabad is occupied by a local merchant who takes good care of it. The temples in Tharparkar are not used for Jain worship anymore, but the structures of some temples, in Bhodesar, Nagarparks, and Virawah are intact, and worth preserving, in particular the famous paintings of the Gauri temple, which are in urgent need of restoration. Most murals in Jain temples have either been vandalized or left to decay.

After Partition, Jainism and Jaina communities of Pakistani Punjab and Sindh vanished from the collective memory, There are almost no references of Jainism or Jains in the local literature. History books on Bhera, Sialkot and Lahore have a few lines on Jains here and ther, Old people above the age of 80 still retain memories of their Bhavara neighbours. The lack of interest and records of the migrated Jaina families in India and fading memories is another problem. Only a few Jaina housholds in Nagarparkar remain. But they are unwilling to disclose their religious idenitity.

In the light of this pilot study, the following conclusions have been reached.

1. The Jaina built heritage in Pakistan from the 19th and 20th centuries is in miserable condition and requires a swift transfer from the control of Awqaf to the Department of Archaeology or to the Ministry of Culture, to facilitate the preservation of religious monuments of historical significance.

2. The labelling of artifacts displayed in museums should be reviewed, since generally no clear distinction between "Hindu" and "Jaina" objects is made.

3. Libraries and archives should be encouraged to catalogue work in Devanagari and Gurumukhi scripts.

4. Results of this pilot study suggest that careful archaeological surveillance could bring to the surface further evidence of Jaina activity. An archaeological survey to locate and study pre-Muslim Jaina heritage in Pakistan should be conducted.
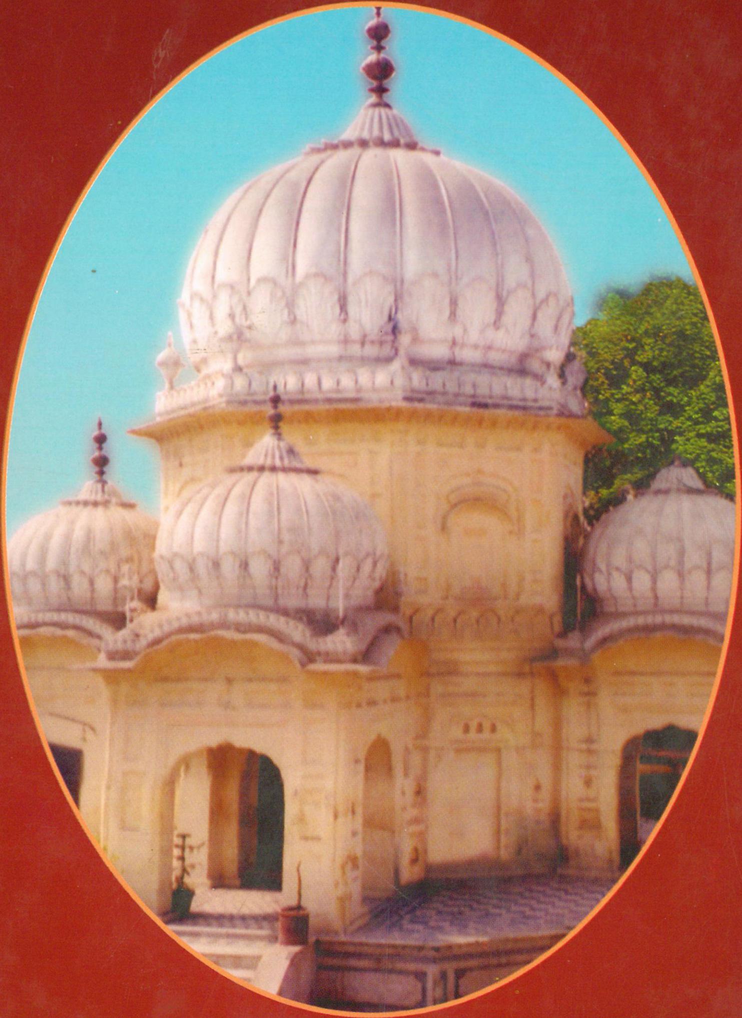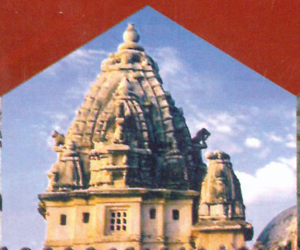
5. A Department of Jaina Studies should be established in a federally run University.